खण्ड – एक

इकाई 1. प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति, सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्रथमा विभक्ति एवं सम्बोधन सूत्र, वृत्ति, अर्थ ,उदाहरण सहित व्याख्या

1.4 द्वितीया विभक्ति सूत्र वृत्ति अर्थ उदाहरण सहित व्याख्या

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 उपयोगी पुस्तकें

1.10निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड एक की यह पहली इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि कारक प्रकरण की आवश्यकता क्या है ? कारक किसे कहते है।

कारक शब्द का अर्थ है क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् क्रिया का जो जनक हो उसे कारक कहते है। जिसका क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है वह कारक नहीं कहलाता है। उदाहरण यथा–रमेशः कृष्णस्य पुस्तकं पठति (रमेश कृष्ण की पुस्तक को पढ़ता है) इस वाक्य में रमेश पठन रूपी क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः मात्र उसका सम्बन्ध पुस्तक से है। इस प्रकार कृष्ण कारक नहीं हुआ।
कारक छः प्रकारक के होते हैं – कर्त्ता , कर्म , कारण , सम्प्रदान अपादान अधिकरण। षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं माना गया है क्योंकि क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाणिनि रचित व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्त्वपूर्ण विभक्तियों सहित सूत्रों का ज्ञान करेंगे।

- प्रथमा विभक्ति कहाँ पर होती है, इसके विषय में परिचित होंगे
- प्रथमा विभक्ति विधान करने वाला सूत्र कौन है, इसके विषय में परिचित होंगे
- सम्बोधन किसे कहते है, इसके विषय में परिचित होंगे
- द्वितीया विभक्ति कहाँ पर होती है ,इसके विषय में परिचित होंगे
- कर्म संज्ञा में कौन सी विभक्ति होती है, इसके विषय में परिचित होंगे
- अनिप्सित कारक में कौन सी विभक्ति होती है, इसके विषय में परिचित होंगे

1.3 प्रथमा एवं सम्बोधन तक सूत्र वृति अर्थ सहित व्याख्या

1. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा 2/3/46।।

नियतोपस्थितिकःप्रातिपदिकार्थः नियत उपस्थित वाले अर्थ को प्रातिपदिकार्थ कहा जाता है। । मात्र शब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये , परिमाणमात्रे संख्या–मात्रे च प्रथमा स्यात्। उच्चैः। नीचैः।कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। अलिङ्गा। नियतलिंगाश्च प्रातिपादिकार्थमात्रे इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राद्याधिक्यस्य। तटः–तटी–तटम्। परिणमात्रे–द्रोणो व्रीहिः। द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः। प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्। प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणम् इति विवेकः। वचनं संख्या। एकः। द्वौ। बहवः। इहोक्तार्थत्वाद् विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।।

अर्थ – नियत अर्थात् नियम पूर्वक जिस शब्द से जिस अर्थ की उपस्थिति हो वह प्रातिपदिकार्थ कहा जाता है। सूत्र में' मात्र' शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है। अतः केवल प्रातिपदिकार्थ मात्र में , लिङ्ग मात्राधिक्य में , परिमाणमात्र में तथा वचन मात्र में या संख्या मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा– उच्चैः , नीच्चैः ,कृष्णः , श्रीः , ज्ञानम्। प्रातिपदिकार्थमात्र के वे सभी शब्द है जिनके कोई लिङ्ग नहीं है अथवा जिनका लिङ्ग निश्चित है। 'अनियतलिङ्ग' शब्द लिंग मात्र के आधिक्य के उदाहरण हैं। जैसे–तटः, तटी, तटम्। परिमाण–मात्र कि अधिकता में (प्रथमा विभक्ति का उदाहरण) द्रोणो व्रीहिः। इसका अर्थ है–'द्रोणरूप परिणाम से नापा हुवा धान्य' (व्रीहि)। प्रत्यय के परिणाम–अर्थ में प्रकृति (द्रोण) का अर्थ (विशेष–परिणाम) अभेद सम्बन्ध से विशेषण

होता है तथा प्रत्यय का अर्थ (साधारण परिणाम) परिच्छेदकभाव सम्बन्ध से व्रीहि का विशेषण हो जाता है। वचन का अर्थ संख्या है। एकः। द्वौ। बहवः। अर्थ उक्त होने से विभक्ति प्राप्त न होने के कारण इस सूत्र में 'वचन' ग्रहण किया गया है।

प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा स्यात्।

व्याख्या– सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं। जिस शब्द के बोलने पर जो अर्थ नियम से उपस्थित होता है, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते है। तथा प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। जो शब्द अलिंग है अर्थात् किसी लिंग का बोध नही कराते अथवा जिनके अर्थ के साथ–साथ लिंग का बोध भी नियत रूप से हो जाता है वे ही प्रथमा विभक्ति के उदाहरण है।

यथा–उच्चैस्+सु ये , अलिंग अव्यय शब्द है। इनसे प्रथमा विभक्ति होकर उच्चैस्+सु इस स्थिति में ''अव्ययादाप्सुपः'' (2–4–82) से सु का लोप हो जाता है और पद हो जाने से स् को विसर्ग होने पर उच्चैः रूप बनता है। कृष्ण शब्द से पुलिंग अर्थ प्रतीति श्री शब्द से स्त्रिलिंग अर्थ प्रतीति तथा 'ज्ञान' शब्द से नंपुसकलिंग की अर्थ प्रतीति नियम से होती है। अतः ये सभी नियतलिंग के उदाहरण हैं। इनमें प्रथमा विभक्ति होकर कृष्णः , श्रीः तथा ज्ञानम् रूप बनते हैं।

लिंग मात्राद्याधिक्ये प्रथमा – लिंग मात्र की आधिक्य में प्रथमा विभक्ति होती है। उदाहरण – यथा–तटः , तटी , तटम्।'तटः'= (किनारा) शब्द का प्रयोग तीनों लिंगों में होता है। इन तीनों प्रयोगों में 'सु' विभक्ति क्रमशः विसर्ग , 'सु' लोप तथा 'अम्' के रूप में परिवर्तित हो जाता है इन शब्दों में उस विभक्ति का अर्थ उसकी मूल प्रकृति (प्रातिपदिक) के साथ पुलिंग , स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग भी है।

परिमाण मात्रे प्रथमा– परिमाण मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

उदाहरण– द्रोणी व्रीहीः (द्रोण भर चावल) 'द्रोणः' (द्रोण+सु) में विभक्ति का अर्थ है–सामान्य परिमाण तथा प्रकृति 'द्रोण' का अर्थ है द्रोण नामक परिमाण विशेष । **'द्रोणो व्रीहिः'** यहॉ दोनों का अभेद सम्बन्ध से अन्वय होता है। विशेषण और विशेष वाची शब्दों में परस्पर अभेदार्थ की प्रतीति होती है। अतः यहॉ विभक्ति का सामान्य परिमाण अर्थ की विशेष्य के रूप में घटित होगा। तथा प्रकृति का द्रोण परिमाण विशेष अर्थ विशेषण के रूप में गृहीत होगा। इस प्रकार द्रोण से द्रोणरूपात्मक परिमाण विशेष अर्थ की प्रतीति होती है। (सामान्य विशेषयोरभेदः) द्वितीय पद 'व्रीहि' के अर्थ के साथ प्रत्ययार्थ परिमाण का परिच्छेद्य–परिच्छेदक भाव से अन्वय होता है। नापी जाने वाली वस्तु को ' परिच्छेद्य' कहा जाता है तथा मापक या मान ' परिच्छेदक' कहा जाता है। उपर्युक्त शब्दबोध होने पर '**द्रोणो व्रीहिः'** वाक्य का अर्थ होगा–द्रोण नामक माप से नापा हुआ चावल।

वचनमात्रे प्रथमा– वचन मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। उदाहरण –एकः (एक) , द्वौ (दो) तथा बहवः (बहुत) यहॉ पर वचन शब्द संख्या का वाचक हैं। उक्त तीनों उदाहरणों में क्रमशः एक+सु =एकत्व ,द्वि+औ =द्वित्व तथा बहु'+जस्=बहुत्व का बोध होता है। इस प्रकार एकत्व, द्वित्व तथा बहुत्व अर्थ विभक्तियों का न होकर प्रकृत्यर्थ ही होता तो पुनरूक्ति दोष हो जाता तथा 'उक्तार्थानामप्रयोगः नियमानुसार सुवाद्युत्पति असम्भव थी। अतः यहॉ वचन ग्रहण कर विभक्ति का विशेष विधान करना पड़ा है।

2– सम्बोधने च 2/3/47।।

इह प्रथमा स्यात्। हे राम।

अर्थ :– सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। हे राम।

व्याख्या–पूर्व सूत्र में प्रथमा की अनुवृत्ति आती है। तदनुसार सम्बोधन में प्रथमा होती है। प्रातिपदिकार्थ से अधिक प्रतीति होने वाले अर्थ के कारण उसका अलग से निर्देश किया जा रहा है। सम्मुखीकरण को सम्बोधन कहा जाता है। **उदाहरण हे राम।** इस प्रयोग में

सु विभक्ति का अर्थ सम्बोधन है। यहाँ सु विभक्ति आने के बाद **एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः** इस सूत्र से सु का लोप हो जाता है तथा हे शब्द सम्बोधन का प्रतिक हो जाता है

कर्म कारक द्वितीया विभक्ति

3. कारके 9/4/23।। इत्यधिकृत्य–यह अधिकार सूत्र है।

4– कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1/4/49

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म संज्ञ स्यात्।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म संज्ञं स्यात्। कर्तुः किम् ? माषेष्वश्वं बध्नाति। कर्मणा ईप्सिता माषा ,न तु कर्तुः। तमब्ग्रहणं किम् ?पयसा ओदनं भुङ्क्ते। कर्म इत्यनुवृतौ पुनः कर्मग्रहणम् आधारनिवृत्यर्थम्। अन्यथा गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात्।
अर्थः– कर्ता अपनी क्रिया द्वारा जिस पदार्थ को सर्वाधिक प्राप्त करने की इच्छा करता है ,उस कारक को कर्म कहते हैं। कर्तुःपद का क्या प्रयोजन है ?माषेषु अश्वं बध्नाति। यहां पर 'माष' कर्म को अभीष्ट है कर्ता को नहीं । 'तमप्' पद का क्या प्रयोजन है ?पयसा ओदनं भुङ्क्ते।यहाँ कर्म पद की अनुवृत्ति आने पर इस सूत्र में पुनः कर्म पद से आधार की निवृत्ति होती है। नहीं तो गेहं प्रविशति में ही द्वितीया होती।
व्याख्या :– कर्ता का अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इप्सित जो कारक है। उसकी कर्म संज्ञा होती है अर्थात उसे कर्म कहते है।**उदाहरण– माणवकः ओदनं पचति** (ब्रह्मचारी भात पकाता है) इस वाक्य में कर्ता–माणवक है , क्रिया–पकाता है तथा कर्म ओदन है। कर्ता – माणवक पचन् रूपी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इप्सित जो ओदन है उसकी कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है ।अतः ओदन+अम्=ओदनम् द्वितीयान्त पद हुआ ।

कर्तुः किम्
ग्रन्थकार प्रश्न करते हैं कि सूत्र में कर्तुः पद का प्रयोग क्यों किया गया ?
उतर देता है। 'माषेष्वश्वं बध्नाति' अर्थात् माषों उड़दों में चरते हुये अश्व को बाधता है। (जिससे माष नाश न हो) यदि कर्तृपद का ग्रहण न करेंगे तो कर्म अश्व को अभीष्टतम माष शब्द की भी कर्मसंज्ञा हो जाएगी और माषेषु के स्थान में 'माषान्' यह अनिष्ट प्रयोग हो जायेगा। अतः कर्तृपद का ग्रहण किया । कर्तृपद के ग्रहण करने पर माष की कर्मसंज्ञा नहीं होती , क्योंकि माष कर्म (अश्व) को चरने के लिए अभीष्टम है , कर्ता (क्षेत्रपति) को नहीं । उसे तो प्रकृति वाक्य (माषेषु अश्वं बध्नाति) में माषरक्षार्थ बंधन क्रिया के द्वारा अश्व ही अभीष्टतम है।

तमब्ग्रहणं किम् ? ग्रन्थकार के प्रश्न का आशय है कि 'तमपो ग्रहणं यत्र' इसे बहुव्रीहि समास के द्वारा ईप्सिततम् दूसरे पदसमुदाय में प्रश्न है। अर्थात् इस पद के ग्रहण न करने पर भी 'कर्तुः क्रियया कारके कर्म' इस वाक्य में योग्यता के कारण 'उद्देश्यम्' इस पद का अध्याहार होगा तब 'कर्ताः क्रियया आप्तुमुद्देश्यं कारकं कर्मसंज्ञ स्यात्'। ऐसी वृति होगी। अर्थ होगा कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने के लिए उद्देश्य भूत कारक कर्मसंज्ञ हो ऐसी स्थिति में सफल इष्टसिद्धि हो ही जायेगी फिर ईप्सिततम् का महत्त्व क्यों किया ? ग्रन्थकार सामाधान करता है–'पयसा ओदनं भुंक्ते ,भोजन करो, ऐसा पथ्य का निर्देश करने पर दूध भात खाने में प्रवृत होता है। इन दोनों स्थितियों में ओदन–भोजन ही इष्टतम है , पथ्य तो उसका उपकरण है। अतः यदि ईप्सिततम् ग्रहण न करेगें तो भोजनोद्देश्य पय की भी कर्मसंज्ञा हो जाएगी जो अभीष्ट नहीं है।पय की कर्म संज्ञा न हो जाय इस लिए सूत्र के तमप् ग्रहण किया गया ।

5–अनभिहिते 2/3/1।। इत्यधिकृत्य।।

अर्थः– आने वाले सूत्रों में अनभिहित (न कहा हुआ, अनुक्त) शब्द अधिकार जानना

चाहिये।इस विभक्ति विधायक प्रकरण में 'अनभिहिते' इस सूत्र का अधिकार है। अर्थात् अनुक्त कर्मादि में विभक्ति का विधान होता है। जो क्रिया उक्त नहीं (साक्षात् सम्बन्ध नहीं) वह अनुक्त कहलाता है।

6 – कर्मणि द्वितीया 2/3/2।।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि 'प्रातिपदिकार्थ मात्रे' इति प्रथमैव। अभिधानं तु प्रायेण तिङ्कृतद्धितसमासैः। तिङ्– हरि सेव्यते । कृत्– लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः – शतेन क्रीतः शत्यः। समासः – प्राप्तः आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः।क्वचिन्निपातेनाऽभिधानम्। यथा – विषवृक्षोऽपि संवर्ध्यः स्वयं तुमसाम्प्रतम्। साम्प्रतमित्यस्य हि युज्यते इत्यर्थः।।

अर्थः – अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा–हरिं भजति (हरि को भजता है) जब कर्म अभिधान या कथित हो तो प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। कर्मादि का अभिधान या कथन प्रायः तिङ् , कृत् तथा तद्धित प्रत्यय एवं समास द्वारा होती है। तिङ्–हरिः सेव्यते (लक्ष्मी द्वारा सेवित) तद्धित–शतेन क्रीतः शत्यः (सौ से खरीदा हुआ) प्राप्तः आनन्दः यं स प्राप्तानन्द (जिसको आनन्द प्राप्त कर लिया है) कहीं कहीं तो समास कर्मकारक निपात द्वारा भी उक्त कहा जाता है। यथा–

"विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेतुमसाम्प्रतम्" (विष का लक्ष्य बढ़ाकर स्वयं काटना उचित नहीं होता)असाम्प्रतम् का अर्थ है–'न साम्प्रतम्' इसका अर्थ है–उचित नहीं है।

व्याख्या – अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। **हरिं भजति** इस उदाहरण में हरि अनुक्त कर्म है। अतः इससे द्वितीया विभक्ति होती है, क्योंकि 'भजति' इसका क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध भक्तादि कर्ता कारक का है। कर्म का नहीं । इसी प्रकार रमेशः पत्रं लिखति , सुरेशः ग्रामं गच्छति आदि उदाहरण समझना चाहिए।

अभिहिते तु कर्मणि अर्थात् क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले कर्म को (कर्म वाच्य के कर्म में) तो प्रादिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। यह अभिधान (कथन) प्रायः तिङ् , कृत् , तद्धित तथा समास द्वारा होता है।

अब इन चारों का क्रमशः उदाहरण दिया जा रहा है।

तिङ् का उदाहरण –

हरिः सेव्यते लक्ष्म्या (लक्ष्मी के द्वारा हरि की सेवा की जाती है) इसमें 'सेव्यते' इस तिङन्ते क्रिया पद से साक्षात् सम्बन्ध हरिः यह कर्म है। क्यों कि यहॉ क्रिया से वाचक कर्म है, अतः प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। और उस अनुक्त कर्ता में कर्तृकरणयोस्तृतीया सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है।

कृत का उदाहरण

लक्ष्या सेवितः हरिः (हरि लक्ष्मी द्वारा सेवित है) यहाँ सेवितः से क्त प्रत्यय कृदन्त, है , तथा कृत द्वारा हरि का कर्मत्व कहा गया है अतः उक्त कर्म 'हरि' में प्रातिपदिकार्थ इस सूत्र से प्रथमा विभक्ति हुई।

तद्धित का उदाहरण

शतेन कृतः शत्यः अश्वः (सौ रूपये से खरीदा हुआ अश्वादि इस वाक्य के शत्य शब्द में तद्धित यत् प्रत्यय 'कृत' इस कमार्थक क्त प्रत्यय, प्रत्ययान्त शब्द के अर्थ में हुआ है , अतः इससे कर्म का अभिधान होता है अतएव कृत वस्तु अश्वादि के अनुसार शत्य शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में शत्य पद पुलिंग में प्रयुक्त है।

समास का उदाहरण

प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः। (प्राप्त कर लिया है आनन्द ने जिसको)यहॉ कर्म के

अर्थ में बहुव्रीहि समास हुआ है यहॉ पर 'यम्' इस द्वितीयान्त कहा जाने वाला अन्य पदार्थ कर्मत्व से युक्त है। अतः यम् शब्द से अभिहित (निर्दिष्ट)ग्राम आदि शब्द मे द्वितीया नहीं होगी अपि तु प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

क्वचिन्निपातेनाऽभिधानम् (कही पर निपात से भी कर्म का अभिधान होता है) यथा विषवृक्ष को भी बढ़ाकार स्वयं काटना अयुक्त है। यहाँ असाम्प्रतम् का अर्थ युज्यते है। यहा अपि निपात से विष वृक्ष इस कर्म का अभिधान होता है, अतः इसमें प्रथमा विभक्ति होती है।

7–तथायुक्तं चानीप्सितम् 9/4/20।।

ईप्सिततमवत् क्रियया युक्तम् अनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति ।ओदनं भुंजानो विषं भुङ्क्ते।।

अर्थः– जब कोई पदार्थ कर्ता द्वारा अत्यधिक ईप्सित (चाहा हुआ) नहीं होता है तो उस पदार्थ में भी कर्म कारक होता है तथा कर्म कारक होने से कर्म में द्वितीय विभक्ति होती है। क्रिया के मध्यम से कर्ता का ईप्सिततम् कर्म माना जाता है। जहां पर कर्म के लिए क्रिया होती है, वहां पर 'कर्म' ईप्सित के साथ अनीप्सित (नहीं चाहे गये) भी कर्म हो जाता है

यथा –ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गांव जाता हुआ तृण को छूता है ,) इस उदाहरण में कर्ता का इप्सित ग्राम है किन्तु जाते समय तिनके का भी स्पर्श अनायास हो जाता है यद्यपि कर्ता का उद्देश्य गांव जाना है इसलिए तृण अनिप्सित हुआ। अतः अनिप्सित तृण की कर्म संज्ञा होती है। उसके तृणम् में द्वितीया विभक्ति होती है। **ओदनं भुंजानो विषं भुङक्ते** (भात खाते हुए विष को भी खा लेता है) इस उदाहरण में चावल खाने को विष इप्सित नहीं है। किन्तु भुङ्क्ते क्रिया के साथ उसका अत्यधिक सम्बन्ध है। न चाहते हुए भी खा लेता है। इस लिए विष की कर्म संज्ञा तथा कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होती है।

8 अकथितं च 9/4/29।।

अपादानादि विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।।

दुह्याच्पच्दण्ड्रूधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।

कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृीकृष्वहाम्।।

दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां कर्मणा यद् युज्यते तदेव अकथितं कर्म इति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः। गां दोग्धि पयः, बलिं याचते बसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरूणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्म ब्रूते शास्त्रि वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति , हरति, कर्षति , वहति वा। अर्थ निबन्धनेयं संज्ञा । बलि भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति इत्यादि। कारकं किम् ? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति।।

अर्थः– आपादान आदि कारकों द्वारा किसी कारक से जो कारक अविवक्षित होता है अर्थात् अपादानादि कारकों द्वारा किसी कारक को अभिव्यक्त न करना हो तो उसकी कर्म संज्ञा हाती है। अभिप्राय यह है कि जब अपादानादि के रूप में न कहा जाय , किन्तु साधारण रूप में कहा जाय , तब उसकी कर्म संज्ञा होती है , उसे गौण कर्म कहते है , वस्तुतः वहां कर्म में भिन्न अर्थ की प्रतीत होती है।

व्याख्या– 1–दुह् (दुहना दूध निकालना) 2– याच् (मॉगना), 3–पच् (पकाना), 4–दण्ड् (दण्ड देना) 5–रूध् (रोकना), 6– प्रच्छ (पूछना) 7–चि (चुनना), 8– ब्रू (कहना), 9–शास्–(शासन करना), 10–जि (जीतना), 11–मन्थ (मथना), 12– मुष् (चुराना), 13– नी (ले जाना) 14–हृ (हरण करना ले जाना), 15– कृष् (खींचना), 16–वह् (ले जाना,

होना), इस दूह आदि 12 तथा 4 कुल मिलाकर 16 धातुओं के ही जो अपानादि कारक होते हैं उनकी अपादानादि के रूप में विशेष विवक्षा न हो तो उनकी कर्म संज्ञा होती है। अपादानादि की विवक्षा न करने के कारण कर्म कारक होने से अकथित कर्म हुए। इस प्रकार परिगणन करना चाहिए।

उदाहरण – इन सोलहो धातुओं का क्रमशः उदाहरण दिया जा रहा है–

1–दुह् धातु का उदाहरण

गां दोग्धि पयः–(गाय से दूध निकालता है, या दुहता है) यहां 'गाय' सामान्यतः अपादान कारक है किन्तु यह अपादान कारक के रूप में विवक्षित है अतः 'अकथितं च' से गो की कर्म संज्ञा होकर कर्म में द्वितीया होती है। इसका तात्पर्य यह है कि गो **सम्बन्धी पयः कर्मक दोहन क्रिया। यहा पर 'पयः' प्रधान कर्म है तथा 'गाम्' गौण कर्म।**

2–याच् धातु का उदाहरण–

बलिं याचते वसुधाम् – (बलि से पृथ्वी मांगता है) यहां 'बलि' गौण कर्म है तथा 'वसुधा' प्रधान कर्म है। तथा मॉगने की क्रिया का निमित बलि है। अपादान की विवक्षा न होने पर बलि की कर्म संज्ञा होकर द्वितीय विभक्ति होती है। अपादान की विवक्षा में 'बलेर्याचते वसुधाम्' प्रयोग होगा । इसी प्रकार **अविनीतं विनयं याचते–** (अविनीत से विनय की प्रार्थना करता है) यहां अविनीत गौण कर्म है तथा 'विनय' प्रधान कर्म है यहां अपादान की अविवक्षा होने से कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

3–पच् धातु का उदाहरण –

तण्डुलान् ओदनं पचति– (चावलों से भात पकता है) यहां 'ओदनं' मुख्य कर्म है तथा 'तण्डुल' करण है तण्डुल में भी कर्म की विवक्षा होने पर द्वितीया विभक्ति होती है अतः तण्डुल गौण कर्म है।

4–दण्डधातु का उदाहरण–

गर्गान् शतं दण्डयति – (गर्गों से सौ रूपये दण्ड लेता है) यहां 'शत' मुख्य कर्म हैं तथा गर्ग अपादान कारक हैं। अतः गर्ग में कर्मत्व की विवक्षा होने से द्वितीया होती है।

5–रूध धातु का उदाहरण –

ब्रजमवरूणद्धि गाम् – (गाय को ब्रज से रोकता है) यहां पर 'गाम्' में मुख्य कर्म है तथा 'ब्रज' में गौण कर्म है। यहॉ 'व्रज' अधिकारण है किन्तु विवक्षा न होने से गौण कर्मत्व है अतः यहां अकथित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

6–प्रच्छ धातु का उदाहरण

माणवकं पन्थानं पृच्छति – (बालक से मार्ग पूछता है) यहां पथ मुख्य कर्म है तथा माणवक गौण कर्म। माणवक अपादान होते हुए भी उसमें कर्म कि विवक्षा होने पर द्वितीया विभक्ति होती है किन्ही के मत में 'माणकय' करण भी है।

7–चि धातु का उदाहरण–

वृक्षम् अवचिनोति फलानि– (वृक्ष से फलों को चुनता है) यहां फल मुख्य कर्म है। तथा वृक्ष गौण कर्म है किन्तु अपादान की अविवक्षा में उक्त सूत्र से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है।

8–व्रू धातु का उदाहरण –

माणवकं धर्मं व्रूते (माणवक के लिए धर्म का उपदेश करता है)

9–शास् धातु क उदाहरण –

माणवकं धर्मं शास्ति–उभयतः धर्म मुख्य कर्म तथा माणवक गौण कर्म है किन्तु यहां माणवक में सम्प्रदान की अविवक्षा है। अतः उभयतः कर्म की विवक्षा होने पर द्वितीय होती है।

10–जि धातु का उदाहरण

शतं जयति देवदत्तम्– (देवदत्त से सौ रूपये जीतता है) यहां शत मुख्य कर्म है तथा देवदत्त गौण कर्म है। देवदत गौण अपादान संज्ञक होते हुए उसमें कर्म विवक्षा होने पर द्वितीय विभक्ति होती है।

11–मथ् धातुका उदाहरण

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति – (समुद्र से अमृत मथता है)– यहां पर सुधा मुख्य कर्म है तथा 'क्षीरनिधीं गौण' कर्म है। क्षीरनिधी में अपादान की प्रधानता होते हुए भी यहां कर्म की विवक्षा होती है। कतिपय विद्वान् 'क्षीरनिधि' को मन्थन क्रिया का मुख्य कर्म मानते है– अर्थात् सुधा के लिए क्षीरनिधि को मथता है यह अर्थ है अतः सुधा सम्प्रदान है यहां कर्मत्व की विवक्षा में द्वितीया होती है।

12 मुष् धातु का उदाहरण–

देवदत्तं शतं मुष्णाति– (देवदत से सौ रूपये चुराता है) यहां 'शत' मुख्य कर्म है तथा 'देवदत्त' गौण कर्म है– यद्यपि देवदत्तं में अपादानत्व की अविवक्षा है अतः उसमें विशेष विवक्षा न होने पर द्वितीया विभक्ति हुई है।

नि , हृ , कृष् , वह् इन चार धातुओं का उदाहरण –

13–16– ग्राममजां नयति ,हरति ,कर्षति, वहति वा (गांव में बकरी को ले जाता हरण करता है, खीचता है, ढोता है–यहां 'अजा' मुख्य कर्म एवं ग्राम गौण कर्म है यहां ग्राम में अधिकरण कारक की विवक्षा नहीं हुई है अतः उसमें कर्म संज्ञा होकर द्वितीय होती है।)

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा।बलिं भिक्षते बसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति इत्यादि।कारकं किम् ? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति।

'अकथितं च' सूत्र से होने वाली कर्म संज्ञा धातुओं के अर्थ पर आधारित होती है। अर्थात् दुह् आदि धातुओं के योग मे भी अपादान आदि की विवक्षा होने पर कर्म संज्ञा हो जाती है। यथा–बलिं भिक्षते वसुधाम्–यहां याच् धातु के समान अर्थवाली 'भिक्ष्' धातु के योग में भी बलि की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है माणवकं धर्म भाषते :– यहां 'ब्रू' धातु के अर्थ होने वाली 'भाष्' आदि धातु के योग में 'माणवकम्' में द्वितीया विभक्ति हो जाती है। अतः– अन्य परिगणित धातुओं की समानार्थक धातुओं के योग में भी कर्म संज्ञा होती है।

अन्य उदाहरण–

सूत्र में कारक शब्द रखने का क्या प्रयोजन ? आर्थत् कारके इस अधिकार के कारण 'कारकम्' की अनुवृति होने से **माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति** (बालक के पिता से मार्ग पूछता है) इस वाक्य में माणवक कारक नहीं , क्योंकि इसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं माना गया है। अतः सम्बन्ध में षष्ठी होती है।

वार्तिक–

अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् ।।

कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमस्ति।

अर्थः– अकर्मक धातुओं के योग में देश = समय , भाव = क्रिया तथा गन्तव्य =जाने योग्य मार्ग को बतलाने वाले शब्द की कर्म संज्ञा होती है। यहॅा भाव का अर्थ किसी क्रिया के करने में लगने वाला समय है।

देशवाची कुरून् स्वपिति–(कुरूदेश में सोता है) यहां सोना (स्वपिति) धातु अकर्मक है उसके योग में देशवाची 'कुरू' शब्द कर्म संज्ञक हुआ । यहॅा अधिकरण की अविवक्षा में कुरून् कर्म हुआ अतः द्वितीया विभक्ति हुई। प्रायः देशवाची शब्दों का बहुवचन में ही प्रयोग होता है अतः उक्त वाक्य में कुरून् शब्द लिखा गया है।

कालवाची– मासम् आस्ते (मास भर रहता है) यहॅा मास काल वाची है। यहॅा काल शब्द से दिन रात को समूह वाचक मास आदि का ग्रहण होता है। 'आस्' अकर्मक धातु है अतः समय वाचक शब्द 'मास' की संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति हुई है।

गोदोहम् आस्ते – (गाय दोहने के समय रहता है) यहां "गोदोहम्" भाव या अवस्था बताता है। 'आस्' धातु अकर्मक है। अतः भाव वाचक 'गोदोह' की कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति होती है।

गन्तव्य– क्रोशम् आस्ते (कोस भर है) इस वाक्य में 'क्रोश' मार्ग की लम्बाई बतलाता है। 'आस्' अकर्मक धातु है , अतः क्रोश की कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति हुई।

विशेष–जहां पर "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" 2/3/5/ सूत्र से द्वितीया विभक्ति प्राप्त नहीं होती वहां उक्त वार्तिक से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है। जब कुरू आदि का प्रयोग अधिकरण में होता तब 'कुरूषु स्वपि' आदि प्रयोग बनता है ।

9 गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ

1/4/52। गत्याद्यर्थानां , शब्दकर्मणाम् , अकर्मकाणां च (धातूनां) अणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्।

शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्।।
आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स में श्री हरिर्गतिः।।

अर्थः– गति (चलना), बुद्धि (जानना), प्रत्यवसान (खाना), अर्थ वाली धातुओं का , शब्द कर्मक (जिसका शब्द कर्म है) , तथा अकर्मक धातुओं का जो अण्यन्त अर्थात् अप्रेरणार्थक अवस्था में कर्ता होता है , वह जब उक्त धातुओं से 'णिच्' प्रत्यय लगाकर प्रेरणार्थक रूप बनाते है तो पहली अवस्था में जो कर्ता रहता है वह कर्म हो जाता है।

1– **शत्रूनगमयत् स्वर्गम्** (शत्रुओं को स्वर्ग भेजा गया) में अगमयत् प्रेरणार्थक क्रिया है। अप्रेरणार्थक में – शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्। इन्हें हरि ने स्वर्ग जाने हेतु प्रेरित किया अतः हरि प्रयोजक कर्ता है। अतः अणिजन्त अवस्था का कर्ता 'शत्रवः' अगमयत् (णिजन्त) का कर्म होता है। अतः कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर शत्रून् बनता है।

2– **वेदार्थ स्वान् अवेदयत्** (स्वजनो को वेद का अर्थ समझाया) यहां प्रेरणार्थक अवेदयत् क्रिया है इसमें वुद्धि (ज्ञान) अर्थ वाली धातु विद् है। 'स्वे वेदार्थम्' अविदुः यह अप्रेरणार्थक क्रिया का रूप है। उक्त नियम से अण्यन्त दशा का कर्ता णिजन्त की प्रक्रिया में कर्म हो जाता है अतः कर्म होकर द्वितीया विभक्ति होती है– (स्वान्)

3–**आशयत् यच अमृतं देवान्** (देवताओं को अमृत पिलाया गया) यहॉ 'अश्' धातु भक्षण अर्थ वाली धातु है–प्रेरणार्थक क्रिया 'आशयत्' है। अप्रेरणार्थक 'क्रिया' का–देवाः अमृतं आश्नन् रूप है। उक्त नियम से अण्यन्त अवस्था का कर्ता देवाः णिजन्त दशा में कर्म हो गया है तथा कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर –'देवान्'बनता है

4– **वेदम् अध्यापयद् विधिम्** (ब्रह्मा को वेद पढ़ाया) यहां 'अध्यायपद्' प्रेरणार्थक क्रिया है तथा विधिः वेदम् अध्यैत (बह्मा ने वेद पढ़ा) यहां अध्यैत –क्रिया अप्रेरणार्थक है। पढ़ाने अर्थ की धातु से प्रेरणार्थक होने से विधि (कर्ता) को विधिम् (कर्म) हुआ । अध्यापयत् शब्द कर्मक धातु है। इसका कर्म शब्द है, अतः उक्त सूत्र से कर्ता को प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति होकर–विधिम् प्रयोग बनता है।

5–**आसयत् सलिले पृथ्वीम्** (पृथ्वी को जल में स्थित किया) यहां 'आसयत्' क्रिया प्रेरणार्थक है। आस् बैठना धातु अकर्मक है–

आसयत् सलिले पृथ्वीम् (पृथ्वी पर जल स्थित हुई) यहां 'आस्त' क्रिया अप्रेरणार्थक है –तां हरिः आसयत् उसे हरि ने स्थित किया ।इस प्रकार साधारण दशा के कर्ता पृथ्वी की कर्म संज्ञा होकर द्वितीय विभक्ति होकर पृथ्वीम् बनता।

श्लोकार्थः–

जिस श्री हरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा , स्वजनों को वेद का अर्थ बताया , देवों को अमृत खिलाया , ब्रह्मा को वेद पढ़ाया तथा पृथ्वी को जल पर रखा , वही हरि मेरा उद्धार करने वाले है।

"गति" – इत्यादि किम् ? पाचयत्योदनं देवदत्तेन। अण्यन्तानां किम् ? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम् , तमपरः प्रयुङ्क्ते , गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः।

अर्थः– गत्यर्थक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता को ण्यन्त अवस्था में कर्म संज्ञा होती , ऐसा क्यों कहा गया है ? क्योकि–पाचयति ओदनं देवदत्तेन (देवदत से ओदन बनवाता है) इस वाक्य में 'पच्' धातु गत्यर्थक , ज्ञानार्थक , भोजनार्थक , शब्दकर्मक अकर्मक या कुछ भी नहीं है अतः प्रेरणार्थक् में देवदत्त की कर्म संज्ञा न होकर अनुक्त कर्ता होने के कारण कारक में **"कर्तृकरणयोस्तृतीया–2/3/18।।** से तृतीया विभक्ति

होती है।

अण्यन्तानां किम् ?

अप्रेरणार्थक क्रिया के कर्ता को ही प्रेरणार्थक में कर्म करने का नियम क्यो कहा ? क्योंकि प्रेरणार्थक क्रिया के कर्ता के साथ यह नियम नहीं लगेगा–यथा–गमयति देवदत्त यज्ञदत्तम् (देवदत्त यज्ञदत्त को भेजता है) यहां 'गमयति' प्रेरणार्थक क्रिया है– तथा इसका कर्ता देवदत्त–यदि अन्य देवदत्त को (देवदत्त को भेजने) की प्रेरणा देता तो वाक्य होगा 'गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः' (विष्णुमित्र देवदत्त के द्वारा यज्ञदत्त को भिजवाता हूँ) तथा यहॉ प्रेरणादायक 'देवदत्त' करण कारक में रखा जाऐगा। कर्म नहीं होगा। इसलिए अप्रेरणार्थक क्रियाओं से प्रेरणार्थक बनाते समय उक्तार्थ की क्रियाओं के कर्ता को कर्म होगा, प्रेरणार्थक क्रियाओं से नहीं।

वार्तिक– नीवह्योर्न–नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन।

नी , वह् (ले जाना) णिजन्त धातुओं के कर्ता को प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म नहीं होता किन्तु करण कारक होता है।

यथा–नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन (भृत्य द्वारा भार ले जाया जाता है) 'भृत्यः भारं नयति वहति वा' यहां भृत्य साधरण दशा का कर्ता 'भृत्यः' की अर्थात् प्रयोज्य कर्ता है। अतः नी , वह् धातु के साथ अप्रेरणार्थक के कर्ता 'भृत्यः' की प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा होकर करण होने से तृतीया में भृत्येन हुआ।

नी वह दोनों धातुएं गत्यर्थक हैं। गत्यर्थक होने से '' **गतिवुद्धि प्रत्यवसानार्थ''** – इस सूत्र में अण्यन्त कर्ता को प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म होना चाहिए था किन्तु नीवह्योर्न–' इस वार्तिक द्वारा निषेध हो गया।

वार्तिक–"नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः" (वाहयति रथं वाहान् सूतः)' नीवह्योर्न इस वार्तिक द्वारा किया गया कर्म संज्ञा का निषेध वहां नहीं होगा , जहां 'वह्' धातु का कर्ता नियन्ता (हांकने वाला सारथि ले जाने वाला) होगा। यथा– वाहाः = अश्वाः रथं वहन्ति तान् नियन्ता = सारथिः प्रेरयति– वाहयति रथं वाहान् सूतः (सारथि घोड़ों द्वारा रथ को खिंचवाता है) यहां 'वाहयति' प्रेरणार्थक क्रिया के साथ नियन्तृकर्तक सूत्र कर्ता है अतः प्रयोज्य कर्ता की कर्म संज्ञा होकर वाहान् में द्वितीया विभक्ति होती है।

वार्तिक– "आदिखाद्योर्न"– आदयति खादयति वा अन्नं वटुना। अद् तथा खाद् (खाना , भक्षण करना) धातुओं के अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता होता है उसकी प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म संज्ञा नहीं होती है उसकी प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म संज्ञा नहीं होता है।

अद् तथा खाद् दोनों प्रत्यवसानार्थ (भक्षण अर्थ) धातुएं है अतः **''गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ''**–इस सूत्र से अण्यन्त अवस्था के कर्ता को प्रेरणार्थक में कर्म होना चाहिए था किन्तु आदिखाद्योर्न वार्तिक द्वारा निषेध हो गया।

आदयति खादयति वा अन्नं बटुना (बालक को अन्न खिलाता है)– वटुः अन्नम् अत्ति खादति वा तम् अन्यः प्रेरयति–यहॉ अद् और खाद् धातु के भक्षणार्थक होने के कारण '' **गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ''**–''–सूत्र से बटु की कर्म संज्ञा प्राप्त थी किन्तु प्रस्तुत वार्तिक द्वारा कर्म संज्ञा का निषेध हो गया । अत एव कर्ता 'बटु' प्रेरणार्थक क्रिया के साथ करण में प्रयुक्त होकर तृतीया विभक्ति में आया है।

वार्तिक ''भक्षेरहिंसार्थस्य न'' भक्षयत्यन्नं बटुना। अहिंसार्थस्य किम् ? भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्।

भक्ष् धातु का अर्थ हिंसा या चोट पहुंचाना नहीं होता है , तो कर्ता को प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा नहीं होती। किन्तु जब भक्ष् (खाना) धातु का हिंसा या हानि पहुचाने का अर्थ होगा। तब यहॉ कर्ता प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा होगी।

यथा भक्षयति अन्नं वटुना–वटुः अन्नं भक्षयति (वटु अन्न खाता है)– तम् अन्यः प्रेरयति–भक्षयति अन्नं वटुना यहां भक्ष् का हिंसा अर्थ नहीं है , अपितु खाना है अतः वटु की कर्म संज्ञा न होकर कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।अहिंसार्थक ऐसा क्यों कहा गया ? जहां 'भक्ष्' धातु के भाव से हिंसा प्रकट होती है वहां इसके प्रयोज्य कर्ता की कर्म संज्ञा होने से– बलीवर्दाः सस्यं भक्ष्यन्ति तान् अन्यः प्रेरयति भक्षयति बलीवर्दान्

सस्यम् यहां बलीवर्दान् में द्वितीया विभक्ति होती है। यहॉ 'भक्ष्' का अर्थ दिखाकर हानि पहुॅचाना है अतः कर्म संज्ञा हो जाएगी।

वार्तिक– ''जल्पतिप्रभृतीनामुपसख्यानम्'' जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः।

'जल्प्' आदि धातुओं के विषय में भी यह नियम जानना चाहिए कि जो अवस्था में कर्ता हो उसे , प्रेरणार्थक दशा में कर्म संज्ञा होती है। ''–सूत्र में शब्दकर्मक धातु का कथन किया गया है किन्तु 'शब्द करना' का उल्लेख नहीं है। अतः वार्तिककार को 'जल्पति'–(देवदत्त पुत्र को धर्म सिखता है) इस वाक्य में पुत्र में कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति होती है।

वार्तिक– **'दृशेश्च'**–दर्शयति हरिं भक्तान्। सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहण न तु तद्विशेषार्थानामेव ग्रहणं न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रति इत्यादीनां न। स्मारयति , घ्रापयति वा देवदत्तेन।

दृश् (देखना) धातु का सामान्य दशा का कर्ता प्रेरणार्थक के प्रयोग में कर्म संज्ञक हो जाता है– यथा–भक्ताः हरिं पश्यन्ति (भक्त हरि को देखते है) तान् गुरू प्रेरयति– दर्शयति हरिं भक्तान् यहाँ उक्त वार्तिक से 'भक्त' की कर्म संज्ञा होने से कर्म में द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

सूत्र ज्ञान सामान्यार्थानाम्– **गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ** आदि सूत्र में वुद्धि शब्द से ज्ञान सामान्यवाची वुध् ज्ञा आदि धातुओं का ही ग्रहण होता है,ज्ञानविशेष स्मरति , जिघ्रति आदि का नहीं , यह 'दृशेश्च' वार्तिक से ही असत होता है। जब ज्ञान विशेष अर्थ वाली धातु भी वुद्धि शब्द से ग्रहीत होती है तो इस वार्तिक की आवश्यकता ही नहीं थी , क्यो कि नेत्रों द्वारा होने वाला ज्ञान ही दर्शन है।

अतःयह सूत्र'स्मरति'तथा'जिघ्रति'क्रियाओं के साथ प्रयुक्त नहीं होगा,यथा–स्मारयति, घ्रापयति वा देवदत्तेन (देवदत्त को याद करवाता है या सुंघाता है) 'स्मारयति' और 'घ्रापयति' एक विशेष प्रकार ज्ञान है। अतः देवदत्त में कर्म नहीं हुआ है।

वार्तिक – ''शब्दायतेर्न ''शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थसंगृतकर्मकत्वेन –अकर्मकत्वात् प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति तेऽत्राकर्मकाः , न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि। तेन 'मासमासयति देवदत्तम् इत्यादौ कर्मत्वं भवत्येव। 'देवदत्तेन पाचयति इत्यादौ तु न।

शब्दाय' धातु के कर्ता की प्रेरणार्थक के प्रयोग में कर्म संज्ञा नहीं होती 'शब्दाय' यह नाम धातु है शब्द करोति इस अर्थ में शब्द +क्यङ् = शब्दाय इसमें णिच् प्रत्यय होने पर 'शब्दाययति' प्रयोग बनता है।

'शब्दाययति देवदत्तेन'– यहां देवदत्त में कर्मकारक नहीं होगा। कर्ता के अनुक्त होने से देवदत्त में तृतीया विभक्ति हुई। अब यहॉ ध्यातव्य है कि 'शब्दाय' धातु के अर्थ में कर्म का ग्रहण हो जाता है अतः 'शब्दाय्' धातु अकर्मक हो गई तब ''गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ''– सूत्र अकर्मक धातु के कर्ता प्रेरणार्थक दशा में कर्म संज्ञा होनी चाहिए थी किन्तु 'शब्दायतेर्न' वार्तिक द्वारा कर्मसंज्ञा का निषेध हो गया। येषां देश देशकादि भिन्नं–तु' इत्यादौ तु न।

सूत्र में अकर्मक धातुएं वे ही कहलाती हैं जिनका देश कालादि भिन्न कर्म सम्भव नहीं होता , तथा जो धातुएं इस संदर्भ में अकर्मक नहीं कही गई हैं। इसका फल यहॉ दर्शाया जा रहा है–मासमासयति देवदत्तम् इस वाक्य में "मासम्" कालवाचक कर्म है – 'आसयति' यह अकर्मक क्रिया है, अतः देवदत्तम् , में प्रेरणार्थक अवस्था में ' गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ '– सूत्र से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है।परन्तु 'देवदत्तेन पाचयति' में देवदत्त में कर्म कारक न होकर करण कारक हुआ है क्योकि यहॉ धातु का कर्म अविवक्षित है तथापि 'पच्' धातु अकर्मक नहीं है अत एव कर्ता 'देवदत्त में तृतीया विभक्ति हो जाती है।

10–ह्रक्रोरन्यतरस्याम् 9/4/53।

ह्रक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्म स्यात्। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्।

अर्थः– ''हृ (ले जाना), कृ (करना), धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्म संज्ञा होती है अर्थात् कर्म एवं करण दोनों कारक होते है।

व्याख्या–यथा–अण्यन्त में भृत्यंः कटं हरति(नौकर चटाई ले जाता है)
ण्यन्त में–माणवकः भृत्यं भृत्येन वा कंट हारयति (माणवक नौकर से चटाई ढुलवाता है) इस वाक्य के प्रयोज्य कर्ता 'भृत्य' की विकल्प से कर्म संज्ञा होने के कारण द्वितीया विभक्ति हुई–भृत्यम्।कर्म संज्ञा नहीं होने पर कर्ता के अकथित होने से तृतीया विभक्ति 'भृत्येन' हुई।
अण्यन्त–भृत्यः कटं करोति (नौकर चटाई बनाता है)
ण्यन्त में 'माणवकः भृत्यं भृत्येन वा कटं रचयति' (माणवक नौकर चटाई बनवाता है) यहॉ पर भी कृ धातु के प्रयोज्य कर्ता कि विकल्प से कर्म संज्ञा हुई तथा कर्म में द्वितीया–भृत्यम् , कर्म संज्ञा न होने पर अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति हुई–भृत्येन।
'**हृ**' और **कृ** धातु का समावेश मूल सूत्र ''गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थ''– में नहीं था , अतः प्रयोज्य कर्तृपद कर्म नहीं होगा क्योंकि व्यवहार में विभाषा से कर्मत्व होता है अत एव पृथक् सूत्र बनाना पड़ा।

वार्तिक– ''अभिवादि दृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्''

अभिवादयते दर्शयते देव भक्तं भक्तेन वा।।

अभि उपसर्ग पूर्वक वद् धातु तथा दृश् धातु का सामान्य दशा का कर्ता , णिजन्त के आत्मनेपद के प्रयोग विकल्प से कर्म संज्ञक हो जाता है।
यथा – अभिवादते देव भक्तः भक्तेन वा (भक्त देवता को प्रणाम करके खाता है) अभिवादयति देवं भक्तं (भक्त देवता को प्रणाम करता है) से प्रेरणार्थक प्रयोग बना है , जिसमें धातु का प्रयोग आत्मनेपद क्रिया (अभिवादयते) के साथ कर्म कारक होने से (भक्तम्) हुआ अथवा अनभिहित कर्ता में कारण होने से (भक्तेन) में तृतीया हुई।दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा (भक्त से देवता को दिखवाता है) (पश्यति भक्तः देवम्) (भक्त देवता को देखता है) से प्रेरणार्थक प्रयोग बना है–आत्मनेपद में दर्शयते प्रयोग बना है। अतः भक्त कर्ता को विकल्प से कर्म संज्ञा होने से द्वितीया (भक्तम्) तथा अनुक्त कर्ता में करण होने से (भक्तेन) तृतीया विभक्ति हुई।
अतिविशेष – अभिवादयते , दर्शयते – यहॉ दोनों क्रियापदों में ''णिचश्च'' 9/3/64 सूत्र से विकल्प से आत्मनेपद होता है जहॉ आत्मनेपद नहीं होता वहां 'अभिवादयति देवं भक्तेन' में कर्ता में तृतीया होती है , तथा 'दर्शयति देवं भक्तम् में 'दृशेश्च' से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया होती है।

11– अधिशीङ्स्थासां कर्म 9/4/46।।

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्। अधिशेते , अधितिष्ठति , आध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः।
अर्थ :– अधि उपसर्ग पूर्वक शीङ् (सोना) , स्था (ठहराना) , आस् (बैठना) धातुओं के आधार की कर्म संज्ञा होती है।
व्याख्या अष्टाध्यायी सूत्र क्रम में इससे पूर्व क्रिया के आधार की अधिकरण संज्ञा वनायी गई किन्तु विशेष अवस्था में आधार की कर्म संज्ञा होती है।
स्पष्ट सूत्रार्थ के लिए ''**आधारोऽधिकरणम्'' 9/4/45** से आधार पद की अनुवृति तथा 'कारके का अधिकार पूर्व से चला आ रहा है। तदनुसार अधि उपसर्ग पूर्वक शीङ् स्था तथा आस् धातुओं के आधार की कर्म संज्ञा होने पर द्वितीया होती है–
यथा – हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते (हरि वैकुण्ठ में सोते है) में अधि पूर्वक शीङ् (अधिशेते) क्रिया का आधार वैकुण्ठ है अतः उक्त सूत्र से कर्म संज्ञा होने पर 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया होने पर उक्त प्रयोग बना।
हरिः वैकुण्ठम् अधितिष्ठति (हरि वैकुण्ठ में रहते है) यहॉ 'अधिशयन क्रिया का आधार 'वैकुण्ठ' की कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति होती है।
हरिः वैकुण्ठम् अध्यास्ते (हरि वैकुण्ठ में बैठता है) यहॉ 'अध्यास्ते' क्रिया का आधार

वैकुण्ठ है अतः उक्त सूत्र से कर्म संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति होती है

12– अभिनिविशश्च ।9/4/46।।

अभित्येतत्सङ्घातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्। अभिनिविशते सन्मार्गम्।

अर्थः– 'अभि' तथा 'नि' उपसर्ग जब दोनों एक साथ 'विश्' धातु के साथ प्रयुक्त होते हैं तो उस धातु के आधार की कर्म संज्ञा होती है। अभिनिविश् =प्रवेश करना

उदाहरण–अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग में मन लगता है) यहां क्रिया का आधार 'सन्मार्ग' है। आधार में सप्तमी विभक्ति होनी चाहिए परन्तु 'अभि' तथा 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'विश्' धातु के आधार 'सन्मार्ग' की कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति होती है।

'परिक्रयणे सम्प्रदानम् (580) इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्या अन्य– तरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थित भाषाश्रयणात् क्वचिन्न। पापेऽभि निवेशः।

'यथा – पापेऽभिनिवेशः' (पाप में प्रवृति) यहां 'पाप' अभिनि उपसर्ग पूर्वक विश् धातु से द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए किन्तु परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् 9/4/44 सूत्र से अन्यतरस्याम् पद की अनुवृति आती है। इसी के फलस्वरूप व्यवस्थित विभाषा का आश्रय कर विकल्प का निर्देश किया गया है। अतः कुत्रचित् तो सूत्र की प्रवृति बिल्कुल भी नहीं होगी। सारांशतः पापेऽभिनिवेशः में द्वितीया विभक्ति न होकर नियमानुसार सप्तमी विभक्ति ही होगी।

13– उपान्वध्याङ्वसः 9/4/46।

उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति , अनुवसति , अधिवसति , आवसति वा वैकुण्ठं हरिः।

उप,अनु,अधि तथा आ उपसर्ग पूर्वक वस् धातु का प्रयोग होवे तो क्रिया के आधार की कर्म संज्ञा होती है।

यथा–उपवसति वैकुण्ठं हरिः। अनुवसति वैकुण्ठं हरिः। (हरि वैकुण्ठ में रहते है।) यहॉ उपवस् , अनुवस् अधिवस् तथा आवस् क्रिया के आधार पर वैकुण्ठ की ''उपान्वध्याङ्वसः'' से कर्म संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति होगी ।

वार्तिक– अभुक्त्यर्थस्य न – वने उपवसति।जहॉ भूखा रहना , या अपवास करना अर्थ हो तो उस अर्थ में कर्म संज्ञा नहीं होती।

यथा–वने उपवसति (वन में भूखा रहकर उपवास करता है) वाक्य में उप पूर्वक 'वस्' धातु उपवास करने (न खाने) के अर्थ में आयी है। अतः इसके आधार 'वन' में द्वितीया विभक्ति न होकर सप्तमी विभक्ति होगी।

उपपद द्वितीया विभक्ति

वार्तिक–उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु द्वितीयाऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्। धिक् कृष्णाऽभक्तम। उपयुर्पपरि लोकं हरिः अध्यधि लोकम्। अधोऽधो लोकम्।

अर्थ–उभ और सर्व शब्द से परे तस् प्रत्यय हो तो उसके लोग में द्वितीया विभक्ति होती है। धिक् शब्द के योग तथा आम्रेडित अन्त वाले अर्थात द्वित्व किये हुए उपरि अधि, और अधः इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है उससे अन्यत्र भी द्वितीया विभक्ति देखी जाती है।

उदाहरण – उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दानो तरफ गोप है) यहॅा तस् प्रत्ययान्त उभ (उभयतः) के योग में षष्ठी विभक्ति प्राप्त है किन्तु इस वार्तिक से द्वितीया विभक्ति होती है ।

उदाहरण– सर्वतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के चारों तरफ गोप है) यहॅा तस् प्रत्ययान्त सर्व (सर्वतः) के योग में षष्ठी विभक्ति प्राप्त है किन्तु इस वार्तिक से द्वितीया विभक्ति होती है।

वार्तिक –अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि।

अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। हा कृष्णाऽभक्तम्। तस्य शोच्यते इत्यर्थः। बुभुक्षितं न

प्रतिभाति किंचित्।

अर्थः– अभितः ,परितः, समया,निकषा ,हा ,प्रति के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। अभितः दोनो ओर। परितः सब ओर । समया समीप। निकषा समीप।

14 – अन्तराऽन्तरेण युक्ते 2/3/4।

आभ्यां योगे द्वितीया स्यात्। अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्।

अर्थ–अन्तरा (बीच में) तथा अन्तरेण (बिना) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

अन्तरां त्वां मां हरिः (तुम्हारे एवं हमारे बीच में हरि है)यहां अन्तरेण के योग में 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति होती है। अन्तरा तथा अन्तरेण दोनों अव्यय है।

15–कर्मप्रवचनीयः 19/4/83। इत्यधिकृत्य।

कर्मप्रवचनीय का अधिकार दोनों रूप में कार्य करता है। 'विभाषा कृञि' 9/4/82। सूत्र पर्यन्त कर्मप्रवचनीय संज्ञा का प्रभाव रहेगा। विशेष कर्म प्रवचनीय संज्ञा अन्वर्थक है।कर्मप्रवचनीय उन पदों को कहा जाता है जो न तो विशेष क्रिया के द्योतक है , न षष्ठी के सम्बन्ध की विशेषता प्रकट करता है – वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने कहा है –

क्रियाया द्योतकोनायं सम्बन्धस्य न वाचकः।
नापि क्रियापदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः।।

'कर्म प्रवचनीय' की व्युत्पत्ति है 'कर्म क्रियां प्रोक्तवन्तः' जो पहले ही क्रिया को प्रकट कर चुके होते है। ये स्वरूप में उपसर्ग और निपात के तुल्य होने पर भी उपसर्ग से भिन्न हैं। इनका स्वतन्त्र प्रयोग होता है। इनके योग में द्वितीया पंचमी तथा सप्तमी विभक्तियॉ होती हैं। 'उपसर्ग' और 'कर्मप्रवचनीय' में यही भेद है , कि उपसर्ग वर्तमान क्रियागत विशेषण को द्योतित करते हैं जबकि 'कर्मप्रवचनीय' वर्तमान क्रिया के द्योतक नहीं रहते। पाणिनी के अनुसार ग्यारह कर्मप्रवचनीय हैं – अनु , उप , अप , परि , आङ् , प्रति , अभि , अधि , सु , अति तथा अपि। उक्त कर्म प्रवचनीयों के बाईस (22) अर्थ हैं। – हेतु लक्षण , सहार्थ , हीनता , आधिक्य , बर्जन , मर्यादा वचन , लक्षण , इत्थम्भूताख्यान , भाग , वीप्सा , प्रतिनिधि , प्रतिदान , आनर्थक्य, पूजा , अतिक क्रियमाण , पदार्थ , सम्भावन , अन्ववसर्ग , गर्हा , समुच्चय , स्वाम्य और अधिकार।

16– अनुर्लक्षणे 9/4/84।

लक्षणे द्योत्येऽनुरूक्त संज्ञःस्यात्। गत्युपसर्गसंज्ञापवादः।

अर्थ – लक्षण (हेतु) अर्थ में 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यह गति और उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है।

व्याख्या–कर्मप्रवचनीय संज्ञा का प्रकरण आरम्भ हो रहा है तदनुसार संज्ञा कर्मप्रवचनीय तथा संज्ञी अनु है। अतः लक्षण बताने के अर्थ में अनु कर्मप्रवचनीय होता है। यहॉ लक्षण शब्द का आशय 'विशेष हेतु' का होना अभिलक्षित है – 'लक्ष्यते अनने इति लक्षणम्'

17 – कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया ।2/3/8

एतेन योगे द्वितीया स्यात्। जपमनु प्रावर्षत्। हेतु भूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः। परापि हेताविति तृतीयाऽनेन वाध्यते। लक्षणेत्थम्भूतेत्यादिना –सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्।

अर्थ– कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया विभक्ति होती है यथा– पर्जन्य जपम् अनुप्रावर्षत् हेतु स्वरूप जप से वर्षणलक्षित है। यही वाक्यार्थ है 'हेतौ' सूत्र से प्राप्त तृतीया विभक्ति यद्यपि पर है तथापि इससे वह बाधित हो जाती है। इसका कारण यह है कि लक्षणेत्थ सूत्र से अनु की कर्म प्रचनीय संज्ञा सिद्ध थी। पुनः संज्ञा विधान सामर्थ के कारण तृतीया विभक्ति का बाध हो जाता है

व्याख्या– पर्यन्यः जपम् अनु प्रावर्षत् (जप के कारण प्रचुर वर्षा हुई) हॉ जप समाप्ति के पूर्व जष होने की सूचना 'अनु' से द्योतित होती है इस प्रकार यहॉ पर 'जप' लक्षण है तथा वर्षा लक्ष्य लक्षण के कारण सम्बन्ध का सूचक 'अनु' है दूसरे शब्दों में वर्षा होने में जप हेतु है उससेवर्षण लक्षित होता है अतः अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से '' कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया'' से 'जपम्' में द्वितीया विभक्ति होती है।

18 .तृतीयार्थे । 9/4/85।

अस्मिन्द्योत्येऽनुरूक्तसंज्ञः स्यात्।नदीमन्वसिता सेना। नद्या सह सम्बद्धेत्यर्थः। 'षिञ् बन्धने क्तः।'

अर्थ – तृतीया विभक्ति का अर्थ प्रतीत होने पर अनु कर्मप्रवचनीय होता है।

उदाहरण–**नदीम् अन्ववसितासेना** (नदी के साथ पड़ी हुई है) यहां पर 'अनु' शब्द से (साथ होना) द्योतित हो रहा है। अतः अनु कि कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उसके योग में 'नदीम्' में द्वितीया विभक्ति होती है।

व्याख्या– अवसित शब्द का अर्थ सम्बद्ध है अव+सि+क्त बन्धनार्थक 'षिञ् सि' धातु से क्त प्रत्यय हुआ है। उसके पुर्व 'अव' उपसर्ग है , अव उपसर्ग के बल से सम्बन्ध अर्थ हो जाता है। अन्यत्र 'कर्म प्रव–चनीय' संज्ञा का कोई फल नहीं है। तृतीया के मुख्यार्थ कर्ता और करण में कारक विभक्ति के वलवान् होने से कर्म प्रवचनीय संज्ञा व्यर्थ सिद्ध हो जाती है।

19–हीने। 9/4/86।

हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत्। अनुहरिं सुराः। हरेर्हीना इत्यर्थः।

अर्थ– हीन अर्थ में 'अनु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

अनुहरिं सुराः (देवता हरि से नीचे है) यहां 'अनु' से नीचे या 'हीन' अर्थ प्रकट होता है अतः कर्म प्रवचनीय होने से 'हरि' में ''कर्मप्रवचनीय–युक्ते द्वितीया विभक्ति हुई है।

20–उपोऽधिके च । 1/4/87।

अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राक्संज्ञं स्यात्। अधिके सप्तमी वक्ष्यते। हीने उपहरिं सुराः।

अर्थ – आधिक्य (अधिकता) और हीनता अर्थ द्योतित होने पर 'उप' अव्यय की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। जब अधिक का अर्थ होगा तो 'उप' से सम्बन्धित शब्द में सप्तमी होगी।

उदाहरण – उप हरिं सुराः (देवता हरि से नीचे है) यहॉ 'हीन' अर्थ में 'उप' के योग में 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति हुई। अति विशेष – हीन भाव की तरह आधिक्य भी सापेक्ष है। ऐसे स्थलों पर हीनता द्योतक से सप्तमी विभक्ति होगी क्योकि एक ही हीनता से दूसरे की उत्कृष्टता दर्शायी जाती है।

21 –लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। 1/4/90।

एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादय उक्तसंज्ञा स्युः। लक्षणे – वृक्षं वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युत। इत्थम्भूताख्याने – भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा। भागे – लक्ष्मीर्हरिं पर्यनु वा । हरेर्भाग इत्यर्थः।वीप्सायां–वृक्षं वृक्षं प्रति पर्यनु वा सिंचति। अत्रोपसर्गत्वाभावान्न षत्वम्। एषु किम् ? परिषिंचति।

अर्थ –लक्षण, इत्थम्भूताख्यान,भाग एवं वीप्सा अर्थ अभिलक्षित होने पर प्रति , परि एवं अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है।

लक्षण अर्थ का उदाहरण – वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत् (वृक्ष वृक्ष के ऊपर विजली चमकती है) यहां लक्षण द्योत्य है , वृक्ष के द्वारा प्रकाशित बिजली चमकती है। वृक्ष लक्षण है , विद्युत (बिजली) लक्ष्य है। वृक्ष के दिखने से विद्युत द्योतित है , अतः प्रति , परि,अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से 'वृक्ष' में उक्त सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है।

इत्थभूताख्यानार्थे – भक्तो विष्णु प्रति परि अनु वा (विष्णु के प्रति भक्त है) इत्थम्भूताख्यान का अर्थ है विशेष प्रकार को प्राप्तकर निरूपण करने वाला (कच्चित् प्रकारं प्राप्तः) । भक्त भक्तिरूप विशेष प्रकार को प्राप्त करने के कारण 'विष्णु विषयक भक्ति से युक्त' अर्थ है, अतः प्रति , पर , अनु की उक्त सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उसके योग में 'विष्णु' में द्वितीया विभक्ति हूई।

लक्षणादि अर्थे के योग में प्रति , परि , अनु , आदि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है , ऐसा क्यो कहा गया ? इसलिए की इससे भिन्न अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती

अत एव 'परिषिंचति' में परि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा न होकर उपसर्ग संज्ञा होने के फलस्वरूप 'स' को ''उपसर्गात् सुनोति''– इत्यादि सूत्र से 'ष' हो जाता है।

22– अभिरभागे – । 1/4/81।

भागवर्जे लक्षणादावाभिरूक्तसंज्ञः स्यात्। हरिमभिवर्तते। भक्तो हरिमभि। देवं देवमभिषिंचति। अभागे किम् ? यदत्र ममाभिष्या– त्तद्दीयताम्।

अर्थ–भाग अर्थ को छोड़कर लक्षण, इत्थम्भूताख्यान और वीप्सा अर्थो में 'अभि'की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। लक्ष्य लक्षण का भाव द्योतक अभि है। हरि लक्षण है तथा 'जप' जो यहां नहीं कहा गया है अतः लक्ष्य है। अतः यहॉ 'अभि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उसके योग में 'हरि' में द्वितीया विभक्ति होगी।

वीप्सा अर्थ–देवं देवम् अभि सिंचति (प्रत्येक देव को स्नान कराता है) यहां देव के साथ सेचन सम्बन्ध कह इच्छा के कारण वीप्सा है। यहॉ 'अभि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से 'देव' में द्विताया विभक्ति होती है। यहॉ 'अभि'की उपसर्ग संज्ञा नही होने के कारण 'सिंचति' में उपसर्गात् सुनोति– ''।2/3/65 ''– सूत्र से 'स' के स्थान पर 'ब' नहीं हुआ। 'भाग' अर्थ कर्म प्रवचनीय संज्ञा बाधक है। अतः यद् अत्र मम अभिष्यात् दीयताम् (इसमें जो मेरा हिस्सा है वह मुझे दीजिये) इस वाक्य में अभि की उपसर्ग संज्ञा हुई अत एव 'अभिष्यात्' में 'स' के स्थान पर 'ष्' आदेश हो गया।

23–अधिपरि अनर्थकौ । 9/4/83।

उक्त सज्ञौ स्तः। कुतोऽध्यागच्छति। कुतः पर्यागच्छति। गतिसंज्ञाबाधात् गतिर्गतौ (3877) इति निघातो न।

मूलार्थ – अनर्थक 'अधि' तथा 'परि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या – कुतोऽध्यागच्छति (कहां से आता है)

कुतः पर्यागच्छति (कहां से आता है) उक्त दोनों उदाहरणों मे अध्यागच्छति (आता है) तथा पर्यागच्छति (आता है) का अर्थ समान है। यहां 'अधि' तथा 'परि' के संयोग से 'आगच्छति' के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः 'अधि' तथा 'परि' दोनों ही अनर्थक है। यहां 'अधि' एवं 'परि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग एवं गति संज्ञा का बाध हो गया। अत एव 'अधि' और 'परि' को 'गतिर्गतौ' । 8/9/70 से अनुदात (निघात) नहीं हुआ । यही यहां पर कर्म प्रवचनीय संज्ञा करने का फल है। यदि यहां गति संज्ञा हो जाती तो 'आ' आङ् को गति मानकर 'अधि' और 'परि' दोनों गतिसंज्ञको को अनुदात हो जाता।तदनन्तर ''स्वरितात् संहितायाम् अनुदात्तानाम् । 1/2/38'' से अनुदात्तों को एक श्रुति होने लगती 'अध्यागच्छति' तथा एवमेव 'पर्यागच्छति' में भी स्वर का संचार हो जाता।

24 – सुः पूजायाम् । 1/4/84।।

सुसिक्तम्। सुस्तुतम्। अनुपसर्गत्वान्न षः। पूजायाम् किम् ? सुषिक्तं किं तवाऽत्र । क्षेपोऽयम्।

अर्थ :– पूजा अर्थ में 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती सुसिक्तम्। सुस्तुतम्। उपसर्ग–संज्ञा न होने से षकार नहीं हुआ। पूजायाम् का क्या प्रयोजन है ? सुषिक्तं कि तवात्र ? यह आक्षेप है। पूजार्थक (प्रशंसा अर्थ) 'सु' शब्द की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा – सुसिक्तम् (अच्छी तरह से सोचा है) यहां प्रशंसार्थक 'सु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है।

व्याख्या सुस्तुतम् (अच्छी स्तुति की है) यहॉ भी प्रशंसार्थक 'सु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है। यहॉ उपसर्ग संज्ञा न होने से ''उपसर्गात् सुनोति–'' सूत्र से 'स्' को 'ष्' नहीं हुआ यही कर्म प्रवचनीय संज्ञा करने का फल है।

पूजायाम्–पद का यह उदेश्य है कि प्रशंसा के अतिरिक्त निन्दा आदि अर्थो में 'सु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा नहीं होगा । अत एव सुषिक्तं किं तवाऽत्र (वाह , तुमने खूब सींचा) यहां पर 'सु' निन्दार्थक है। अतः उपसर्ग होने से 'सिक्तम्' के 'स्' को 'ष्' हो गया

25 – अतिरतिक्रमणे च । 1/4/85। अतिक्रमणे पूजायां चेति : कर्मप्रवचनीय संज्ञः

स्यात्। अति देवान् कृष्णः।

अर्थ – अतिक्रमण (उचित से अधिक होना या सीमा को लांघना) तथा पूजा (प्रशंसा) के अर्थ में 'अति' की कर्मप्रवचनीम संज्ञा होती है। इति देवान् कृष्णः।।

व्याख्या – अति देवान् कृष्णः (कृष्ण सभी देवों से बढ़कर है या कृष्ण देवों के पूज्य हैं) इस वाक्य में अतिक्रमण (बढ़कर) तथा पूजा (प्रशंसा) अर्थ अभिलक्षित होने से उक्त सूत्र से 'अति' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से 'देवान्' में द्वितीया विभक्ति कि जाती है। न होने के कारण स्तुयाद् में स् स्थान में मूर्धन्य षकार नही हुआ। विष्णुम् में कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने के कारण द्विताया विभक्ति हुई है।

26. काला ध्वनोरत्यन्त सयोंगे 2/3/5।

इह द्वितीया स्यात्। मासं कल्याणी । मासंम् अधीते ।

मांस गुडधानाः। क्रोशं कुटिला नदी। क्रोशम् अधीते। क्रोशं गिरिः। अत्यन्त संयोगे किम् ? मासस्य द्विरधीते।क्रोशस्यैक देशे पर्वतः

अर्थः– काल वाचक और मार्गवाचक शब्दों से अत्यन्त संयोग होने पर द्वितीया विभक्ति होती है।

व्याख्या अत्यन्त संयोग होने पर काल वाची और मार्ग वाची शब्दों के योग होने पर द्वितीया विभक्ति होती है। अत्यन्त संयोग का अर्थ होता है निरन्तर संयोग । काल और अध्वन = मार्ग का कालवाचक शब्दों का उदाहरण –

मासं कल्याणी (मास भर कल्याण कारिणी है) यहॉ कल्याण (रूपी गुण) मास में निरन्तर रहता है। इस प्रकार कालवाची शब्द मास, गुण कल्याणी के साथ अत्यन्त संयोग होने पर द्वितीया विभक्ति मासम् में हुई।

मासम् अधीते – (पूरे महिने भर पढ़ता है) यहॉ कालवाची शब्द मास का क्रिया अत्यन्त संयोग होने से द्वितीया विभक्ति हुई है।

मासं गुड़ धानाः महिने भर गुड़ मिश्रित धान्य खाता है) यहॉ कालवाची शब्द मास का द्रव्य गुडधान के साथ अत्यन्त संयोग होने से मासम् में द्वितीया विभक्ति हुई है।

मार्ग वाची शब्द का उदाहरण –

क्रोशं कुटिला नदी (क्रोश भर तक नदी ढेड़ी है)यहॉ मार्ग वाची क्रोश शब्द के साथ गुड़ (कुटिल) का अत्यन्त संयोग होने पर इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। क्रोशम् अधीते (कोश भर तक अध्ययन करता है) यहा मार्ग वाची शब्द क्रोश का क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग होने पर इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई।

क्रोशं गिरि : (क्रोश भर तक निरन्तर पर्वत है) यहॉ मार्ग वाची शब्द क्रोश का द्रव्य वाचक शब्द गिरि के साथ अत्यन्त संयोग होने पर क्रोशम् में द्वितीया विभक्ति होती है।

अत्यन्त संयोगः किम् (सूत्र में अत्यन्त संयोग होने पर ही द्वितीया विभक्ति होती है ऐसा क्यों कहा ? ऐसा न कहने पर मासस्य द्विरधीते (महिने में दो बार पढ़ना है) में तथा क्रोशस्यैक देशे पर्वत (क्रोश के एक में पर्वत है) समय तथा दूरी बताने वाले इन दोनों शब्दो का अत्यन्त संयोग न होने द्वितीया विभक्ति नहीं हुई। अतः दोनों में षष्ठी विभक्ति होकर रूप की सिद्धि हुई है।

27. अपि पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हा समुच्चयेषु 1/4/96।। एषु द्योत्येषु अपिरूक्त संज्ञ : स्यात्। सर्पिषोऽपि स्यात्। अनुसर्गत्वान्न षः सम्भावनायां लिङ्। तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृ दौर्लभ्य प्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते । सर्पिषः इति षष्ठी त्वापि शब्दवलेन गम्य मानस्य विन्दोरवयवावयविभावसम्बन्धे। इयमेव ह्यपि शब्दस्य पदार्थ द्योतकता नाम। द्वितीया तु नेह प्रवर्तते। सर्पिषो विन्दुना योगो न त्वपि नेत्युक्तत्वात्। अपि स्तुयाद्विष्णुम्। सम्भावनं शैत्युत्कर्ष माविष्कर्तुमत्ययुक्तिः। अपि सिंच , अपि स्तुहि–समुच्चये।

अर्थ पदार्थ , सम्भावना , अन्ववसर्ग , गर्हा (निन्दा) तथा समुच्चय इन अर्थो के घोत्य रहने पर अपि शब्द की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है।

पदार्थ का उदाहरण–

सर्पिषोऽपि स्यात्। सर्पिष् (घृत) का बिन्दु भी तो हो) यह पदार्थ द्योतन का उदाहरण है। यहा अपि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा के द्वारा उपसर्ग संज्ञा का बाध हो जाता है अतः उपसर्ग का अभाव होने के कारण स्यात् मे मूर्धन्य षकार नही हुआ । कर्म प्रवचनीय संज्ञा उपसर्ग संज्ञा से पर है अर्थात् अष्टाध्यायी के सूत्र क्रम में पर है। अतः इस लिये बाध हो जाता है। यहॉ स्यात् में उप संवादाशङ्कयोश्च इस सूत्र से सम्भावना अर्थ में लिङ् लकार होता है। उसी सम्भावना का विकास यूत अस् धातु का अर्थ जो भवन रूप पदार्थ है उस अर्थ में अध्याहार्य कर्ता जो बिन्दु है उसकी दुर्लभता से प्रयुक्त (बिन्दु की दुर्लभता से जनित) दुर्लभता को द्योतित करता हुआ अपि शब्द स्यात् इस क्रिया में अन्वित होता है। सर्पिषः यह षष्ठी विभक्ति तो अपि शब्द के सायर्थ्य से गम्यमान बिन्दु के अवयावयविभाव सम्बन्ध में हुई है। यही अपि शब्द की पदार्थ द्योतकता है। यहा सर्पि में द्वितीया विभक्ति तो प्रयुक्त नही होती , क्योंकि सर्पिका बिन्दों से योग (सम्बन्ध) है। अपि से तो नही। यह कहा जा चुका है

2– सम्भावना का उदाहरण – अपि स्तुयाद् विष्णुम् (क्या विष्णु की स्तुति कर सकेगा) यहा पर अत्यक्ति है। यहा सम्भावना अर्थ को द्योतित करने से अपि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है और उपसर्ग संज्ञा अत्यन्त संयोग गुण , क्रिया और द्रव्य इन तीनों द्वारा होता है।

3– अन्ववसर्ग का उदाहरण –

अपि स्तुहि (स्तुति करो या मत करो जैसी तुम्हारी इच्छा) जब वक्ता निश्चित रूप से आज्ञा नहीं देता और कार्य को कर्ता की इच्छा पर छोड़ देता है तो इस अर्थ में अपि की कर्म प्रचनीय संज्ञा होती है। इस लिए स्तुहि मे सकार के स्थान में मूर्धन्य षकार नहीं हुआ उपसर्ग का अभाव होने के कारण।

4 . गर्हा–निन्दा का उदाहरण –

धिग् देवदत्तम् अपि स्तुयाद वृषलम् (देवदत्त को धिक्कार है जो उस वृषल चाण्डाल की स्तुति करता है) यहा पर 'वृषल' के निन्दार्थक होने के कारण स्तुति में सकार के स्थान में मूर्धन्य षकार नहीं होगा कर्म प्रवयनीय संज्ञा होने के कारण

5. समुच्चय का उदाहरण –

अपि सिच्च अपि स्तुहि (स्तुति करो जल से सीचो भी) यहा अपि शब्द दो वाक्यों में एक साथ जोड़ने के कारण समुच्चय अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है। इस लिए स्तुयाद् में सकार के स्थान में मूर्धन्य षकार नहीं हुआ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरिय प्रश्न

1.प्रातिपदिक क्या हैं।

जो नियत उपस्थिति है वही प्रातिपदिक है।

2.परिमाण क्या है। उदाहरण दो ?

परिमाण तौल मापनादि क्रिया है , द्रोण व्रीहि : द्रोणभर चावल।

3 सम्बोधन में कौनसी विभक्ति होती है ?

सम्बोधन में प्रथमा होती है।

4 वचनमात्र में कौन सी विभक्ति होती है ?

वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

5 द्वितीया विभक्ति किस सूत्र से होता है।

कर्मणि द्वितीया

6 कर्ता के अत्यधिक चाहने अर्थ में कौनसी विभक्ति होती है

द्वितीया विभक्ति

7 मांगने अर्थ में कौनसी विभक्ति होती है।

मांगने अर्थ में द्वितीया होती है।

8 अकथितं च सूत्र से कौनसी विभक्ति है।

द्वितीया विभक्ति

9 हृ हरण करने मे कौनसी विभक्ति होती है।

द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

10 अकथितं च सूत्र में कितने धातु की कर्मसंज्ञा होती है ?

16 धातु की कर्मसंज्ञा होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1 नियतोपस्थितिकः में विभक्ति होती है।

1 प्रथमा 3 षष्ठी

2पंचमी 4 सम्बोधन

2 गां दोग्धि पयः में किस से सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती

1 कर्मणि द्वितीया 3 कर्तुरीप्सिततमं कर्म

2 अकथितं च 4 सम्बोधन

3. परिमाण वाचक में विभक्ति है।

1 सम्बोधन 3 तृतीया

2 प्रथमा 4 पंचमी

4.लिंग वाचक का उदाहरण है।

1 तटः 3 वचन

2 परिमाण 4 प्रातिपदिकार्थ

5. हे राम किसका उदाहदण है–

1 द्वितीया 3 सप्तमी

2 षष्ठी 4 सम्बोधन

6. तथायुक्तं चानीप्सितम् सूत्र से विभक्ति होती है–

1 द्वितीया 3 प्रथमा

2 षष्ठी 4 चतुर्थी

7. अकथितं च सूत्र का उदाहरण है।

1 गां दोग्धि पयः 3 मास मासमासयति देवदतम्

2 वेद अध्यापयद् विधिम् 4 हरिः वैकुण्ठ अधिशेते

8.उपान्वध्याङ्वसः से विभक्ति होती है।

1 द्वितीया 3 षष्ठी

2 पंचमी 4 चतुर्थी

9.सम्बोधन में विभक्ति होती है।

1 प्रथमा 3 तृतीया

2 पंचमी 4 षष्ठी

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि इसमें कि कितने विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में दो विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। प्रथमा विभक्ति , सम्बोधन तथा द्वितीया विभक्ति। प्रथमा विभक्ति का विधान करने वाला मुख्य सूत्र है प्रातिपदिकार्थलिङ् परिमाणवचन मात्रे प्रथमा , सम्बोधन का विधान करने वाला सूत्र है सम्बाेधने च तथा द्वितीया विभक्ति का विधान करने वालो अनेक सूत्र हैं। यथा कर्तुरिप्सिततमं कर्म , अनिप्सित की भी कर्म संज्ञा होती है , कर्म संज्ञा करने वाले

अनेक सूत्र है किन्तु कर्म में द्वितीया विभक्ति करने वाला सूत्र एक ही है कर्मणि द्वितीया कर्म प्रवची संज्ञा में भी द्वितीया विभक्ति होती है। इस प्रकार इस इकाई में प्रथमा विभक्ति सम्बोधन तथा द्वितीया विभक्ति का सम्यग रूप से वर्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
नियतोपास्थिकः	निश्चित उपास्थित
उच्चैः	उचा
नीचैः	नीचा
कृष्णः	भगवान कृष्ण
श्रीः	लक्ष्मी
ज्ञानम्	ज्ञान
तटः	किनारा
द्रोणः	नाप
ब्रीहिः	अन्य
दो	दो
बहवः	बहुत
आप्तुमिष्टतमम्	अत्यन्त इप्सित
कर्तुः	कर्ता का
पयसा	दूध के द्वारा
ओदनम्	चावल
कर्मणि	कर्म में
सेव्यते	सेवा की जाती है।
क्रीतः	खरीदा हुआ
सम्बर्ध्य	बढ़ाकर
गच्छन्	जाते हुए
तृणम्	तृण (घास)
विषं भुडक्ते	विष खाता है
गां दोग्धि	गाय दुहता है
शतं दण्डपति	सौ रूपये दण्ड लगाता है
मासमास्ते	महिने भर ठहरता है।
शत्रूनगमयत	शत्रुओं को भेजा
ओदनं पाचयति	चावल (भात पकवाया)
दर्शयति	दिखलाता है
वैकुण्ठम् अधिशेते	वैकुण्ठ में सोता है।
उभयतः कृष्णं गोपाः	कृष्ण के दानों तरफ गोपिया है
परितः कृष्णम्	कृष्ण के चारो और
अन्तरेण	बीच
अन्तरा	बिना
कुतो अध्यागच्छति	कहा से आता है
सुस्तुतम्	अच्छी सेवा की
धिग् देवदतम्	देवदत को धिक्कार है।
मासम् अधीते	महिने भर (पढ़ता है)
क्रोशं गिरिः	क्रोश भर तक पर्वत है।

1.6 . अभ्यास प्रश्नों के उतर

अतिलघूत्तरिय प्रश्नों के उत्तर

अतिलघूत्तरिय प्रश्न

1.जो नियत उपस्थिति है वही प्रतिपदिक है।
2. परिमाण तौल मापनादि क्रिया है , द्रोण व्रीहि : द्रोणभर चावल।
3. सम्बोधन में प्रथमा होती है।
4. वचनमात्र प्रथमा विभक्ति होती है।
5 . कर्मणि द्वितीया
6. द्वितीया विभक्ति
7 . मांगने अर्थ में द्वितीया होती है।
8. द्वितीया विभक्ति
9. द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।
10. 16 धातु की कर्मसंज्ञा होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –

1 प्रथमा (1)
2 कर्तुरीप्सिततमं कर्म (3)
3. प्रथमा (2)
4. तटः (1)
5. 4 सम्बोधन (4)
6. द्वितीया (1)
7. गां दोग्धि पयः (1)
8. द्वितीया (1)
9. प्रथमा (1)

1.7.सन्दर्भ. ग्रन्थ सूची

1–पुस्तक का नाम– लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी।
2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी ।
3–पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य लेखक का नाम– पतंजलि ।
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी ।

1.8–उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1– गतिवुद्विप्रत्यवसानार्थ शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ **इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।**

इकाई 2. तृतीया विभक्ति – सूत्र, वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 तृतीया विभक्ति का सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उतर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि कारक प्रकरण की आवश्यकता क्या है ? कारक किसे कहते है।

क्रिया कारण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कारकत्व के लिए आवश्यक हैं अतः क्रिया की उत्पति में जिस कारक की जितनी प्रधानता रहती हैं उतना ही वह कारक स्वतंत्र बतलाया जाता हैं। अतः क्रिया की उत्पति में जो स्वतंत्र अर्थात् प्रधान हो उसे ही कर्ता कहेंगे। वस्तुतः क्रिया से स्वतंत्र या निरपेक्ष कोई कारक नहीं कहला सकता हैं।

कारक छः प्रकारक के होते हैं–

कर्ता , कर्म , कारण , सम्प्रदान अपादान अधिकरण। षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं माना गया है क्यों कि क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नही है।

2.1 उद्देश्य

इस इंकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाणिनि रचित व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण विभक्तियों सहित सूत्रों का ज्ञान करेंगे।

- तृतीया विभक्ति कहाँ पर होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- तृतीया विभक्ति विधान करने वाला सूत्र कौन है इसके विषय में परिचित होंगे
- कर्ता किसे कहते है इसके विषय में परिचित होंगे
- येनांगविकारः सूत्र कहाँ पर होता है, इसके विषय में परिचित होंगे
- करण संज्ञा में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- साधकतमं करणम् सूत्र से कौन सी संज्ञा होती है इसके विषय में परिचित होंगे

2.3.तृतीया विभक्ति की सूत्र वृति उदाहरण सहित व्याख्या

28–स्वतन्त्रः कर्ता 1/4/54/ क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षतोऽर्थः कर्ता स्यात्।

अर्थ– क्रिया करने में जिसकी स्वतन्त्रता मानी जाये वही कर्ता कारक कहलाता हैं।

व्याख्या– क्रिया कारण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कारकत्व के लिए आवश्यक हैं अतः क्रिया की उत्पति में जिस कारक की जितनी प्रधानता रहती हैं उतना ही वह कारक स्वतंत्र बतलाया जाता हैं। अतः क्रिया की उत्पति में जो स्वतंत्र अर्थात् प्रधान हो उसे ही कर्ता कहेंगे। वस्तुतः क्रिया से स्वतंत्र या निरपेक्ष कोई कारक नहीं कहला सकता हैं। अतः एव भाष्य में स्वातन्त्र्य का अर्थ प्राधान्येन लिया गया हैं। क्रियाजनन में कर्ता कारक प्रधान इसीलिए कहा जाता हैं क्योंकि कारक के अनुसार ही किसी क्रिया की उत्पति होती हैं।

वस्तुतः सूत्रार्थ में अक्षरशः 'कर्ता' को स्वतंत्र इसलिए कह सकते हैं क्योंकि यह क्रिया की उत्पति में किसी की अपेक्षा नहीं करता । विवक्षा तथा षक्ति के अनुसार कर्ता जो क्रिया करेगा उसमें कारक हस्तक्षेप नहीं करेगा बल्कि उसी की पुष्टि करेगा। यदि 'राम' को कर्ता मान लिया जाए तो प्रसंगानुसार वह कोई व्यापार या क्रिया की उत्पति करने में समर्थ हो सकता हैं।यदि 'गमन ' अभीष्ट हैं तो काल पुरूष वचनानुरूप तुरन्त ' रामः गच्छति ' आदि वाक्यार्थ उपस्थित हो जाएगा । अब क्रिया की उत्पति होते ही ईप्सितमादी अन्य अर्थों के रहने पर कर्मादिकारको की उत्पति होती जाएगी।

लेकिन यदि 'स्थाली पचति' ऐसा प्रयोग करें तो क्या 'स्थाली ' पद कर्ता के रूप में रहने पर भी क्रियाजनन में स्वतत्रंता माना जाएगा? हॉ।अतः क्रिया की सिद्धि में स्वतंत्र रूप से विविक्षित ऐसा अर्थ लिया गया तो वस्तुतः केवल स्वतन्त्र या प्रधान ही कारक कर्ता नहीं हो, अपितु स्वतंत्र या प्रधान वत् विवक्षित भी कारक कर्ता हो सकता हैं। वस्तुतः शक्त्यानुसार ' स्थाली ' पद में करण अर्थ में तृतीया विभक्ति होनी चाहिए थी

क्योंकि पाक क्रिया में वह साधकतम होता हैं फिर भी यदि अर्थ ऐसा लिया जाए कि 'स्थाली ' में पाक कर्ता की सहायता के बिना सुविधा से पाक हो रहा हैं मानो स्थाली पाक क्रिया में स्वतंत्र हैं तो स्थाली पदकर्ता' के रूप में क्रिया की सिद्धि में स्वतंत्ररूप से विवक्षित होता हैं। वस्तुतः कारक वक्ता की बोलने की इच्छा पर बहुत कुछ निर्भर करता हैं। पुनः किसी धातु के अर्थ क्रिया विशेष मात्र का आश्रय होना ' कर्ता' का स्वातन्त्र्य कहलाता हैं।

'स्वतंत्रः कर्ता' सूत्र का प्रयोजन इसीलिए होता हैं कि करण कारक के प्रारम्भ के पश्चात् ' कर्तृकरणयोस्तृतीया ' सूत्र में सर्वप्रथम 'कर्ता' शब्द का उपादान होता हैं। प्रथमा विभक्ति के प्रसंग में प्रायः इसकी आवश्यकता नहीं थी। प्रथमा विभक्ति तो प्रातिपदिकार्थमात्र में होती हैं, इसलिए 'कर्ता प्रथम' ऐसा कहना दोषपूर्ण होता क्योंकि यद्यपि सभी कर्ता प्रातिपदिकार्थ होगें तथापि सभी प्रातिपदिकार्थ का कर्ता होना आवश्यक नहीं हैं। वस्तुतः ' कर्तरि प्रथमा' ऐसा कहते हैं वे बृहद् अर्थ में ही 'कर्ता' शब्द का उपादान करते हैं। ऐसी अवस्था में 'कर्ता' में सभी प्रातिपदिकार्थ का समावेश करा दिया जाता हैं।

29—साधकतमं करणम् 1/4/42/

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्। 'तमब्' ग्रहणं किम्? गंगायां घोषः।

अर्थ— क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्ट उपकारक की करण संज्ञा होती हैं। तमप् का क्या प्रयोजन हैं? गंगायां घोषः।

व्याख्या— अधिकारलभ्य कारक पद की अनुवृति आने के कारण यह अभिव्यञ्जित होता हैं कि ' क्रिया की सिद्धि में जो सबसे अधिक उपकारक = साधकतम होता हैं उसे 'करण कारक 'कहते हैं। करण कारक में प्रकृष्ट उपकारकता अन्य कारको की दृष्टि से हैं। यद्यपि यहां कर्ता क्रिया की सिद्धि के लिए कारण= साधन का आश्रय लेता हैं,तथापि वह स्वातन्त्र्य् के कारण प्रधान रहता हैं।वस्तुतः 'करण' गौण होता हैं क्योंकि करण कर्ता के बिना व्यापारशील नहीं होता । करण संज्ञा होने के कारण ही तृतीया विभक्ति होती हैं। यथा—कृषकः हलेन कर्षति। यहां जोतने की क्रिया में सबसे अधिक उपकारक 'हल' हैं अतः करणार्थक 'हल' में तृतीया विभक्ति हुई— हलेन।

उक्त सूत्र की अपेक्षा 'साधकं करणम् ऐसा सूत्र ही कह देते, यहां कारक का प्रकरण हैं ही और कारक और साधक पर्याय हैं अतः साधक ग्रहण द्वारा प्रकृष्ट साधक यह जान लिया जाता। फिर पृथक 'तपम्' ग्रहण करने की क्या आवश्यकता हैं ? 'तपम्' ग्रहण से यहं उपपन्न होता हैं कि कारक प्रकरण में अन्वर्थ संज्ञा के बल से प्राप्त विशेषार्थ नहीं लिया जाता।फलतः 'आधारोऽधिकरणम् ' में आधार मात्र की अधिकरण संज्ञा अपेक्षित हैं, विशेष आधार की नहीं। अत एव गंगायां घोषः में गंगा पद में जो अधिकरण संज्ञा अपेक्षित हैं वह नहीं होती। ' तिलेषु तैलम् और दधिनि सर्पिः में जैसे ' तिल' और दधि वैसे ही यहा भी 'गंगा मुख्य आधार हैं और मुख्य आधार का अर्थ रहने पर ही सर्वत्र अधिकरण हुआ है। जब लक्षणा के द्वारा गंगाा का मतलब गंगातीर होता हैं और गंगातीर का आधारत्व सामीप्य के कारण 'गंगाप्रवाह ' में उपस्थित होता हैं तो गंगा पद में जो सप्तमी विभक्ति होती हैं अधिकरण में वह लाक्षणिक हैं, लेकिन जब 'गंगा' यह लक्षणा से तीर अर्थ में उपचरित होगाा तो लाक्षणिक 'गंगा' पद ही न कि 'तीर'।

वस्तुतः कारक और साधक के साथ साथ प्रयुक्त होने से ध्वनित भी 'साधक' के अर्थ को प्रबल और स्पष्ट बनाने के लिए 'तपम्' ग्रहण किया गया हैं। यहॉ अधिकरण का बोध न हो जाए क्योंकि अधिकरण भी कर्तृजन्य क्रिया की सिद्धि या उत्पति में साधक होता हैं।

30—कर्तृकरणयोस्तृतीया 2/3/18/

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्।रामेण बाणेन हतो बाली।

अर्थ— जब कर्ता अनभिहित अर्थात अनुक्त होता हैं (भाव वाच्य और कर्मवाच्य में) तो कर्ता में तथा करण में तृतीया विभक्ति होती हैं—

व्याख्या– रामेण बाणेन हतो बाली (राम के बाण के द्वारा बाली मारा गया)यहा 'हतः' में कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय हुआ हैं यहां राम अनुक्त कर्ता हैं अतः उक्त सूत्र से अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति हो जाती हैं। ' हनन' क्रिया का प्रकृष्ट साधन 'बाण' हैं अतः 'साधकतमं करणम्' सूत्र से बाण की करण संज्ञा होकर ' कर्तृकरणयोस्तृतीया'सूत्र से यहां भी तृतीया विभक्ति हो जाती हैं।

अतिविशेष– उक्त सूत्र के अनुसार 'कर्ता' और 'करण' में तृतीया विभक्ति होती हैं। कर्ता के साथ ' अनभिहिते' अधिकार सूत्र का योग समझना चाहिए। कर्मकारकान्तर्गत अभिधान की परिभाषा के अनुसार 'अनभिहित' का अर्थ वस्तुत 'अप्रधान'हैं। किन्तु 'कर्ता ' अप्रधान कब होता हैं? हम देखते हैं कि ऐसा कर्मवाच्य में होता हैं जब भी कर्म की प्रधानता होती हैं। कर्तृवाच्य में सर्वथा उसकी प्रधानता रहती हैं अत एव सिद्ध होता हैं कि कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी– प्रथमा के स्थान पर जहा पर करण में तृतीया विभक्ति नियत हैं,कर्ता की तृतीया उसके केवल 'अनुक्त' रहने पर ही संभव हैं निर्दिष्ट उदारण में 'रामेण' में अनुक्त कर्तरि तृतीया हैं और 'बाणेन' में करण में तृतीया। प्रस्तुत वाक्य कर्मवाच्य में हैं और तभी कर्ता का अनुक्त रहना संभव हो सका हैं। इसके पूर्व वाक्य 'रामःबाणेन बालिनं हतवान्' में राम कर्तृपद हैं लेकिन 'बाण यहा भी करण हैं– बालि की हनन क्रिया में साधकतम होने के कारण।

क्या बाण की कर्तृत्वेन विवक्षा नहीं की जा सकती? हॉ विवक्षा तो हो सकती हैं,किन्तु राम पद का प्रयोग नहीं किया जाएगा और इसमें तृतीया की वह नित्यता नहीं होगी जो करण रहने पर थी। ऐसी अवस्था में 'बाणेन हतो बाली' का पूर्ववाक्य होगा ' बाणः हतवान् बालिनम्'। किन्तु करणत्वेन जब इसकी विवक्षा होगी तो 'क्रियते अनेनेति करणम्' की व्युत्पत्ति के अनुसार क्रिया की सिद्धि में साधकतम होने के कारण 'बाण' में तृतीया विभक्ति होती है।

वार्तिक–. प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्।प्रकृत्या चारूः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः। समेनैति। विषमेणैति । द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि।

अर्थ– प्रकृति इत्यादि शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती हैं। यहां प्रकृति, प्राय, स्वभाव, गोत्र,सम(सीधा),विषम(टेढा), द्विद्रोण, पंचक, साहस,दुःख या सुख शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती हैं।

यथा–प्रकृत्या स्वभावेन वा चारूः (स्वभाव का अच्छा) यहां सम्बन्धार्थ में तृतीया विभक्ति हुई हैं। यदि स्वभाव से किसी व्यक्ति की सुन्दरता अपेक्षित हो तो करण अर्थ की विवक्षा में तृतीया विभक्ति भी सम्भव हैं।

प्रायेण याज्ञिकः (प्राय याज्ञिक हैं) यहां प्रकृत्यादि गण पठित ' प्रायः' शब्द से सम्बन्धार्थ में तृतीया विभक्ति हुई।

गोत्रेण गार्ग्यः(इसका गोत्र गार्ग्य हैं या गोत्र से यह गार्ग्य हैं) यहां उक्त वार्तिक से 'गोत्र' शब्द से तृतीया विभक्ति हुई यहां यदि गोत्र को गार्ग्य होने का हेतु मान लिया जाय तो इत्थम्भूतलक्षणे सूत्र से तृतीया विभक्ति सिद्ध हो सकती हैं।

समेन एति,(सीधा चलता हैं)

विषमेण एति (टेढा चलता हैं) यहां'सम' एवं विषम शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होगी। यहां पद यदि 'सम' और 'विषम' पदों को करण वाची मार्ग का विषेषण मान लिया जाय तो करणार्थ में तृतीया विभक्ति हो जाती –'कर्तृकरणयोस्तृतीया' सूत्र से

द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति (दो द्रोण के भाव से अन्न खरीदता हैं) यहां 'द्वि द्रोण सम्बन्धी धान्य ' इस अर्थ में षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु उपर्युक्त नियम से तृतीया विभक्ति हो जाती हैं।

सुखेन दुःखेन वा याति(सुख पूर्वक या दुःख पूर्वक जाता हैं) यहां 'सुख' एवं 'दुःख' शब्द क्रिया विशेषण हैं अतः द्वितीया विभक्ति को बाधकर 'प्रकृत्यादिभ्य'–वार्तिक से तृतीया विभक्ति होती हैं। प्रकृति आदि गण आकृति गण हैं अर्थात् इस प्रकार की तृतीया विभक्ति गणपाठ में अपठित शब्दों में भी देखी जाती हैं अत एव 'नाम्ना सुतीक्ष्णः' इत्यादि स्थलों पर नाम आदि के योग में तृतीया विभक्ति होती हैं।

31–दिवः कर्म च /1/4/43

दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। चात्करणसंज्ञम्। अक्षैरक्षान् वा दीव्यति।

अर्थ– 'दिव' धातु के साधकतमं कारक की 'कर्म' संज्ञा और 'करण' संज्ञा होती हैं– जैसे अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति।विशेष अवस्था में दिव्(जुआ खेलना) धातु के साधकतम कारक की कर्मसंज्ञा की जा रही हैं,साथ ही स्वभावतः करण संज्ञा भी होगी।

व्याख्या– सूत्र में स्थित 'च' पद से करण संज्ञा का समावेष होता हैं। अत एव दिव् धातु के साधकतम कारक की कर्म व करण दोनों संज्ञाएं होती हैं। पूर्व सूत्र से मात्र करण संज्ञा ही प्राप्त थी किन्तु यहां कर्म का भी विधान किया गया हैं। अतः यहा द्वितीया और तृतीया दोनों विभक्तियॉ होती है

यथा– अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति (पासों से जुआ खेलता हैं) यहां अक्ष जूआ खेलने का साधन हैं, अतः करण संज्ञा होकर तृतीया विभक्ति होनी चाहिए थी किन्तु उक्त सूत्र से विकल्प से कर्म संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति भी होती हैं तथा कर्म के अभाव में करण अर्थ में तृतीया विभक्ति होती हैं।

32–अपवर्गे तृतीया 2/3/6/

अपवर्गः फल प्राप्तिस्तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे तृतीया स्यात्। अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः अपवर्गे किम्? मासधीतो नायातः।

अर्थ– अपवर्ग का अर्थ हैं फल प्राप्ति। अपवर्ग का फल प्राप्ति द्योत्य होने पर कालवाची तथा मार्गवाचक शब्दों के योग में अत्यन्त संयोग में तृतीया विभक्ति होती हैं। जैसे– अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकः अधीतः।'अपवर्ग' का क्या प्रयोजन हैं? मासम् अधीतः न आयातः।

व्याख्या– सामान्यतः 'अपवर्ग' का अर्थ होता हैं– 'समाप्ति' लेकिन प्रस्तुत प्रसंग में पारिभाषिक अर्थ होगा 'फल की प्राप्ति'। किसी फल के लिए कोई क्रिया होती हैं और यदि उस फल की प्राप्ति हो जाए तो कालवाची या अध्ववाची शब्दों के योग में अत्यन्त संयोग रहने पर तृतीया विभक्ति होती हैं। यदि कोई क्रिया निरन्तर जारी हैं, और फल की प्राप्ति नहीं हुई हैं तो वह क्रिया समाप्त नहीं समझी जाएगी क्योंकि क्रिया की संमाप्ति फल प्राप्ति पर ही होती हैं। अत केवल समाप्ति का फल प्राप्ति अर्थ ही लिया जाएगा। उक्त सूत्र में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से सम्पूर्ण पदों की अनुवृति होती हैं तब अर्थ निकलता हैं 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' अपवर्गे तृतीया अब दोनो सूत्रों में अन्तर होगा कि पूर्वसूत्र से जहॉ केवल क्रिया के निरन्तर द्योतित होने पर कालवाची व मार्गवाची शब्दों में द्वितीया होती हैं वहॉ यदि निरन्तर क्रिया से अभिलषित फल की प्राप्ति भी हों जाय तो इस सूत्र के अनूसार द्वितीया के स्थान पर तृतीया विभक्ति होती है।

यथा– कालवाची का उदारण **अह्ना अनुवाकः अधीतः** (एक दिन में अनुवाक पढ लिया) यहां आशय यह हैं कि अनुवाक पढ़ने के साथ वह याद भी हो गया। याद हो जाने के कारण फल प्राप्ति हो गई अतः'अपवर्गे तृतीया' सूत्र से अह्ना में तृतीया विभक्ति हुई।

क्रोशेन अनुवाकः अधीतः (एक कोस भर में अनुवाक पढ़ लिया) यहां भी याद होना फल प्राप्ति हैं, अतः उक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई हैं। प्रत्युदाहरण–अपवर्ग (फलप्राप्ति) होने पर ही क्यों? इसलिए निरन्तर कार्य करते हुए फल प्राप्ति नहीं होती तो कालवाची या मार्गवाची शब्दों के योग में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे सूत्र से द्वितीया विभक्ति ही होती हैं यथा –मासमधीतो नायातः(मास भर तक निरन्तर पढ़ा किन्तु याद नहीं हुआ) यहां मार्गवाचक शब्द 'मास' में द्वितीया ही होती है। अनुवाक नामक शास्त्र अष्टकादि वेद में कुछ मन्त्रों के समुह का नाम हैं।

33.सहयुक्तेऽप्रधाने 2/3/19/

सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात्। पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकं सार्धं समयोगेऽपि।विना तद्योगं तृतीया। वृद्धो यूना इत्यादि निर्देशात्।

मूलार्थ–सह (साथ) का अर्थ बताने वाले शब्दों के योग में अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती हैं।

व्याख्या– प्रधान उसको कहते हैं जो क्रिया का कर्ता होता हैं तथा जिसका सम्बन्ध केवल क्रिया से होता हैं वह अप्रधान होता हैं जिसका क्रिया के सथा सम्बन्ध अर्थं के आधार पर ज्ञात होता हैं। अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती हैं।

यथा–**पुत्रेण सहागतः पिता** (पुत्र के साथ पिता आया) यहां पिता प्रधान हैं तथा 'आगतः' क्रिया का कर्ता हैं। प्रधान का साथ देने वाले अप्रधान 'पुत्र' में सह के योग में तृतीया विभक्ति हुई हैं। इसी प्रकार 'सह' के समानार्थक साकम् सार्धम् एवम् समम् आदि के योग में भी अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती हैं।पाणिनि ने 'वृद्धो युनातल्लक्षणष्चेदविषेषः ' सूत्र में सह शब्द का प्रयोग किये बिना ' वृद्धो यूना'(युवक के साथ वृद्ध)तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया हैं। अत एव ज्ञात होता हैं कि 'सह' आदि शब्दों का प्रयोग न करने पर भी 'सह' अर्थ की प्रतीति होने में तृतीया विभक्ति होती हैं ऐसे स्थलो पर 'सह' शब्द का अध्याहार कर लिया जाता हैं।

3.4.**येनांगविकारः 2/3/18/**

येनांगेन विकृतेनांगिनो विकारो लक्ष्यते ततः तृतीया स्यात्। अक्ष्णा काणः। अक्षिसम्बन्धिकाणत्व विशिष्ट इत्यर्थः। अंगविकारः किम्? अक्षिकाणमस्य।

मूलार्थ– जिस अंग के विकार से व्यक्ति विकार युक्त दिखाई पड़ता है। उस विकृत अंग में तृतीया विभक्ति होती हैं। यथा – अक्ष्णा काणः अर्थात् आंख सम्बन्धी विकार से युक्त हैं। अंग विकार का क्या प्रयोजन ? अक्षिकाणमस्य।

व्याख्या– जिस अंग के विकृत होने से अंगी (अंग वाले प्राणी) का विकार सूचित हो उस अंग वाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती हैं। अंगांगिभाव में एक अंग होता हैं और दूसरा अंगी होता हैं जिसका वह अंग होता हैं । अंग के विकृत होने से अवश्य ही अंगी का विकार समझा जायेगा क्योंकि अंग का सम्बन्ध समवायरूप से 'अंगी ' के साथ होता हैं। यहां 'अंगानि अस्य सन्ति ' इस अर्थ में ' अर्शादिभ्योऽच ' से अच् प्रत्यय करने पर नपुंसक 'अंग' शब्द से पुल्लिंग शब्द की निष्पति हुई हैं जिसका अर्थ 'शरीर' या विस्तृत अर्थ में 'प्राणी' होता हैं यहां 'येन' वस्तुतः अंगेन के लिए आया हैं।तथा जिस अंग के विकृत होने से अंग का विकार यह उर्थ उपपन्न होगा। यहां उदारण में सम्बन्ध ही 'अक्षि' शब्द की तृतीया विभक्ति का अर्थ हैं । यह सम्बन्ध अंग और अंगी के बीच द्योतित होता हैं तथा वह सम्बन्ध 'काणत्व' गुण के आधार पर अधिक स्पष्ट होगा। यद्यपि एक आंख से हीन ही 'काण' (काना) कहलाता हैं।किन्तु 'हीनता' ही केवल विकार नहीं हैं। प्रकृतिस्थ अवस्था में ' अधिक' भी कोई अंग ' विकृत' ही कहला सकता हैं। सामान्यतः मनुष्य के दो ही हाथ होते हैं पर यदि किसा के चार हाथ हो तो 'चार हाथ का होना भी विकार ही कहलायेगा। इसी आधार पर 'स बाल आसीद् वपुषा चतुर्भुजः' आदि प्रयोगो में भी'वपुषा ' आदि में उक्त सूत्र से ही तृतीया होती हैं। वस्तुतः इस सूत्र की परिधि में अंग और अंगी दोनों का ही साथ साथ होना आवश्यक हैं। ऐसा यदि रहेगा तभी अंगवाची शब्द में तृतीया होगी अन्यथा नहीं।

अक्ष्णा काणः (आंख से काणा) यहां ऑख से विकृत होने से व्यक्ति का कानापन प्रतीत होता हैं, अतः आंखवाची 'अक्षी' शब्द से उक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति होती हैं। इसी प्रकार कर्णेन बधिरः,शिरसा खल्वाटःआदि प्रयोग बनेंगें।

प्रत्युदाहरण – अंग विकार :किम् ? अंगी का विकार होने से ही ऐसा नियम क्यों कहा गया? अक्षिकाणमस्य (इसकी एक आंख कानी हैं) में 'काण' षब्द 'अक्षि' को ही विशेषित करता हैं, अत एव अंगी के अभाव में अंगवाची षब्द में तृतीया विभक्ति नहीं हुई हैं। यहां मात्र 'अंगी का भाव हो ' केवल ऐसा कहने से काम नहीं चलता हैं क्योंकि प्रत्युदारण में

'अस्य' से भी अंगी का भाव स्पष्ट होता हैं। वस्तुतः जो विकार रहे वह अवश्य ही अंगी के लिए प्रयुक्त होवे। सूत्र के उदारण में ' काणत्व' रूप विकार 'अंगी' पर आरोपित हैं ऐसी दशा में जिस 'अंग' के विकार के कारण 'अंगी' का विकार द्योतित होता हैं उस अंगवाची शब्द में तृतीया आयी। इसके विपरित प्रत्युदाहरण में काणत्व रूप विकार 'अंगी' पर आरेपित नहीं हो कर अंग पर आरोपित हैं, अतः तृतीया नहीं हुई हैं।

35. **इत्थम्भूतलक्षणे** कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्।जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः।

मूलार्थ– किसी विशेष प्रकार को प्राप्त किये हुए लक्षण से तृतीया विभक्ति होती हैं, यथा–जटाभिस्तापसः। यहां जटाओं द्वारा तापसी होने का बोध होता हैं।

विशेष– इत्थम्भूतः = ऐसा हुआ। ऐसा जिसके द्वारा लक्षित हो उस लक्षण वाची षब्द में तृतीया होगी। 'लक्ष्यते अनेन इति लक्षणम्। अतः लक्षण का अर्थ हैं यहां चिन्ह हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जहां लक्ष्य लक्षण भाव या ज्ञाप्यज्ञापक भाव रहे वहां जो 'लक्षण' या ज्ञापक रहे जिससे किसी 'लक्ष्य' या ज्ञाप्य भाव की सिद्धि होती हैं वहां तृतीया विभक्ति होती हैं यथा–

जटाभिस्तापसः(जटाओं से तापसी हैं) यहां 'तापसत्व' प्रकार (अर्थात तापस होना) लक्षित होता हैं,'जटाओं से'। 'जटा'चिन्ह वाची षब्द हैं, अतः 'इत्थम्भूतलक्षणे' से यहां तुतीया विभक्ति हुई । इस प्रकार जटाभिस्तापसः का अर्थ हुआ ' जटाओं के द्वारा जानने योग्य जो हैं तपस्वी'। किन्तु यदि 'तापसत्व' ज्ञान के लिए 'जटा' को साधकतम समझे तो 'जटा' की करण संज्ञा करने पर उक्त सूत्र से तृतीया नहीं हो सकती? वस्तुतः करणत्व की विवक्षा करने पर तृतीया हो सकती हैं लेकिन ऐसा नहीं हुआ। फिर भी यदि करणत्व की विवक्षा नहीं की जाये तो लक्ष्यलक्षणभाव के अलावा किसी भी परिस्थिति में प्रस्तुत प्रसंग में तृतीया की प्राप्ति नहीं हो सकती। पर ऐसा नहीं हैं कि करण में तृतीया इत्थम्भूत तृतीया की पोषिका हो सकती हें या इत्थम्भूत तृतीया का काम करण तृतीया से ही चल सकता हैं।नहीं, वे दोनों अलग अलग वस्तुएँ हैं– इत्थम्भूत तृतीया जहां कि क्रिया योग के बिना ही होती हैं तथा करणतृतीया सतत् क्रिया योग में होगी। तथा कारकत्व के लिए क्रियान्वयित्व के कारण करण में तृतीया होगी।

36.संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि 2/3/18/

संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात्। पित्रा पितरं वा संजानीते।

मूलार्थ– 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' धातु के कर्म में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती हैं जैसे पित्रा पितरं वा संजानीते।

व्याख्या–'सम' पूर्वक 'ज्ञा' अवबोधने के कर्म में विकल्प से तृतीया होती हैं । जब तृतीया नहीं होगी तो द्वितीया होगी क्योंकि सामान्यतः कर्म में द्वितीया विभक्ति होती हैं। वस्तुतःजहा केवल कर्म कहा जाता हैं वहां बराबर 'अनुक्त कर्म' ही जाना जाता हैं और अनुक्त कर्म में द्वितीया होती हैं। यौगिकतया 'अन्यतरस्याम्' का 'अन्यतरस्याम् विभक्तौ' के लिए, किन्तु कालक्रम से 'विभक्तौ' लिखने की आवष्यकता नही रहने पर तथा उसको गम्यमान ही समझने पर केवल 'अन्यतरस्याम् ' लिखा जाने लगा। अब यह विभाषा के अर्थ में अव्ययवत् रूढ हो गया हैं। सूत्र में तृतीया विभक्ति का जो विकल्प हुआ हैं वह द्वितीया के अपवाद के रूप में ही।यथा –**पित्रा पितरं वा संजानीत**`(पिता को ठीक प्रकार से पहचानता हैं)यहां 'सम' पूर्वक ज्ञा (संजानीते) का कर्म पिता हैं अतः उक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई– पित्रा। तृतीया न होने पर अनुक्त कर्ममें द्वितीया हुई–पितरम्। यहां संप्रतिभ्यामनाध्याने सूत्र से संजानीते में आत्मनेपद हुआ हैं यहां 'संजानीते' में बहुत दिनो बाद देखने पर पहचानने का अर्थ निहित हैं।

37.हेतौ 2/3/18/

हेत्वर्थे तृतीया स्यात्। द्रव्यादिसाधारणं निव्यापारसाधारणञ्च हेतुत्वम्।करणत्वं तु

क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च । दण्डेन घटः, पुण्येन दृष्टो हरिः।

अर्थ– कारण अर्थ में तृतीया होती हैं । हेतु द्रव्यादि का साधक होता हैं तथा सव्यापार और निर्व्यापार दोनो प्रकार का होता हैं। करणत्व केवल क्रिया का जनक होता हैं एवं सदा व्यापारयुक्त में ही रहता हैं। जैसे – दण्डेन घटः पुण्येन दृष्टो हरिः।

व्याख्या –हेतुवाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती हें। 'हेतु' यहां लौकिक अर्थ में ही लिया जाएगा न कि 'तत्प्रोजको हेतुश्च' सूत्र द्वारा सूचित शास्त्रीय अर्थ में। दुसरे शब्दो में , फल का साधन भूत कारण पर्याय वाला 'हेतु'ही विवक्षित हैं। वस्तुतः 'हेतु' शब्द में तृतीया नहीं होती हैं अपितु हेतु के अर्थ में प्रयुक्त शब्द में तृतीया होगी। इस प्रसंग में हेतु और`रण में अन्तर स्पष्ट करना बहुत आवश्यक हैं। ' द्रव्यादि' में आदि से द्रव्य के अतिरिक्त 'गुण' और 'क्रिया' विवक्षित हैं । यहां जाति का ग्रहण नहीं होगा क्योकि समूह में 'हेतु' का अर्थ कोई विशेष तात्पर्य नहीं रखता।अर्थतः 'हेतु' एक तो 'द्रव्य',गुण,क्रिया, के साथ पाया जाता हैं (अर्थात् द्रव्य,गुण,या क्रिया के प्रति जो 'जनक' हो वह 'हेतु'कहलाता हैं) और दुसरी और जिसमें कोई व्यापार (अर्थात् क्रिया विशेष) या तो साधन भूत रहे या अभाव में रहे, उसे भी 'हेतु 'कहते हैं। स्पस्ट शब्दों में हेतु द्रव्य या क्रिया का जनक होता हैं और उसके साथ 'द्रव्यादि का जन्यजनक भाव सम्बन्ध रहता हैं। फिर जहां पर व्यापार अर्थात् क्रिया का प्रश्न हैं वह 'हेतु' सव्यापार और निर्व्यापार दोनों हो सकता हैं। इसके विपरित करण केवल क्रिया का विषय हो सकता हैं। अतः करणत्व के लिए क्रिया जनकत्व आवश्यक हैं (क्योंकि जब तक उसमें क्रियाजनकत्व नहीं रहेगा तब तक वह कारक नहीं हो सकता हैं) अत एव यह भी ध्यातव्य हैं कि जो 'करणत्व' से द्रव्यजनकत्व और गुणजनकत्व को बहिष्कृत कर देता हैं और प्रामाणित करता हैं कि करण तृतीया द्वारा ही हेतु तृतीया का काम नहीं चल सकता हैं। उसी प्रकार करण सव्यापार होगा तथा इसकी कोई निश्चित क्रिया होगी। अतः हेतु एवं करण में यह अन्तर भी हुआ कि जहां हेतु सव्यापार और निर्व्यापार दोनों हो सकता हैं, किन्तु करण केवल सव्यापार ही होगा।

दण्डेन घटः (दण्डे से बना घडा) हेतु रूप मे द्रव्य का उदाहरण यहां घट बनने में दण्ड हेतु हैं। दण्ड द्रव्य और क्रियाशील हैं,क्योंकि उसमे चाक को घुमाया जाता हैं अतः उक्त सूत्र से 'दण्ड'में हेतुत्वात् तृतीया विभक्ति हुई। 'दण्डेन घटः' का व्यापक अर्थ हैं– 'दण्ड के कारण घट' यहां साक्षात् क्रियान्वयित्व के अभाव के कारण करण संज्ञा नहीं होगी। वस्तुतः कोई यिा विवक्षित होगी तो 'दण्ड' के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं होगा। यहां द्रव्य जो हैं 'घट' उसके प्रति दण्ड हेतु हैं। यद्यपि यहां दण्ड में व्यापार हैं, फिर भी क्रियाजनकत्व का अभाव हैं। किन्तु यदि 'दण्डेन घटं संचालयति कुम्भकारः' ऐसा उदाहरण ले तो 'दण्ड' करण होगा क्योंकि तब क्रियाजनकत्व होगा तथा क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध भी होगा। क्रिया के प्रति हेतु का उदाहरण–

पुण्येन हरिःदृष्टः (पुण्य से हरि को देखा) यहां पर देखना क्रिया का हेतु 'पुण्य' क्रियाहीन (निर्व्यापार) हैं, क्योंकि वह अमूर्त हैं, अतः हेतु बोधक शब्द 'पुण्य ' में उक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई हैं।

निर्व्यापार= क्रियाहीन होने से करण नहीं हो सकता।

यहां 'हरिदर्षन ' के कारण ' क्रियान्वयित्वं' संभव भी हैं तो व्यापारवत्व के अभाव में करणत्व नहीं हुआ। अत एव ज्ञापित होता हैं कि करणत्व के लिए व्यापारत्व और क्रियान्वयित्व दोनो आवष्यक हैं। परन्तु जब पुण्य शब्द से यज्ञादि कर्म विवक्षित होगं तो उसमें व्यापारवत्व रहेगा अतः करणसंज्ञा हो जायेगी।

फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति। गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौं प्रयोजिका। अलं श्रमेण।श्रमेध साध्यं नास्तीत्यर्थः।इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः।

उक्त 'हेतौ' सूत्रानुसार फल का अन्तर्भाव भी हेतु में होता हैं । यद्यपि फल क्रिया के उपरान्त होता हैं एवं हेतु क्रिया करने के पूर्व ही विद्यमान रहता हैं तथापि सूत्र के

अनुसार हेतु से 'फल' अर्थ ग्रहण करने पर अध्ययनेन वसति (अध्ययन के लिए रहता हैं) में अध्ययन शब्द से तृतीया विभक्ति हुई हैं । उसका कारण यह हैं कि गुरूकुल में रहने का फल अध्ययन हैं यदि फल को हेतु नहीं मानते तो अध्ययनेन में तृतीया सम्भव नहीं थी, क्योंकि 'वास' क्रिया के द्वारा साध्य होने से 'अध्ययन ' को हेतु नहीं कहा जा सकता ।किन्तु 'वास' क्रिया के द्वारा साध्य होने से अध्ययन भी 'फल' हैं लेकिन जब फलरूप अध्ययन में इस तरह के हेतुत्व की विवक्षा नहीं करके 'अध्ययन' के लिए ही 'रहना' विवक्षित होता हैं

2.– अभ्यास प्रश्न

1–प्रश्न–कर्ता किसे कहते है।

2– प्रश्न–कर्ता में तथा करण में कौन सी विभक्ति होती हैं

3– प्रश्न– रामेण बाणेन हतो बाली में कौन सी विभक्ति है

4– प्रश्न–दिवः कर्म च सूत्र से कौन सी विभक्ति होती है

5– प्रश्न–येनांगविकारः सूत्र से कौन सी विभक्ति होती है

बहुविकल्पीय प्रश्न – उतर

1.अक्ष्णा काणः मे विभक्ति होती है।

1.तृतीया 2. षष्ठी
3. पंचमी 4. सम्बोधन

2. जटाभिस्तापसः मे कौन से सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है

1.कर्मणि द्वितीया 2.इत्थम्भूतलक्षणे
3.अकथितं च 4 सम्बोधन

3– कर्तृकरणयोस्तृतीया से विभक्ति होती है।

1.सम्बोधन 2.तृतीया
3.प्रथमा 4.पंचमी

4– संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि वाचक का उदाहरण है।

1. पित्रा पितरं वा संजानीते 2.वचन
3.परिमाण 4. प्रातिपदिकार्थ

5– दण्डेन घटः विभक्ति है।

1 द्वितीया 2. सप्तमी
3. षष्ठी 4 तृतीया

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि इसमें कि कितने विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में तृतीया विभक्ति का अध्ययन किया गया है। तृतीया विभक्ति का विधान करने वाला मुख्य सूत्र है–**कर्तृकरणयोस्तृतीया** । तृतीया विभक्ति का विधान करने वालो अनेक सूत्र हैं। इसमें मुख्य रूप से सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है।

2.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
रामेण बाणेन हतो बाली	राम के द्वारा बाली बाण से मारा गया
अह्ना अनुवाकः अधीतः	एक दिन में अनुवाक पढ लिया
प्रायेण याज्ञिकः	प्राय याज्ञिक हैं
अक्ष्णा काणः	आंख से काणा)
इत्थम्भूतः	ऐसा हुआ।
पित्रा पितरं वा संजानीते	पिता को ठीक प्रकार से पहचानता हैं
दण्डेन घटः	दण्डे से बना घडा)

पुण्येन हरि : दृष्टः	पुण्य से हरि को देखा
निर्व्यापार	क्रियाहीन होने से करण नहीं हो सकता।
अध्ययनेन वसति	अध्ययन के लिए रहता हैं)

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उतर

1.उत्तर–क्रिया करने में जिसकी स्वतन्त्रता मानी जाये उसे कर्ता कहते हैं।
2.उत्तर– कर्ता में तथा करण में तृतीया विभक्ति होती हैं
3.**उत्तर**–रामेण बाणेन हतो बाली में तृतीया विभक्ति है
4.उत्तर–दिवः कर्म च सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है
5.उत्तर–येनांगविकारः सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है

बहुविकल्पीय प्रश्नों – उतर

1.– 1.तृतीया
2.– 2.**इत्थम्भूतलक्षणे**
3– 2.तृतीया
4– 1. पित्रा पितरं वा संजानीते
5. 4 तृतीया

2.7.सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–पुस्तक का नाम– लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
3–पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य लेखक का नाम– पतंजलि
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2.8.उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।

2.9.निबन्धात्मक प्रश्न

1. येनांगविकारः इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।
2. इत्थम्भूतलक्षणे सूत्र को उदाहरण सहित परिभाषित कीजिये ।

इकाई . 3 चतुर्थी, विभक्ति , सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 चतुर्थी विभक्ति सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उतर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूत्री

3.8 उपयोगी पुस्तंके

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

व्याकरण 'शास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि कारक प्रकरण की आवयकता क्या है ? कारक किसे कहते है।

इस इकाई में मुख्य रूप से सम्प्रदान कारक के विषय में व्याख्या की गयी है दान के कर्म से जिसका अभिप्राय सि़द्ध किया जाय वह सम्प्रदान कारक होता है।

क्रिया के द्वारा यदि कर्ता किसी को उपभोक्ता के रुप में चाहे, तो जिसे चाहे वह सम्प्रदान होगा एवं सम्प्रदान में चतुर्थी ही होगी। पूर्वस्थल में र्कम के द्वारा कर्ता किसी को चाहे–ऐसा कहा था। इसका आशय है कि उस परिस्थिति में 'कर्ता' और 'क्रिया' का कर्म ही अभीष्ट था इसलिए कर्म द्वारा ही सम्प्रदानत्व की विवक्षा हो सकती थी। असके विपरीत यहां क्रिया के द्वारा सम्प्रदानत्व विवक्षित है

कारक छः प्रकारक के होते है–

कर्ता , कर्म , कारण , सम्प्रदान अपादान अधिकरण। इन छः कारकों में सम्प्रदानकारक अर्थात् चतुथी विभक्ति व्याख्या कि जा रही है

3.2.उद्देश्य

इस इंकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाणिनि रचित व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण विभक्तियों सहित सूत्रों का ज्ञान करेंगे।

- सम्प्रदान किसे कहते है इसके विषय में परिचित होंगे
- रुच्यर्थक किसे कहते है इसके विषय में परिचित होंगे
- सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- नमः के योग चतुर्थी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- स्वाहा अर्थ में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- स्वधा के योग में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे

3.3 सम्प्रदान कारक चतुर्थी विभक्ति

38.कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1/4/32/

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति सो सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

अर्थ –दानकर्म के द्वारा कर्ता को जो अभीष्ट है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

39–चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/13/

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्। विप्राय गां ददाति। अनभिहित इत्येव। दानीयो विप्रः।

अर्थ–'सम्प्रदान' में चतुर्थी होती है। जैसे–विप्राय गां ददाति। अनुक्त होने पर ही चतुर्थी विभक्ति होती है। अतः 'दीयते अस्मै दानीयः विप्रः' यहां चतुर्थी नहीं हुई है।

व्याख्या–सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है। ''विप्राय गां ददाति'' (विप्र के लिए गाय देता है) में विप्र 'गोरूप' 'देय' द्रव्य का उद्देष्य है। अतः सम्प्रदान होने के कारण उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। तथा दान क्रिया के कर्म 'गो' से कर्त्ता 'विप्र' के भोक्तृत्व की इच्छा करता है। तदनुसार 'गो' देकर 'कर्ता' चाहता है कि 'विप्र' विशेष उसका उपभोक्ता हो। इसलिए भी उसका सम्प्रदानत्व है। लेकिन सम्प्रदान संज्ञा भी 'अनभिहिते'–सूत्र के अधिकार क्षेत्र में ही आती है। इसका आशय यह है कि अनभिहित (अर्थात् अप्रधान) रहने पर भी सम्प्रदान में चतुर्थी होगी क्योंकि उक्त या अभिहित रहने पर तो सर्वथा प्रथमा ही होती है। अन्य शब्दों में केवल प्रातिपादिकार्थ ही अभिहित या उक्त होता है। 'उक्त' सम्प्रदान के वृत्रिस्थ उदाहरण में कृत् प्रत्यय द्वारा अभिधान हुआ है। 'ददाति विप्राय' ऐसा अनुक्तावस्था में हो सकता है। लेकिन जब हम 'दा' में कृत् प्रत्यय के अन्तर्गत अनीयर् प्रत्यय लगा देते हैं तो 'दानीय' शब्द के सिद्ध होते ही विप्र भी प्रथमान्त हो जाता है–'दानीयः विप्रः'। यह इसलिए होता है कि दानीय का अर्थ–'देने

योग्य' होता है। जिसको दान दिया जाय–अर्थात् शास्त्रीय भाषा में दान का उद्देष्य। यदि सम्प्रदान का अर्थ अनीयर् प्रत्यय से ही आ जाता तो फिर 'विप्र' शब्द मे सम्प्रदानजन्य चतुर्थी विभक्ति रखना निरर्थक ही नहीं, अनर्थक भी हो जाता। साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि सभी कृदन्त और तद्धित प्रत्यय सर्वदा ही अभिधान नहीं कहला सकते। तथापि यहां विप्र शब्द उक्त होता है। कारण है कि 'विप्र' शब्द का सम्प्रदानत्व (जिसके कारण उसमें चतुर्थी होती है) अनीयर् प्रत्ययान्त 'दानीय' शब्द द्वारा उक्त हो जाता है तथा इस परिस्थिति में जबकि चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदानत्व नहीं रहने,से हट जाती है तो 'विप्र' शब्द प्रातिपदिकार्थ बन जाता है तथा उसमें प्रातिपदिकार्थ मात्रे प्रथमा विभक्ति हो जाती है।

वार्तिक– ''क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्''। पत्ये शेते।

कर्ता क्रिया सा व्यापार द्वारा जिसकी ओर विशेष उन्मुख होता है। और यह भी सम्प्रदान कारक ही कहलाता है। अर्थात् किसी के लिए जब कोई विषेष कार्य किया जाए, तथा जिसके लिए वह कार्य अभिप्रेत या अभीष्ट हो उसमें चतुर्थी होगी।

क्रिया के द्वारा भी यदि कर्ता किसी को उपभोक्ता के रुप में चाहे, तो जिसे चाहे वह सम्प्रदान होगा एवं सम्प्रदान में चतुर्थी ही होगी। पूर्वस्थल में कर्म के द्वारा कर्ता किसी को चाहे–ऐसा कहा था। इसका आषय है कि उस परिस्थिति में 'कर्ता' और 'क्रिया' का कर्म ही अभीष्ट था इसलिए कर्म द्वारा ही सम्प्रदानत्व की विवक्षा हो सकती थी। असके विपरीत यहां क्रिया के द्वारा सम्प्रदानत्व विवक्षित है–अतः

पत्ये शेते'(पति के लिए सोती है) यहां ''क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः''। सूत्र के द्वारा ''पतिम् अनुकूलयितुं शेते'' ऐसा अर्थ लेने पर 'पति' शब्द में उक्त वार्तिक से चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। भाष्यकार के मत में वस्तुतः ''कर्मणा यमभिप्रैति'–सूत्र से ही यह चतुर्थी सिद्ध होती है क्योंकि संदर्शन प्रार्थन तथा अध्यवसाय के द्वारा क्रिया भी कृत्रिमरुप में कर्म ही है। अतः फलित होता है कि क्रिया का उद्देष्य भी सम्प्रदान होता है न कि केवल कर्म का।

वार्तिक –. यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्म संज्ञा । पशुना रुदं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः।

यज्(यज्ञ करना) धातु के प्रयोग में एक वाक्य में कर्म और 'सम्प्रदान' दोंनो कारकों का प्रयोग हो तो 'कर्म' की 'करण' संज्ञा तथा 'सम्प्रदान' की कर्म संज्ञा हो जाती है।उदाहरण है–

पशुना रुद्रं यजते (रुद्र कें लिए पशु देता है) यह वाक्य 'पशुं रुद्राय ददाति' का समानार्थक है। यहां 'कर्म' 'पशु' शब्द की करण संज्ञा करने पर 'पशुना' में तृतीया विभक्ति तथा 'सम्प्रदान' वाचक 'रुदं' में द्वितीया विभक्ति हुई हैं। वार्तिककार के अनुसार यह वार्तिक वैदिक व्याकरण से सम्बद्ध है।

40. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः /1/4/33।। रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानं स्यात्। हरये रोचते भक्तिः। अन्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचिः। हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री। 'प्रीयमाणः' किम् ? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि।

अर्थ–रुचि अर्थवाली धातुओं के योग में प्रीयमाण (सन्तुष्ट होने वाला) की सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे–हरये रोचते भक्तिः। अन्यकर्तृक अभिलाषा को रुचि कहते हैं–उदाहरण में हरि में रहने वाली इच्छा या प्रीति ही 'कर्ता' है। 'प्रीयमाण' का क्या प्रयोजन है ? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि।

व्याख्या–विशेष अवस्था में ही सम्प्रदान संज्ञा का विधान किया जा रहा है। तदनुसार् रुचि अर्थात् अभिलाषार्थक (रुचिः अर्थः येषां ते रुच्यर्थाः, तेषां रुच्यर्थानाम्) धातुओं के प्रयोग में प्रसन्न होने वाले अथवा सन्तुष्ट होने वाले व्यक्ति की (जो प्रीयमाण हो) सम्प्रदान कारक होने से सम्प्रदान संज्ञा होती है। उदाहरण है–

हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है) यहां रुचि का अर्थ इच्छा है। किसी दूसरे के द्वारा उत्पन्न की गई इच्छा या अभिलाषा ही रुचि है। यहां पर 'भक्ति' ही हरि

की प्रसन्नता या रुचि को उत्पन्न करती है एवं 'भक्ति' द्वारा सन्तुष्ट होने वाले (प्रीयमाण) हरि हैं, अतः 'हरि' की उक्त सूत्र से 'सम्प्रदान' संज्ञा होने के कारण चतुर्थी विभक्ति होती है।

प्रत्युदाहरण –जो प्रीयमाण अर्थात् प्रसन्न होने वाला उसी की सम्प्रदान संज्ञा होती है ऐसा क्यों कहा गया ? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथिः (देवदत्त को रास्ते में मोदक अच्छे लगते हैं) में प्रसन्न होने वाले 'देवदत्त' की सम्प्रदान संज्ञा तो हुई किन्तु 'पथि' चतुर्थी नहीं हुई, क्योंकि रास्ता तो प्रसन्न नहीं होता। मार्ग तृप्ति का कर्म नहीं किन्तु आधार हैं। अतः आधार में सप्तमी विभक्ति हुई है।

41. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीपस्यमानः ''/1/4/34'' एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः सम्प्रदानं स्यात्। गोपी स्मरात् श्लाघते,ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा। 'ज्ञीपस्यमानः' किम् ? देवदत्ताय श्लाघते पथि।

मूलार्थ–श्लाघ, ह्नुङ्,स्था,तथा शप् धातुओं के प्रयोग में ज्ञीप्स्यमान (अर्थात् जिसको बतलाना अभीष्ट हो या तत् क्रिया द्वारा ज्ञापित करने की इच्छा की जाये) की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा–गोपीस्मरात् कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा। ज्ञीप्स्यमानः का यहां क्या प्रयोजन है ? देवदत्ताय श्लाघते पथि।

व्याख्या – विशेष अवस्था में 'सम्प्रदान' संज्ञा विधायक उक्त सूत्र से अभिव्यञ्जित होता है कि ''श्लाघ् (प्रशंसा करना),ह्नुङ्(छिपाना), स्था (ठहरना,रुकना), शप् (शपथ लेना, उपालम्भ देना) आदि क्रियाओं के प्रयोग में जिसे बताना अभीष्ट हो या जिसका बोध कराया जाय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती हैं। सूत्रस्थ ज्ञापनार्थक ज्ञप् धातु के सन्नन्तरुप से कर्म में शानच् (आन) प्रत्यय करने पर 'ज्ञीप्स्यमान' शब्द निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ ग्रन्थकार ने 'बोधयितुमिष्टः' द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह सूत्र कर्म संज्ञा का अपवाद है।

गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते (गोपी स्मरण पीडावश कृष्ण की प्रशंसा करती है) अर्थात् यहां प्रशंसा करते समय कृष्ण को अपना प्रेम बताना चाहती है, या अपनी प्रशंसा द्वारा बोध कराना चाहती है, अत एव 'कृष्ण' ज्ञीप्स्यमान होने से उक्त सूत्र से सम्प्रदान संज्ञक होगा तथा सम्प्रदान में चतुर्थी होगी– कृष्णाय।

गोपी स्मरात् कृष्णाय ह्नुते (गोपी स्मर पीडा से कृष्ण को सपत्नियो से छिपाती है) यहां कृष्ण को बताने के लिए छिपाती है। छिपाते समय भी चाहती है कि कृष्ण को उसकी कामदशा का पता लगजाय, अतः कृष्ण–ज्ञीप्स्यमान की सम्प्रदान संज्ञा होने से चतुर्थी विभक्ति होगी–कृष्णाय।

गोपी स्मरात् कृष्णाय तिष्ठते (गोपी कामपीडा से कृष्ण के लिए ठहरती है) यहां भी कामपीडा द्वारा कृष्ण को बताना अभीष्ट है अतः कृष्ण की सम्प्रदान संज्ञा होने से 'कृष्णाय' में चतुर्थी विभक्ति हुई है।

गोपी स्मरात् कृष्णाय शपते (गोपी स्मरपीडा से कृष्ण को उपालम्भ देती है) यहां गोपी स्मरपीडा से उपालम्भ द्वारा कृष्ण को अपना आशय बताना चाहती है, अतः ज्ञीप्स्यमान कृष्ण की उक्त सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई है।

प्रत्युदाहरण–सूत्र में ज्ञीप्स्यमान शब्द का क्या प्रयोजन है ? सूत्र ज्ञीप्स्यमान पद न होता तो 'देवदत्ताय श्लाघते पथि'(मार्ग में देवदत्त की प्रशंसा करता है) प्रकृत वाक्य में 'पथिन्' शब्द में भी चतुर्थी विभक्ति होने लगती। 'पथिन' (मार्ग) को यंहा बताना अभीष्ट नहीं है अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा न होने चतुर्थी नहीं अपितु सप्तमी ही होगी।

42. **धारेरुत्तमर्णः /1/4 |35''** धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्ण उक्तसंज्ञः स्यात्। भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः। 'उत्तमर्ण' किम् ? देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे।

अर्थ–धारि – णिजन्त धृ धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण की सम्प्रदान संज्ञा होती है–यथा, भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः। 'उत्तमर्ण' का क्या प्रयोजन है ? देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे।

व्याख्या–धारि का उत्तमर्ण सम्प्रदान संज्ञक होता है और उसमें चतुर्थी होती है। वस्तुतः धृङ् अवस्थाने से प्रेरणार्थक (णिच्) प्रत्यय करने पर धारि हो जाता है लेकिन उसका अर्थ धारना, कर्ज धारना रुढ हो गया है। अतः जंहा कहीं भी इस धातु का प्रयोग रहेगा वंहा व्याकरण की भाषा में जो धारता उसको 'अधमर्ण' कहते हैं और जिसको धारता है वह 'उत्तमर्ण' कहलाता है। अधमम् = ऋणम् यस्य = अधमर्णः = अर्थात् उसे ऋण लेना पडता है और उत्तमम् ऋणम् यस्य = उत्तमर्णः अर्थात् कर्ज देने वाला। **उदाहरण**– **भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः** (हरि भक्त के लिए मोक्ष धारण करते हैं) इस वाक्य में धारि =(ऋण धारण करना) का प्रयोग है। यहां 'भक्त' उत्तमर्ण है क्योंकि उसकी भक्ति देने के कारण ही 'हरि' उसे 'मोक्ष' धारण करते हैं। अतः उसमें चतुर्थी होती है। 'भक्ताय'। इस उदाहरण में अभिलक्षित होता है कि केवल धारि का प्रयोग ही उत्तमर्ण में (भक्त) में सम्प्रदानत्व लाने के लिए र्प्याप्त है क्योंकि जहा भी इसका प्रयोग रहेगा वहां किसी भी रुप में अधमर्ण और उत्तमर्ण की सम्भवना अवष्य रहेगी।

प्रत्युदाहरण–**उत्तमर्ण** (कर्ज देने वाले) में ही सम्प्रदान कारक क्यों होगा ? देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे (गांव में देवदत्त का सौ रुपये का देनदार है) यहां 'ग्राम' शब्द में चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई है, क्योंकि 'ग्राम' उत्तमर्ण नहीं है। यहां आधार में सप्तमी विभक्ति हुई है।

43. **स्पृहेरीप्सितः /1/4/36''**

स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानं स्यात्। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। ईप्सितः किम् ? पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति। ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा। प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात् कर्म संज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति

अर्थ–स्पृह् धातु (स्वार्थ णिजन्त) के योग में ईप्सित अर्थात् इष्ट वस्तु 'सम्प्रदान' संज्ञक होती है–जैसे–पुष्पेभ्यः स्पृहयति। ईप्सित का क्या प्रयोजन है ? पुष्पेभ्यः वने स्पृहयति। केवल 'ईप्सित' अर्थ होने पर ही यह संज्ञा होती है। 'ईप्सिततम' अर्थ में तो पर होने के कारण कर्म संज्ञा ही होगी–पुष्पाणि स्पृहयति।

व्याख्या –स्पृह धातु के प्रयोग में विषेष अवस्था में ही यहां संप्रदान संज्ञा का निदर्शन किया गया है। तदनुसार चुरादिगण में पठित 'स्पृह + णिच्' धातु के प्रयोग मे ईप्सित (इष्ट) पदार्थ की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यहां ईप्सित और ईप्सिततम का भेद जानना आवश्यक है यदि केवल ईप्सित अर्थ रहेगा तभी सम्प्रदान संज्ञा होगी अन्यथा ईप्सिततम अर्थ रहने पर 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' के अनुसार ही कर्म संज्ञा होगी। अतः केवल स्पृहा द्योतित होने पर जिसकी स्पृहा हो उसमें 'सम्प्रदाने' चतुर्थी द्वारा चतुर्थी अन्यथा उत्कट स्पृहा रहने पर 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हो जायेगी।

पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों को चाहता है) यहां स्पृहा (इच्छा) का विषय पुष्प है अतः उक्त सूत्र से 'पुष्प' की सम्प्रदान संज्ञा होने पर 'पुष्पेभ्यः' में चतुर्थी विभक्ति होती है।

प्रत्युदाहरण–ईप्सित (चाहे हुए) में ही सम्प्रदान संज्ञा क्यो कहा ?

पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति (वन में पुष्पों की इच्छा करता है) में वन की इच्छा नहीं करता, अतः इसमें सम्प्रदान कारक न होकर अधिकरण कारक है। केवल ईप्सित में ही सम्प्रदान से चतुर्थी होगी। ईप्सिततम = विशेष रुप से अभीष्ट की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होगी, प्रकर्ष की विवक्षा होने पर 'कर्तुरिप्सिततमं कर्म' से कर्मत्व में द्वितीया होगी–यथा पुष्पाणि स्पृहयति (फूलों को चाहता है) में 'पुष्पाणि' में प्रकर्ष विवक्षा के कारण द्वितीया विभक्ति होती है।

44. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः /1/4/37'' क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्तसंज्ञः स्यात्। हरये क्रुध्यति, दुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा। यं प्रति कोपः किम् ? भार्यामीर्ष्यति मैनामन्योऽद्राक्षीदिति। क्रोधोऽमर्षः। द्रोहोऽपकारः। ईर्ष्या अक्षमा। असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्। द्रुहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते। अतो विषेषणं सामान्येन यं प्रति कोपः इति।

अर्थ–क्रुध् आदि धातुओं के एवं तत्समानार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके ऊपर कोप आदि किया जाय,उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे हरये क्रुध्यति, दुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा। यं प्रति कोपः कहने का क्या प्रयोजन है ? भार्याम् ईर्ष्यति–यहां इस कारण ईर्ष्या है कि उसको कोई अन्य न देखले। असहनषीलता का नाम 'क्रोध' है। किसी का उपकार करना 'द्रोह' है। अक्षमा का नाम 'ईष्या' है। गुणो में दोष बताना असूया है। द्रोह आदि भी क्रोध द्वारा ही उत्पन्न होते है। अतः सूत्र में सामान्य रुप से 'यं प्रति कोपः' कहा गया है।

व्याख्या–उक्त सूत्र में चार धातुओ के अर्थ का निरुपण किया गया है तदनुसार क्रुध् (क्रोध करना) द्रुह् (द्रोह करना), ईर्ष्य (ईर्ष्या करना), तथा असूय (गुणों में दोष निकालना) आदि धातुओं तथा इन्हीं की समानार्थक धातुओ के प्रयोग में जिस पर कोप = क्रोधादि किया जाय, उस कारक की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

यथा–**हरये क्रुध्यति** (हरि के ऊपर क्रोध करता है)।

हरये द्रुह्यति = हरि से द्रोह करता है।

हरये ईर्ष्यति = हरि से ईर्ष्या करता है।

हरये असूयति = हरि से असूया करता है।

उक्त चारों उदाहरणों में क्रोध आदि का पात्र या विषय हरि है अतः उक्त सूत्र से 'हरि' की सम्प्रदान संज्ञा हुई तथा सम्प्रदान मे चतुर्थी विभक्ति हुई है–हरये। यहां सर्वत्र कोप का भाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रत्युदाहरण–यं प्रति कोपः (जिसके प्रति कोप हो), उसमें ही सम्प्रदान हो–ऐसा क्यो कहा गया ? क्योंकि जब क्रोधादि का अर्थ क्रोध नहीं होगा तो सम्प्रदान कारक नहीं होगा। यथा – भार्याम् ईर्ष्यति (अपनी भार्या ईर्ष्यालु है अर्थात् अन्य द्वारा देखा जाना नहीं चाहता है) यहां 'भार्या' में कर्म कारक होगा, सम्प्रदान नहीं क्योंकि ईर्ष्या भार्या के प्रति नहीं है।

45. ''कुध्द्रुहोरूपसृष्टयोः कर्म'' /1/2/38''

सोपसर्गयोरनयोर्योगे यं प्रति कोपः तत्कारकं कर्म संज्ञं स्यात्। क्रूरमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति वा।

अर्थ–उपसर्ग युक्त 'क्रुध' तथा 'द्रुह' धातुओं के प्रयोग में जिस पर कोप आदि किया जाता, उस कारक की 'कर्म' संज्ञा होती है। यथा–क्रुरम् अभिद्रुह्यति, अभिक्रुध्यति वा।

व्याख्या – यहां 'यं प्रति कोपः' की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र क्रुध्द्रुहेष्यार्थानां यं प्रति कोपः से आ रही है कारके की अनुवृत्ति यथा पूर्व विद्यमान है ही। सूत्र में केवल दो धातुओं का ही निर्देश किया गया है। इस प्रकार सूत्रार्थ होगा कि सोपसर्ग क्रुध (क्रोध करना) तथा द्रुह् (द्रोह करना) धातुओं के प्रयोग में ही जिसकें प्रति क्रोध आदि किया जाय, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। यह सम्प्रदान संज्ञा का अपवाद सूत्र है।

क्रुरम् अभिक्रुध्यति (क्रूर पर क्रोध करता है)

क्रुरम अभि द्रुह्यति (क्रूर पर द्रोह करता है)

उक्त दोनों प्रयोगों में 'कूर' की पूर्व सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी किन्तु सम्प्रदान संज्ञा 'कुध्द्रुहोरूपसृष्टयोः कर्म' से बाधित होकर 'क्रूर' की कर्म संज्ञा होने पर उभयत्र द्वितीया विभक्ति हुई है।

46. 'राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः' /1/4/39।।

एतयोः कारकं सम्प्रदानं स्यात्। यदीयो विविधः प्रश्नः क्रियते। कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा। पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः।

अर्थ–राध् और ईक्ष् धातुओं के योग में, जिसके विषय में शुभाशुभ विषयक प्रश्न होता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा –कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा। पूछे जाने पर गर्ग कृष्ण के शुभाशुभ का विचार करते हैं।

व्याख्या – सूत्रस्थ दो धातुओं का निर्देश दिया गया है। राध् = संसिद्धौ तथा ईक्ष = दर्शन के योग में विविध प्रश्न किये जाय वह सम्प्रदान संज्ञक होता है। यहां पर इन

दोनों धातुओं का 'विप्रश्न' अर्थ में तात्पर्य विविधः प्रश्नः है। विविध प्रश्न अर्थात् शुभाशुभ भाग्यसम्बन्धी प्रश्न पूछना। अतः एव सूत्रार्थ होगा कि इन दोनों धातुओं के प्रयोग में जिसके विषय में अनेक प्रश्न किये गये हो।, उस कारक ही सम्प्रदान संज्ञा होती। उदाहरण –

कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा (गर्ग नामक ज्योतिषी कृष्ण के शुभाशुभ का विचार करता है) यहां 'राध्' और 'ईष्' इन दोनों धातुओं का प्रयोग (कृष्ण विषयक) प्रश्न सम्बन्धी विचार करने के लिए किया गया है यहॉ माता गर्ग से कृष्ण विषयक भविष्य विषयक विविध प्रश्न पूछती है और गर्ग ज्योतिषी कृष्ण के विषय में पृष्टव्य शुभाशुभ प्रश्नों का पर्य्यालोचन करते हैं। अतः उक्त सूत्र से 'कृष्ण' शब्द में सम्प्रदान संज्ञा होने से चतुर्थी विभक्ति हुई है।

47. 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता /1/4/40।।

आभ्यां परस्य श्रृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनरूपव्यापारस्य कर्ता सम्प्रदानं स्यात्। विप्राय गां प्रतिश्रृणोति, आश्रृणोति वा। विप्रेण 'मह्यं देहि' इति प्रवर्तितः तत्प्रति जानीत इत्यर्थः।

अर्थ–प्रति एवं आङ् पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व प्रेरणा रूप व्यापार के कर्ता की सम्प्रदान संज्ञा होती है, यथा–विप्राय गां प्रति श्रृणोति, आश्रृणोति वा। अर्थात् ब्राह्मण द्वारा 'मुझे दो' इस प्रकार प्रेरणा प्राप्त करने पर दान दाता अपनी स्वीकृति देता है।

व्याख्या– वस्तुतः प्रति उपसर्ग पूर्वक तथा आङ् उपसर्गपूर्वक श्रु धातु के पूर्व वाक्य का कर्ता सम्प्रदान होता है तथा सम्प्रदान में चतुर्थी होती है। यहां प्रति और आङ् उपसर्ग युक्त श्रु धातु प्ररणात्मक रूप में प्रयुक्त है, अतः प्रेरणा के पूर्व के वाक्य में जो कर्ता रहता है वह सम्प्रदान संज्ञक होता है उत्तर वाक्य में प्रेरणा का अर्थ पूर्ण होने पर। अतः प्रस्तुत संदर्भ में पूर्ण वाक्य होगा–विप्रः गां याचते और तब उत्तर वाक्य होगा– विप्राय गां प्रतिश्रृणोति, आश्रृणोति वा (विप्र के लिए गाय देना स्वीकार करता है) यहाँ उत्तर वाक्य स्थित विप्र शब्द पूर्व वाक्य में कर्ता है। प्रति या आ पर्वूक श्रु का अर्थ है 'प्रतिज्ञा करना' इसीलिए उदाहरणस्थ वाक्यों का पूर्वोक्त पूर्ववाक्य अनुमान स्वरूप ही होगा। यहां 'विप्र' प्रेरक होने से उक्त सूत्र से सम्प्रदान संज्ञक हुआ एतदर्थ यहां चतुर्थी विभक्ति हुई है–विप्राय।

48. 'अनुप्रतिगृणश्च' /1/4/41।।

आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति वा। होता प्रथमं शंसति, तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः।

अर्थ–अनु तथा प्रति उपसर्ग पूर्वक ग्रह धातु के प्रयोग में पूर्व व्यापार कर्ता की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा–होत्रे अनुगृणाति, प्रतिगृणाति वा। इसका यह आषय है कि प्रथम होता मन्त्रोच्चारण करता है, तदनन्तर अध्वर्यु उसे प्रोत्साहहित करता है।

याख्या –पूर्व प्रसंगानुसार प्रेरक (पूर्व व्यापार का कर्ता) को अभिलक्षित कर विषेष दषा में 'सम्प्रदान' संज्ञा का विधान किया जा रहा है। अतः 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता' सूत्रसे 'पूर्वस्य कर्ता' की अनुवृति आ रही है, एतदतिरिक्त सम्प्रदान तथा कारक की अनुवृति तो यथापूर्व विद्यमान ही है। सूत्रस्थ 'अनुप्रति' पद लुप्तपञ्चम्यन्त है। अत एव 'अनु' तथा 'प्रति' से 'पर' अर्थ ग्राह्य होगा। गृ धातु क्रया्दिगण में पठित होने से ''गृणाति'' प्रयोग बनेगा। वस्तुतः सूत्रार्थ होगा कि 'अनु गृह् तथा 'प्रति गह्'(प्रोत्साहित करना अर्थ) के योग में पूर्व व्यापार का कर्ता कारक 'सम्प्रदान' संज्ञक होता है।

यथा–होत्रे अनुगृणाति।

होत्रे प्रतिगृणाति। होता को प्रोत्साहित करने के लिए अध्वर्यु = यज्ञ कर्ता मन्त्रोच्चारण करता है। यहां पूर्व व्यापार= उच्चारण का कर्ता होता है। अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा उक्तसूत्र से होने से यहाँ चतुर्थी विभक्ति हुई है–होत्रे। यहां कर्म संज्ञा प्राप्त थी किन्तु अनुप्रतिगृणश्च से उसका बाध हो गया।

49. 'परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्' /1/4/44।।

नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्, तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदानसंज्ञं वा स्यात्। शतेन शताय वा परिक्रीतः।

अर्थ—परिक्रयण अर्थ में साधकतम कारक की विकल्प से 'सम्प्रदान' संज्ञा होती है। निश्चित काल के लिए किसी भृत्यादि को वेतन या मजदूरी पर रखना 'परिक्रयण' कहलाता है। जैसे शतेन, शताय वा परिक्रीतः।

व्याख्या —दस सूत्र द्वारा विषेष दशा में करण कारक के अर्थ में पाक्षिक 'सम्प्रदानं' संज्ञा का विधान किया रहा है। अतः सूत्रार्थ स्पष्ट करने के लिए 'साधकतमं करणम्' से साधकतमम् की अनुवृति आ रही है। 'कारके' का अधिकार पूर्वतः विद्यमान है। अत एव सूत्रार्थ अभिव्यञित होता है कि 'परिक्रयण' अर्थ में करण कारक की (साधकतम् कारवम्) सम्प्रदानसंज्ञा होगी। परिक्रयण का अर्थ है कि—कुछ निश्चित कालावधि के लिए मजदूरी देकर अपने स्वामित्व में कर लेना 'परिक्रयण' कहलाता है और यदि ऐसा अर्थ रहे तो जिस द्रव्यादि के द्वारा कोई भृत्यादि (नौकर) किसी निक्रिचत काल के लिए मजदूरी देकर खरीद लिया जाय उस द्रव्यादि रूप 'परिक्रयण' में विकल्प से सम्प्रदान में चतुर्थी होगी, अन्यथा 'साधकतम' अर्थ रहने पर करण संज्ञा में तृतीया होगी। अर्थात् परिक्रयण में जो अत्यन्त उपकारक हो उसकी विकल्प से 'सम्प्रदान' संज्ञा होती है। पक्ष में करणार्थ में तृतीया विभक्ति होगी।

यथा—**शतेन शताय वा परिकीतः** (सौ रूपये वेतन पर रखा हुआ) यहां पर शत परिक्रयण का साधन है, अत्यन्त उपकारक है अतः उक्त सूत्र से विकल्प से 'शत' की सम्प्रदान संज्ञा होने पर चतुर्थी शताय तथा संप्रदान संज्ञा के अभाव में करण में तृतीया विभक्ति होने से शतेन बना।

वार्तिक— तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या।

मुक्तये हरिं भजति—जिसके लिए कोई कार्य या क्रिया की जावे तादर्थ्य कहलाता है। उसके लिए अर्थात् प्रयोजन। अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य या वस्तु होती है उस प्रयोजन से चतुर्थी विभक्ति होती है—

यथा—**मुक्तये हरिं भजति** (मुक्ति के लिए हरि को भजता है)

यहां हरि के भजन का प्रयोजन मुक्ति हैं अतः वार्तिक से 'मुक्ति' शब्द में चतुर्थी विभक्ति होती है—मुक्तये।इसी प्रकार—आभूषणाय स्वर्णम् (आभूषण के लिए स्वर्ण है)

काव्यं यषसे (काव्य यष के लिए) यहां आभूषण एवं यषस् में चतुर्थी हुई है।

वार्तिक क्लृपि सम्पद्यमाने च।। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते जायते इत्यादि यथा—भक्तिः ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते वा।(भक्ति ज्ञान के लिए होती है)

क्लृप् धातु तथा तदर्थक धातुओं के प्रयोग में जो नहीं था उसके हो जाने पर जो सम्पद्यमान रहे अर्थात् जो संभव हो उसमें चतुर्थी होती है। अत एव क्लृप् तथा दूसरी क्रियाओं से जिनका अर्थ फलित होना पूरा होना, उत्पन्न होना होता है, जो फलस्वरूप में उत्पन्न होता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है—

यथा—**भक्तिः ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते वा।**

(भक्ति ज्ञान के लिए होती है) प्रकृत वाक्य में 'क्लृप्' धातु के योग में सम्पद्यमान या उत्पद्यमान अर्थ में 'ज्ञान' वर्तमान है। अतः उक्त वार्तिक से चतुर्थी विभक्ति होती है—ज्ञानाय

व्याख्या —वस्तुतः ऐसे स्थलो में प्रकृति—विकृति भाव निहित रहता है। जब 'भक्ति' से ज्ञान होना कहा जाता है तो 'भक्ति' प्रकृति और 'ज्ञान' विकृति कहा जायेगा। अतः ऐसी स्थिति में जब प्रकृति विकृति में भेद विवक्षा समझी जाती है तो विकृतिवाचक शब्द में ही चतुर्थी होती है।

वार्तिक —उत्पातेन ज्ञापिते च। यथा—वाताय कपिला विद्युत्।

प्राणियो के शुभ—अशुभ सूचक आकस्मिक भूतविकार को उत्पात कहते हैं। इसलिए उत्पात का तात्पर्य प्राकृतिक उत्पात से है।' ऐसे प्राकृतिक उत्पात से जो कुछ ज्ञापित हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण—

वाताय कपिला विद्युद्, आपातपायातिलोहिनी।
पीता वर्षाय विज्ञेया, दुर्भिक्षाय सिता भवेत्।।

कपिल वर्ण की विद्युद् से आंधी, अधिक रक्त वर्ण की विद्युद् से तेज धूप, पीले

वर्ण की विद्युद् से वर्षा और सफेद वर्ण की विद्युद् से अकाल की सूचना प्राप्त होती है। उक्त कथन में वात, आतप, वर्षण तथा अकाल इन चारों का प्राकृतिक उत्पात से ज्ञापित होना सूचित होता है। अतः उक्त वार्तिक से चतुर्थी विभक्ति हुई है– वाताय, आतपाय, वर्षाय, दुर्भिक्षाय,

50. कियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः /2/3/14''

क्रियार्था क्रिया उपदं यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात्। फलेभ्यो याति। फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः। नमस्कुर्मो नृसिंहाय। नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः। एवं स्वयंभुवेनमस्कृत्य इत्यादावपि।

अर्थ–क्रियार्थक क्रिया उपपद हो किन्तु तद् वाचक 'तुमुन्' प्रत्ययान्त प्रयोग न किया गया हो, उसके कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है–यथा–फलेभ्यो याति। इसका अभिप्राय है कि वह फल लाने के लिए जाता है। नमस्कुर्मः नृसिंहाय–इसका अभिप्राय है कि नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम नमस्कार करते हैं। इसी प्रकार स्वयम्भूवे नमस्कृत्य–इत्यादि प्रयोग भी सिद्ध होते हैं।

व्याख्या –क्रिया अर्थ प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्थाः = किया। कोइ क्रिया यदि किसी दूसरी क्रिया के लिए हो तो उसे क्रियार्था क्रिया कहते हैं। पुनश्च, क्रियार्था किया उपदं यस्य स, तस्य क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः। अर्थतः ऐसी क्रियार्था क्रिया यदि किसी स्थानी के उपपद अर्थात् समीप में हो तो ऐसे स्थानी के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। उपपद शब्द का अर्थ यहां साधारण पदस्य समीपम् या उपोच्चारीतं पदम् है, न कि 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' /3/1/92।। सूत्र के अन्तगर्त प्राप्त विशेष अर्थ। स्थानमस्यास्तीति स्थानी। स्थानी का अर्थ यहां तुमुन्नन्त स्थानी है क्योंकि ''तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् /3/3/10।। सूत्र में तुमुन् और ण्वुल् ही क्रियार्था किया के लिए प्राप्त प्रत्यय हैं क्योंकि तुमुन् प्रत्ययान्त ही ऐसी स्थिति में स्थानी (अप्रयुज्यमान) हो सकता है। अतः सूत्रार्थ हुआ कि यदि कोई क्रिया जो दूसरी किसी क्रिया के लिए हो (अर्थात् किसी दूसरी प्रधान क्रिया के अप्रधान क्रिया के रूप में हो) किसी स्थानी (अप्रयुज्यमान) तुमुन् प्रत्यय युक्त पद का उपपद हो (अर्थात् स्थानी या अप्रयुज्यमान उसी तुमुन् प्रत्यय युक्त पदमें निहीत हो) तो ऐसी अप्रधान क्रिया के साक्षात् कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। अन्य शब्दों में हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि यदि किसी प्रधान क्रियापद के साथ आये तुमुन् प्रत्यय युक्त पद युक्त सहायक क्रिया पद का लोप हो जाय तो लुप्त पदसे पूर्व जिस पद में उस तुमुन्नन्त सहायक क्रियापद के योग में कर्म में द्वितीया विभक्ति थी उसी पद में लोप होने पर चतुर्थी विभक्ति हो जायेगी पूर्व प्रधान क्रिया पद के मात्र रहने पर।उदाहरण–

फलेभ्यःयाति (फल लाने के लिए जाता है) यहां 'याति' क्रियार्थक क्रिया है, यतोहि उसका प्रयोग फलानिआहर्तुम् फल लाने के लिए अर्थ में किया गया है और वह उपपद भी है। तथा मूल उदाहरण में तुमुन् प्रत्ययान्त आहर्तुम् का प्रयोग नहीं किया गया है। अतः उसके कर्म फल शब्द में चतुर्थी विभक्त हुई–उक्त सूत्र ''क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः'' से। उदाहरण –

नमस्कुर्मः नृसिंहाय (नृसिंह को अपने अनुकूल करने के लिए नमस्कार करता है) यहां पर इसका अर्थ है 'नृसिंहम् अनुकूलयितुं नमस्कुर्मः।'यहां तुमुन् प्रत्ययान्त अनुकूलयितम् का भाव प्रकट होता है। 'अनुकूलयितुम्' का कर्म नृसिंह है। अत एव नृसिंह शब्द से उक्त सूत्र से चतुर्थी विभ्रक्ति होती है। इसी प्रकार 'स्वयम्भूवे नमस्कृत्य' (ब्रह्मा को अनुकूल करने के लिए नमस्कार करके) यहां भी पूर्ववत् स्वयम्भू में चतुर्थी हुई स्वयम्भुवे।

51. तुमर्थाच्च भाववचनात् /2/3/15।।

भाववचनाश्च **/3/3/11।।** इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः।

अर्थ–'भाववचनाश्च' सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय होता है, तदन्त घञ् प्रत्ययान्त शब्द में चतुर्थी विभक्ति होती है– यथा–यागाय याति। इसका अर्थ है–याग करने के लिए जाता है।

व्याख्या – किसी क्रियार्था के उपपद रहने पर 'भाववचनाश्च' सूत्र के अन्तगर्त विहित भाववाची प्रत्यय से व्युत्पन्न शब्द से ही चतुर्थी विभक्ति होती है, जब वह चतुर्थी विभक्ति तुमुन्नन्त कथित अप्रधान सहायक क्रिया के स्थान में लगती है। ऐसी स्थिति में विहित चतुर्थी विभक्ति तुमुन् प्रत्ययान्त ही कही जायेगी।

यथा–**यगाय याति** (याग करने के लिए जाता है) यहां भाववाची घञ् प्रत्यय से निष्पन्न 'याग' शब्द में चतुर्थी विभक्ति उक्त सूत्र से होती है। तत्स्थानिक अप्रधान सहायक क्रिया तुमुन्नन्त 'यष्टुम्' के बदले में यहां प्रधन क्रिया 'याति' = गच्छति है। सूत्रस्थ चकार पूर्वसूत्र से क्रियार्थोपपदत्व के कारण समुच्चयार्थ है।

52. 'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलं वषड्योगाच्च' /2/3/16।।

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्। हरये नमः। 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' (परिभाषा–103) नमस्करोति देवान्। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा।'अलमिति र्प्याप्त्यर्थग्रहणम्'। तेन दैत्येभ्यो हरिरलम्, प्रभुः,समर्थ शक्त इत्यादि। प्रभ्वादि योगे षष्ठ्यपि साधुः। ''तस्मै प्रभवति''–5/1/101।। स एषां ग्रामणी 5/2/78।। इति निर्देषात्। तेन प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य इति सिद्धम्। वषडिन्द्राय। चकारः पुनर्विधानार्थः। तेनाशीर्विवक्षायां परामपि ''चतुर्थी चाशिषीत–2/3/73।। षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति। स्वस्ति गोभ्यो भूयात्।

अर्थ–नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट्–इनके योग में चतुर्थी होती है जैसे – हरये नमः। परि उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति प्रबल होती है। जैसे–नमस्करोति देवान्। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। 'अलम्' शब्द यहां पर्याप्ति अर्थ का बोधक है। इस कारण–दैत्येभ्यः हरिः अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः इत्यादि वाक्यों में चतुर्थी होगी। 'प्रभु' आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति भी साधु है। पाणिनि ने सूत्रों में दोनो का प्रयोग किया है– ''तस्मै प्रभवति– तथा ''स एषां ग्रामणीः'। अतः 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' यह प्रयोग भी किया गया है। वषट् इन्दाय–। इस सूत्र के अन्त में च पद चतुर्थी विभक्ति के पुनर्विधान के लिए किया गया है। अतः आशीर्वाद की विवक्षा में पर होने के कारण ''चतुर्थी चाशिषि'' से प्राप्त षष्ठी विभक्ति बाध कर चतुर्थी विभक्ति ही होती है, यथा स्वस्तिगोभ्यः भूयात्।

व्याख्या–'चतुर्थी सम्प्रदाने' /2/3/13।। सूत्र से चतुर्थी की अनुवृत्ति आने से सूत्रार्थ उपपन्न होता है कि नमः (नमस्कार करना), स्वस्ति (कल्याण) स्वाहा (आहुति देना), स्वधा (पितरो को तृप्त करना), अलम् (पर्याप्त), तथा वषट् (देव सम्बन्धी हविर्दान) इन परिगणित छः अव्ययों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। अर्थात् जो शब्द इन अव्ययों के साथ संयुक्त होंगे उनसे चतुर्थी विभक्ति होगी।

हरये नमः (हरि को नमस्कार है) **प्रजाभ्यः स्वस्ति** (प्रजा का कल्याण हो), **अग्नये स्वाहा** (अग्नि को आहुति मिले), **पितृभ्यः स्वधा** (पितरो की तृप्ति के लिए अन्नादि पदार्थ है), **दैत्येभ्यः हरिः अलम्** (दैत्यो को मारने के लिए हरि समर्थ या पर्याप्त है), **इन्द्राय वषट्** (इन्द्र को हविर्दान)

प्रसंगानुसार उपपद विभक्ति कारक से प्रबल होती है। यह पदस्य समीपम् उपपदम्, तस्मिन् या विभक्तिः, या उपपपदविभक्तिः। कारके सति या विभक्तिः, सा कारक विभक्तिः। किसी पद के समीपस्थ जो अन्य पद हो उसे उपपद कहेंगे और उपपद में जो विभक्ति होगी उसे उपपदविभक्ति कहेंगे। अतः स्पष्ट है कि एक पद से सम्बन्ध स्थापित होने पर जो दूसरे पद में विभक्ति होती है उसे ही उपपद विभक्ति कहते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि–

पदान्तरयोग निमित्ति का विभक्तिः उपपद विभक्तिः। अर्थात् जिस विभक्ति की उत्पत्ति का निमित्त कारण कोई दूसरा पद हो उसे उपपद विभक्ति कहेंगे। इसके विपरीत केवल दो पदों में नहीं, बल्कि वाक्य में स्थित क्रिया के साथ भी सम्बन्ध स्थापित होने पर जो विभक्ति होती है उसे कारक विभक्ति कहेंगे। अतः क्रियाकारक के सम्बन्ध निमित्त को कारक विभक्ति और केवल पद सम्बन्ध निमित्त उपपद विभक्ति कहते हैं। अत एव स्पष्ट

है कि क्रिया कारक के सम्बन्ध के अन्तरंग होने के कारण कारक विभक्ति की प्रधानता होनी चाहिये उपपद विभक्ति की अपेक्षा। किन्तु क्या एक पृथक् क्रियाविहीन पद में क्रियान्वयित्व की संभावना हो सकती है ? और यदि एक ही पद में एक ही अवस्था में ऐसा संभव हो सकता है। तभी उपपद विभक्ति के स्थान में कारक विभक्ति की बलवत्ता का प्रश्न उठ सकता है। उदाहरण से स्पष्ट होता है कि –'हरयेः नमः'में क्रियान्वयित्व नहीं है, अतः कारकत्व नहीं है। 'नमः' एक पद है जिसके साथ चतुर्थी विभक्ति के द्वारा 'हरि' शब्द का सम्बन्ध स्पष्ट होता है, किन्तु इसी उदाहरण में 'नमः' के साथ क्रिया पद का योग हो जाता है और क्रियान्वयित्व की प्राप्ति होने पर कारकत्व की प्राप्ति हो जाती है तो 'नमस्कर्ता' का क्रिया के द्वारा 'हरि' ईप्सिततम् हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में इस सूत्र को मूल सूत्र 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' बाधित कर देता है और तब कर्मत्व की प्राप्ति होने पर हो जाता है–हरिं नमस्करोतिं। इसी प्रकार वृत्तिस्थ– 'नमस्करोति देवान्' तथा 'मुनित्रयं नमस्कृत्य' इत्यादि प्रयोगों में 'नमः' में चतुर्थी प्राप्त है किन्तु 'नमस्करोति' क्रिया के कारण देवान् में तथा 'नमस्कृत्य' क्रिया के कारण ''मुनित्रयम्'' में द्वितीया विभक्ति हो जाती है। कारक विभक्ति के प्रबल होने के कारण।

दैत्येभ्यः हरिः अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः (दैत्यों को मारने के लिए हरि पर्याप्त है।)

'प्रभु' आदि शब्दों के योग में षष्ठी भी होती है। चतुर्थी विभक्ति विषयक वार्तिक का स्पष्टीकरण किया जा चुका है। तदनुसार दोनों सूत्र है– ''तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः'' /1/1/101/ तथा ''स एषां ग्रामणी'' /5/2/78।। इस प्रकार तस्मै प्रभवति तथा तस्य प्रभवति दोनों प्रयोग साधु है। षष्ठी विभक्ति की प्रामाणिकता के कारण महाकवि माघ ने शिशुपालवधम् 1/49 में प्रभु शब्द के साथ 'बुभूषुः' षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया है –प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (तीनों लोकों का स्वामी बनने का इच्छुक) 'नमः स्वस्ति–'आदि सूत्र में 'च' शब्द दृढता का सूचक है। 'नमः' स्वस्ति आदि के योग में चतुर्थी के अतिरीक्त अन्य कोई विभक्ति नहीं होगी।

अतः आशीर्वाद अर्थ में 'स्वस्ति गोभ्यः भूयात् (गायों का कल्याण होवे) वाक्य में पर होने के कारण ''चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः /2/3/83।। सूत्र से प्राप्त षष्ठी विभक्ति का बाध करके चतुर्थी विभक्ति ही होती है–गोभ्यः

53. ''मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु'' /2/3/17।।

प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात् तिरस्कारे। न त्वां तृणं मन्ये, तृणाय वा। श्यना निर्देशात् तानादिक योगे न। न त्वां तृणं मन्वे, मन्ये वा।

अर्थ–अनादर या तिरस्कार गम्यमान होने पर दिवादिगणपठित 'मन्' धातु के प्राणिवर्जित अनभिहित = अनुक्त कर्म में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है।

न त्वां तृणं तृणाय वा मन्ये। सूत्र में 'श्यन का निर्देश होने से तनादिगण पठित मन् धातु के साथ चतुर्थी विभक्ति नहीं होती। अतः यहां द्वितीया ही होगी–न त्वां तृणं मन्वेऽहम्।

व्याख्या – विशेष अर्थ को अभिलक्षित कर चतुर्थी विभक्ति का विधान यहां किया जा रहा है। अतः पूर्ववत् चतुर्थी तथा 'अनभिहिते' की अनुवृत्त की जा रही है। इस प्रकार स्पष्टतः अर्थ होगा कि तिरस्कार = अनादर अर्थ में दिवादिगण पठित् 'मन्' धातु 'मन्यते' के प्राणिभिन्न = प्राणि अर्थ को छोडकर कर्म में विकल्प से 'चतुर्थी' विभक्ति ही होती है। पक्ष में यथा प्राप्त 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति ही होगी।

यथा– न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा (मैं तुम्हें तृण = घास के बराबर भी नहीं समझता) यहां 'मन्' धातु का कर्म 'तृण' प्राणिवर्जित है, अतः विकल्प से यहां चतुर्थी विभक्ति हुई है–'तृणाय'। पक्ष में द्वितीया विभक्ति होती है–तृणम् तिनका भी नहीं समझता यहां अनादर है। 'मन्' धातु दिवादिगण में तथा तनादि गण दोनों में पढा गया है,किन्तु उक्त सूत्र में दिवादिगणस्थ विकरण श्यन् (मन् + श्यन् (य)) = मन्य का निर्देश होने से

तनादिगण पठित 'मन्' धातु के योग में पक्ष में चतुर्थी नहीं होती। वहां कर्म में यथा प्राप्त द्वितीया विभक्ति ही होगी 'न त्वां तृणं मन्वे।'

वार्तिक–. अप्राणिष्वित्यपनीय ''नौकाकान्नशुकश्रृगालवर्जेष्विति वाच्यम्'' तेन–

'न त्वां नावमन्नं वा मन्ये' इत्यत्राप्राणित्वेऽपि चतुर्थी न। 'न त्वां शुने मन्ये' इत्यत्र प्राणित्वेऽपि भवत्येव।

सूत्र में अप्राणिषु के स्थान पर अनावादिषु होना चाहिये था। नो (नाव), काक (कौआ), अन्न, शुक तथा श्रृगाल ये शब्द नावादि है, इनकों छोडकर अन्य यदि मन् धातु के कर्म हों, तभी विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होगी।

न त्वां नावं मन्ये (मैं तुझे नाव नहीं समझता) यहां अप्राणि (नाव) होने के कारण सूत्र के अनुसार 'नौ' शब्द से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त होती है। प्रस्तुत वार्तिक में 'नौ' को वर्जित करने से चतुर्थी नहीं होती। 'नावं' में यहां द्वितीया विभक्ति हुई।

न त्वां शुने मन्ये (मैं तुझे कुत्ता भी नहीं समझता) यहां श्वन् (कुत्ता) प्राणी है अत एव सूत्र के अनुसार चतुर्थी प्राप्त नहीं, किन्तु चतुर्थी विभक्ति इष्ट है उक्त वार्तिक में 'श्वन' को वर्जित किया गया अतः वार्तिक के अनुसार 'शुने' में प्राणी होते हुए भी चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।

54.''गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि'' /2/3/12।।

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मण्यते स्तश्चेष्टायाम्। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। चेष्टायां किम् ? मनसा हरिं व्रजति अनध्वनि अति किम् ? पन्थानं् गच्छति। गन्त्राधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः। यदा तूत्पथात्पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तथा चतुर्थी भवत्येव। उत्पथेन पथे गच्छति– इति चतुर्थी।

अर्थ–यदि गति में चेष्टा आदि हो तो गत्यर्थक धातुओं के योग में मार्गरहित = मार्गभिन्न कर्म में द्वितीया एवं चतुर्थी विभक्ति दोनों हाती है।

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। 'चेष्टायाम' का क्या प्रयोजन है ? मनसा हरिं व्रजति। ''अनध्वनि'' ऐसा क्यो कहा ? पन्थानं गच्छति। यह अनिष्ट मार्ग चलने के अर्थ में ही है, अतः जब कोई कुमार्ग से सन्मार्ग की और जाता है तो चतुर्थी ही होती है– जैसे–उत्पथेन पथे गच्छति।

व्याख्या –विशेष परिस्थिति में गत्यर्थक धातुओं के कर्म में चतुर्थी विभक्ति का विधान यहां किया जा रहा है। कर्म में द्वितीया विभक्ति प्राप्त थी। सूत्र में स्थित 'अनध्वनि' पद के अन्तगर्त मार्गवाची शब्द का प्रयोग न होना है। इस प्रकार स्पष्टतः सूत्रार्थ होगा कि जब शारीरिक चेष्टा का अर्थ रहे और मार्गवाची शब्द का प्रयोग न होवे तो गत्यर्थक धातुओं के कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्तियाँ ही होती है।

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति (गांव को जाता है) यहां पर ग्राम शब्द गच्छति क्रिया का कर्म है। उसमें उक्त सूत्र से विकल्प से द्वितीया के साथ चतुर्थी विभक्ति भी होती है। यहाँ 'ग्राम' मार्ग वाची शब्द से भिन्न है गति = गमन क्रिया में शारीरिक चेष्टा भी है।

प्रत्युदाहरण–शरीर की गति या चेष्टा में हो, ऐसा क्यों कहा गया है ? 'गत्यर्थक' क्रिया में शारीरिक चेष्टा होने पर ही द्वितीया तथा चतुर्थी विभक्ति का विधान अपेक्षित होने से 'मनसा हरिं व्रजति' (मन से हरि के पास जाता है।) इस वाक्य में चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई है। कारण कि 'मानसिक क्रिया ' में बाह्य चेष्टा नहीं होती।

अनध्वनिः अर्थात् मार्ग वाचक न होने पर ही क्यो हो? मार्ग वाची शब्द कर्म के रुप में ग्रहण न किये जाने के कारण–पन्थानं गच्छति (रास्ता चलता है) में 'पथिन्' शब्द में चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई है, क्योंकि यहाँ गत्यर्थक धातु 'गम्' का कर्म पथिन् = मार्ग ही है, अतः यहां कर्म में केवल द्वितीया ही होती है – पथिनम्।

अभ्यास प्रश्न

1–प्रश्न – सम्प्रदान किसे कहते हैं

2– प्रश्न –सम्प्रदान संज्ञा किस सूत्र से होती है

3–प्रश्न–सम्पदान मे कौनसी विभक्ति होती है ?

4– **प्रश्न** – नमः के योग मे कौनसी विभक्ति होती है ?

5– **प्रश्न** –गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि'' सूत्र का उदाहरण क्या है।

बहुविकल्पीय प्रश्न – उतर

1–कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् से होती है–

क– सम्प्रदानम् ख–कर्म

ग–अपादान घ– स्म्बोधन

2– सम्प्रदान में चतुथी विभक्ति होती है–

क– कर्मणि द्वितीया ख– साधकतमं करणम्

ग– अकथितंच घ– चतुर्थी सम्प्रदाने

3– । हरये रोचते भक्तिः में विभक्ति है।

क– सम्बोधन ख–चतुर्थी

ग– द्वितीया घ– पंचमी

4– नमः के अर्थ में विभक्ति होती है।

क– सम्बोधन ख–चतुर्थी

ग– द्वितीया घ– पंचमी

5– हरये नमः में विभक्ति है–

क – द्वितीया ख – सप्तमी

ग – सप्तमी घ – चतुर्थी

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि इसमें कि कितने विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में केवल चतुर्थी विभक्ति का अध्ययन किया गया है। चतुर्थी विभक्ति का विधान करने वाला मुख्य सूत्र है। चतुर्थी सम्प्रदाने। इस सूत्र का अर्थ है–सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है । सम्प्रदान संज्ञा जहा जहा होती है वहा वहा चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है।

3.5 .शब्दावली

शब्द	अर्थ
कर्मणा	कर्म के द्वारा
यमभीप्रैति	जिसको चाहता है
सम्प्रदानम्	सम्प्रदान
दानस्य	दान का
स्यात्	होता है
विप्राय	विप्र के लिये
गाम्	गाय को
ददाति	देता है
दानीयःविप्रः	दान देने योग्य विप्र
क्रुध्	क्रोध करना
द्रुह्	द्रोह करना
ईर्ष्य	ईर्ष्या करना
असूया	गुणों में दोष निकालना
न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा	मैं तुम्हें तृण = घास के बराबर भी नहीं समझता
न त्वां शुने मन्ये	मैं तुझे कुत्ता भी नहीं समझता

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर. अच्छी प्रकार से जिसको दिया जाय उसे सम्प्रदान रूप कहते हैं।

2. उत्तर. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्
3. उत्तर . सम्पदान मे चतुर्थी विभक्ति होती है ?
4. उत्तर. नमः के योग मे चतुर्थी विभक्ति होती है ?
5. उत्तर. ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति

बहुविकल्पीय प्रश्न – उतर

1.क – सम्प्रदानम
2.ख – साधकतमं करणम्
3.ख –चतुर्थी
4.ख –चतुर्थी
5.ख – सप्तमी

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.पुस्तक का नाम – लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाशक का नाम – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण – सिद्धान्तकौमुदीलेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित
सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
3–पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य लेखक का नाम – पतंजलि
प्रकाशक का नाम चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

3.8 उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाषक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये

इकाई 4 पंचमी विभक्ति , सूत्र वृति उदाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पंचमी विभक्ति सूत्र वृति उदाहरण सहित व्याख्या

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उतर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि अपादान की आवश्यकता क्या है ? अपादान किसे कहते हैं।

इस इकाई में मुख्य रूप से अपादान कारक के विषय में व्याख्या की गयी है पृथक् होना ' पृथक् पार्थक्य साध्य होने पर ध्रुव या अवधिभूत कारक की ''अपादान' संज्ञा होती । इसलिये सूत्रानुसार ऐसा विश्लेष रहने पर जो विषय ''ध्रुव'' = अर्थात् स्थिर रहे जिससे कोई दसूरा पदार्थ अलग होता हो, वहीं ''अपदान'' कहलाता है। वस्तुतः साधारण भाषा में ''ध्रुव'' का अर्थ केवल ''निश्चत'' होता है जिससे व्याकरणिक परिभाषा में 'अवधि भूतस्थिर विषय'' अर्थ हुआ। विचार करने पर विश्लेष की अवस्था में ''ध्रुव'' विषय की परिकल्पना बड़ी मार्मिक प्रतीत होती हैं क्योंकि जहां कहीं भी एक स्थिर होगा। कारक छः प्रकारक के होते है–

कर्ता , कर्म , कारण , सम्प्रदान अपादान अधिकरण। ष्षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं माना गया है क्यों कि क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नही है।इन छः कारकों में अपादान अर्थात् पंचमी विभक्ति व्याख्या कि जा रही है

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाणिनि रचित व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्त्वपूर्ण विभक्तियों सहित सूत्रों का ज्ञान करेंगे।

- अपादान किसे कहते है इसके विषय में परिचित होंगे
- अपादान अर्थ में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- भयार्थक और रक्षणार्थक धातुओं के योग में पंचमी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- पराजेरसोढः सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- ब्राह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- उपाध्यायात् अधीते में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे

4.3.अपादान कारक पंचमी विभक्ति

55. ''ध्रुवमपायेऽपादानम्'' /1/4/24।।

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादानं स्यात् ।

अर्थ – पृथक् होना 'अपाय' कहलाता है। विश्लेष = पृथक् पार्थक्य साध्य होने पर ध्रुव या अवधिभूत कारक की ''अपादान' संज्ञा होती हैं।

व्याख्या :– अपादीयते अस्मात् तदपादानम् । जिससे कुछ हटे या हटा दिया जाय वही अपादान कहलाता है और अग्रिम सूत्रानुसार ऐसे अपादान भूत विषय में ही पंचमी विभक्ति होती है। अब ध्यातव्य बात यह है कि जहाँ अपादान का भाव रहता है वहां दो विषयों की कल्पना आवश्यक रूप से करनी पड़ती है – एक वह जिससे कुछ अलग होता है और दूसरा वह जो अलग होता है। अतः ऐसी स्थिति में 'अपाय'' अर्थात् पारस्परिक विश्लेष का भाव रहता है, क्योंकि एक विषय से दूसरे विषय का अलग होना ही विश्नेष है। इसलिये सूत्रानुसार ऐसा विश्लेष रहने पर जो विषय ''ध्रुव'' = अर्थात् स्थिर रहे जिससे कोई दसूरा पदार्थ अलग होता हो, वहीं ''अपदान'' कहलाता है। वस्तुतः साधारण भाषा में ''ध्रुव'' का अर्थ केवल ''निश्चत'' होता है जिससे व्याकरणिक

परिभाषा में 'अवधि भूतस्थिर विषय'' अर्थ हुआ। विचार करने पर विश्लेष की अवस्था में ''ध्रुव'' विषय की परिकल्पना बड़ी मार्मिक प्रतीत होती हैं क्योंकि जहां कहीं भी एक स्थिर होगा। ऐसा स्थिति में स्थिर होने पर तात्पर्य हो सकता है, अपेक्षाकृत स्थिर होना। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के अनुसार अपादान की परिभाषा –

''अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम् ।ध्रुवमेवातदावेशात् तदपादानमुच्यते।।''

अर्थात् पृथक होने में जो उदासीन हो, वह चाहे चल या अचल हो, ''ध्रुव'' ही कहलाता है। कारण यह है कि वह वियोग कारक क्रिया का आश्रय नहीं हैं। वह अपादान कहा जाता है।

कार्यसंसर्ग अथवा बुद्धिसंसर्ग पूर्वक उपाय की विवक्षा होने पर अवधिभूत ध्रुव की अपादान संज्ञा होती है। उक्त अपादान तीन प्रकार का होता है –

1. **निर्दिष्ट विषयक अपादान** – धातु के द्वारा पृथक्ता का विषय निर्दिष्ट होने पर 'निर्दिष्ट विषयक' अपादान कहलाता है – यथा 'ग्रामात् आगच्छिति' (गांव से आता है)

2. **उपात्त विषयक अपादान** –जहां एक क्रिया अन्य क्रिया के अर्थ के अंगरूप में स्वार्थ को व्यक्त कराती है, वहारं 'उपात्त' विषयक अपादान होता है। यथा–मेघात्, विद्युत् विद्योतते (बादल से निकलकर बिजली चमकती है।)

3. अपेक्षित क्रिय अपादान – जहाँ क्रिया पद की प्रतीति होती है, किन्तु प्रयोग प्रतीत नहीं होता, वह अपेक्षितक्रिय अपादान है। यथा माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः (मथुरावासी पाटलि पुत्र निवासियों से अधिक धवान हैं)।

56. 'अपादाने पंचमी' /2/3/28।। ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पतति। 'कारकं' किम्? वृक्षस्य पर्णं पतति।

अर्थ :– अपादान में पंचमी विभक्ति होती है, जैसे ग्रामाद् आयाति। धावतः अश्वात् पतति। 'कारक' कहने का क्या प्रयोजन है? वृक्षस्य पर्णं पतति।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैसी भी स्थिति हो वास्तविक स्थिरता की या सापेक्ष स्थिरता की स्थिर पदार्थ की 'अपादान' कहलाता है और उस अपादान में पंचमी विभक्ति होती है।

ग्रामाद् आयाति (गांव से आता हैं) कहां से आता है – इस प्रकार आकांक्षा का विषय ग्राम है। वह कर्त्ता या आने वाले का अवधि रूप है। अतः 'ग्राम' की ध्रवमपायेऽपादानम् से अपादान संज्ञा करने पर उक्त सूत्र से अपादान में पंचमी विभक्ति होती है।

धावतः अश्वात् पतति (दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है) उक्त वाक्य में अश्व पतन क्रिया की अवधि है, अतः अपादान संज्ञक अश्व में उक्त सूत्र से पंचमी विभक्ति हुई।

व्याख्या :–उक्त ''ग्रामादायाति'' उदाहरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस सूत्र के अन्तर्गत अपादान में किसी भी प्रकार के विश्लेष का भाव समन्वित है– भले ही वह ऐच्छिक हो या अनैच्छिक हो, स्थावर विषयक हो या जग्ङमविषयक हो, ऐकपदिक हो या शनैः भूयान हो। द्वितीय उदाहरण– ''धावतोऽश्वात् पतति' सापेक्ष स्थिरता विषयक है। जब सवार दौड़ते हुए घोड़े से गिर पड़ता है तो यद्यपि गिरते वक्त सवार और घोड़ा दोनों ही चलायमान रहते हैं, तथापि सवार की अपेक्षा घोड़ा स्थिर कहा जायेगा और यदि घोड़ा भी गिर जाय तो घोड़े का हौदा (बैठने का स्थान) आदि अपेक्षया स्थिर कहा जायेगा। 'ग्रामाद् आगच्छति शकटेन' में ग्राम शब्द में जहां अवधिभूत विषय रहने पर अपादान संज्ञा होगी। वहां 'शकट' शब्द में साधकमत भाव रहने के कारण करण संज्ञा होती है। कारकम् किम्–कारक अपादान संज्ञक होता है, अर्थात् जिसका वस्तुतः क्रिया से सम्बन्ध नहीं होता, उस कारक की अपादान संज्ञा नहीं होती यथा–वृक्षस्य पर्णं पतति (वृक्ष के पत्ते गिरते हैं) प्रकृत वाक्य में 'वृक्ष' का पतन क्रिया से सम्बन्ध विवक्षित नहीं है अपितु 'पर्ण' से सम्बन्ध है अतः वृक्ष में सम्बन्ध की विवधा से षष्ठी विभक्ति हुई है। अत एव वृक्ष की अपादान संज्ञा नहीं होती।

वार्तिक–''जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्।'' पापाज्जुगुप्सते, विरमति। धर्मात्

प्रमाद्यति।

अर्थ–निन्दा, विराम तथा प्रमादार्थक धातुओं के कारक की 'अपादान' संज्ञा होती है–यथा–पापात् जुगुप्सते, विरमति। धर्मात् प्रमाद्यति।

जुगुप्सा = घृणा, निन्दा, विराम = रूकना, ठहरना, तथा प्रमादार्थक = असावधानी धातुओं के कारक की अपादान संज्ञा होती है। उसका फल यह होता है कि जुगुप्सा आदि के विषय में पंचमी विभक्ति होती है। एक विषय यहां पर बता देना आवश्यक है कि विश्लेष जैसा भी हो–वह बराबर संयोगपूर्वक होता है। अतः जब भी कहा जाता है कि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु से अलग होती है तभी तात्पर्य होता है कि पहले वह उससे मिली हुई थी।

पापात् जुगुप्सते (पाप से घृणा करता है)।

पापात् विरमति (पाप करने से रूकता है)।

धर्मात् प्रमाद्यति (धर्म से प्रमाद करता है) उक्त तीनों वाक्यों में क्रमशः पाप तथा धर्म में जुगुप्सा, विराम तथा प्रमादार्थक क्रिया के योग में उक्त वार्तिक से अपादान संज्ञा होती है तथा अपादान में पंचमी विभक्ति होती है।

व्याख्या :– महाभाष्यकार पतंजलि के मतानुसार 'कारक' प्रकरण में गौण मुख्य न्याय प्रवृत्त नहीं होता। अतःबुद्धिगत 'अपाय' का आश्रयण करके सूत्र से ही 'अपादान' संज्ञा होती है। तदनुसार उन्होंने 'जुगुप्साविराम'–इस वार्तिक को अनावश्यक बताया है।

57. भीत्रार्थानां भयहेतुः ।2/4/24/।

भयार्थानां त्राणार्थनां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात् । चोराद् बिभेति। चोरात् त्रायते। भयहेतुः किम्? अरण्ये बिभेति त्रायते वा।

अर्थ :– भयार्थक और रक्षणार्थक धातुओं के योग में 'भय' के हेतु (कारण) की अपादान संज्ञा होती है। जैसे– चोरात् त्रायते। 'भयहेतु ऐसा कहने का क्या प्रयोजन हैं? अरण्ये बिभेति त्रायते वा।

व्याख्या – आधिकारिक प्रभाव से 'कारक' शब्द की अनुवृत्ति तथा प्रकरण वश अपादानम् इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। तदनुसार सूत्र से यह अभिव्यजिंत होता है कि 'भयार्थक और रक्षार्थक' धातुओं के प्रयोग में जो भय का हेतु हो वह अपादान संज्ञक होता है। यहां 'भय हेतु' ऐसा शब्द है जो दोनों धातुओं तथा उनके पर्याय के साथ समानरूप से लागू होता है इसका कारण यह है कि त्राणार्थक धातु के मूल में भी भय का ही भाव रहता है। क्योंकि जिससे भय होता है उसी से रक्षा भी की जाती हैं यथ चोराद् बिभेति (चोर से डरता है)

चोराद् त्रायते (चोर से रक्षा करता है) उक्त दोनों उदाहरणों में 'चोर' ही भय और रक्षा का हेतु है। अतः चोर की अपादान संज्ञा होने से पंचमी विभक्ति हुई है।

प्रत्युदारहण 'भय हेतु' में ही पंचमी विभक्ति क्यों होगी? अरण्ये बिभेति त्रायते वा (वन में डरता है या रक्षा करता है) इन उदाहरणों में 'अरण्य' भय का कारण न होने से उसकी अपादान संज्ञा नहीं हुई। यदि अरण्य को ही भय तथा रक्षा का कारण मान लिया जाता तो अरण्याद् बिभेति त्रायते वा (वन से डरता है या रक्षा करता है) यह प्रयोग भी सिद्ध होने लगता। अत एव 'अरण्ये बिभेति त्रायते वा इस प्रत्युदाहरण में 'अरण्य' शब्द में अपादान संज्ञा बाधित होकर अधिकरण संज्ञा होने से सप्तमी विभक्ति हुई है।

58. पराजेरसोढः /1/4/26/

पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोपादानं स्यात्। अध्ययनात् परायजते। ग्लायतीत्यर्थः असोढः किम्? शत्रून् पराजयते। अभिभवतीत्यर्थः ।

अर्थ :– 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'जि = जये' धातु के प्रयोग में 'असह्य' की अपादान संज्ञा होती है। जैसे– अध्ययनात् पराजयते। अर्थात् हार मानता है। सूत्र में 'असोढः' का क्या प्रयोजन है? शत्रून् परायते। अर्थात् हराता है।

व्याख्या :– विशेष स्थिति में 'अपादान' संज्ञा की अनुवृत्ति अपेक्षित है। सूत्रस्थ असोढः पद ''ध्रुवमपायेऽपादानम्'' से 'अपादान' की अनुवृत्ति अपेक्षित है। सूत्रस्थ असोढः पद में

'क्त' प्रत्यय का अर्थ भूतकाल विवक्षित नहीं है, किन्तु 'असह्य' अर्थ विवक्षित है। तदनुसार सूत्रार्थ अभिव्यजिंत होता है कि 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में जो सहन न किया जा सके अर्थात् उस असह्य कारक की 'अपादान' संज्ञा होती है। तथा अपादान में पंचमी विभक्ति होती है।यथा–अध्ययनात् पराजयते (अध्ययन से भागता है अर्थात् अध्ययन के श्रम को सहन नहीं कर सकता) यहाँ अध्ययन ही असह्य विषय है। वस्तुतः यहाँ भी अध्ययन से अनवधानता या पलायन के कारण असह्य विषय है। वस्तुतः यहाँ भी अध्ययन से अनवधानता या पलायन के कारण बुद्धिकल्पित विश्लेष सूचित होता है। अतः उक्त सूत्र में 'अध्ययन' शब्द की अपादान संज्ञा करने के बाद पंचमी विभक्ति होती है। किन्तु यदि असहन होने कारण अध्ययन से विमुख होता है – इस प्रकार अर्थ अपेक्षित हो तो ''ध्रुवमपायेऽपादानम्'' /1/4/24/ से ही अपादान संज्ञा हो सकती थी।

प्रत्युदाहरण – असह्य वस्तु की ही अपादान संज्ञा होती है, ऐसा क्यों कहा गया? अतः 'शत्रून् पराजयते' (शत्रुओं को हराता है) यहाँ असह्य नहीं होने के कारण शत्रु की अपादान संज्ञा नहीं होती है अपितु 'शत्रून्' में कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

59. ''वारणार्थानामीप्सितः'' /1/4/27/

प्रवृत्ति विघातो वारणम् । वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्तितोऽर्थोऽपादानं स्यात् । यवेभ्यो गां वारयति। ईप्सितः किम्? यवेभ्यो गां वायरति क्षेत्रे।

अर्थ – प्रवृत्ति का विघात ही वारण कहलाता है। वारणार्थक धातुओं के प्रयोग में ईप्सित अर्थ की 'अपादान' संज्ञा होती है। यथा–यवेभ्यः गां वारयति। 'ईप्सित' कहने का क्या प्रयोजन है? यवेभ्यः गां वारयिति क्षेत्रे।

व्याख्या – 'अपादानम्' तथा 'कारके' पदों की अनुवृत्ति पूर्व से चल रही है। अतः सूत्रार्थ होगा कि वारणार्थक धातुओं के योग में ईप्सित कारक (जिससे हटाने की चाह होती है) की अपादान संज्ञा होती है–

यथा–यवेभ्यः गां वारयति (यवों से गाय को हटाता है) यहां 'यव' ईप्सित है अतः उक्त सूत्र में 'यव' की अपादान संज्ञा होने से पंचमी विभक्ति होती है। उक्त उदाहरण में वारण क्रिया का इष्ट है। 'यव' क्योंकि उसे ही गाय या बैल के खा जाने से बचाना है। प्रकरणानुसार यहाँ भी 'ईप्सित' और 'ईप्सिततम्' का भेद जानना चाहिए। यदि ऐसा प्रश्न किया जाय कि यहाँ ईप्सित के बदले ईप्सिततम् की क्यों न कहा गया? तो उत्तर में कहा जा सकता है कि 'ईप्सिततम्' में तो 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' के अनुसार कर्मत्व की ही प्राप्ति होती है। वस्तुतः 'गो' ईप्सिततम् है क्योंकि यदि उसे हटा लेता है तो स्वतः 'यव' की रक्षा हो जाती है। इसलिए यद्यपि 'यव' ईप्सित है। क्योंकि रक्षा करनी है उसी की, फिर भी 'गो' ही ईप्सिततम है क्योंकि वारण क्रिया का लक्ष्य वही है। ऐसा अवस्था में यदि 'यव' अपना रहे और 'गो' दूसरे की तो कर्ता 'यव' को बचाना चाहेगा इसलिए 'यव' अपना रहे और 'गो' दूसरे की तो कर्त्ता 'यव' को बचाना चाहेगा इसलिए 'यव' ही ईप्सिततम् होगा और 'गो' ईप्सित। लेकिन ऐसी स्थिति में 'वारण' का वृत्तिगत अर्थ प्रवृत्ति विघात नहीं होगा क्योंकि प्रवृत्ति 'यव' की उसकी निर्जीवता के कारण। इस दृष्टि में यहाँ वारण का अर्थ 'प्रवृत्ति विघात' नहीं लेकर केवल 'हटाना' ही लेना पड़ेगा। अतः कहा जाता है कि विवक्षावशात् कारकाणि भवन्ति–कारक का होना बहुत कुछ वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है, जिस दृष्टि से वह शब्दों का व्यवहार करें, यह वक्ता की स्वतन्त्रता है।प्रत्युदाहरण–ईप्सितः किम्? यहां किससे किसी को हटाना अभीष्ट होता है, वही अपादान होता है ऐसा क्यों गया है? अत एव 'यवेभ्यो' गां वारयति क्षेत्रे' (खेत में गाय को यव से हटाता है) यहाँ क्षेत्र अभीष्ट नहीं है बल्कि 'यव' है। अतः क्षेत्र की अपादान संज्ञा न होकर पंचमी विभक्ति नहीं हुई। आधार होने से अधिकरण में सप्तमी विभक्ति हुई हैं।

60. ''अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति'' /1/4/28/ व्यवधाने सति यत्कृर्तकस्य आत्मनो दर्शनस्य अभावमिच्छति तदपादानं स्यात्। मातुर्निलीयते कृष्णः। अन्तर्धौ किम्? चौरान् न

दिदृक्षते। इच्छति ग्रहणं किम्? अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात् देवदत्ताद् यज्ञदत्तो निलीयते।

अर्थ – 'छिपाना' अर्थ में जिससे अपने आप को कर्त्ता छिपाना चाहता है, उसकी 'अपादान' संज्ञा होती है – जैसे मातुः निलीयते कृष्णः । 'अन्तर्धौ' का क्या प्रयोजन है? चौरान् न दिदृक्षते। 'इच्छति' पद का क्या प्रयोजन है? अदर्शन या छिपने की इच्छा होने पर यदि दिखाई पड़ जाये तो भी अपादान संज्ञा होती है। देवदत्ताद् यज्ञदत्तः निलीयते।
व्याख्या – 'अपादानम्' तथा 'कारके' उक्त दोनों पदों की अनुवृत्ति रहने से सूत्रार्थ होगा कि व्यवधान होने के कारण जिससे कोई व्यक्ति छिपना चाहता हो, उस कारण की 'अपादान' संज्ञा होती है।
यथा–मातुः निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपता है) यहाँ व्यवधान अर्थ वाली 'ली' धातु के योग में 'मातृ' शब्द की 'अपादान' संज्ञा होने के कारण पंचमी विभक्ति **हुई।**
प्रत्युदाहरण– अन्तर्धौ किम् ? सूत्र में व्यवधान होने पर ऐसा क्यों कहा गया ? यदि सूत्र में 'अन्तर्धौ' पद नहीं होता तो व्यवधान के न होने पर केवल 'छिपना' मात्र अर्थ में ही 'अपादान' संज्ञा हो जाती। वह नहीं होवें, इसके लिए 'अन्तर्धौ' पद का समावेश किया गया है। अत एव 'चौरान् न दिदृक्षते' (चोर मुझे न देख लेवे इस विचार से चौरों को नहीं देखना चाहता) यहां भी चोर की 'अपादान' संज्ञा नहीं होती क्योंकि यहां व्यवधान निमित्तक छिपने का भाव नहीं है।
इच्छति ग्रहणं किम्–सूत्र में इच्छति (चाहता है) क्रियापद का ग्रहण क्यों किया गया? इसलिए कि यदि किसी की छिपने की इच्छा है तो उसे देख लिया जाने पर भी अपादान संज्ञा हो ही जाती है– यथा–देवदत्तात् यज्ञदत्तो निलीयते–देवदत्त ये यज्ञदत्त छिपता है।
61. ''आख्यातोपयोगे'' /1/4/12/

नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता अपादानसंज्ञः स्यात्। उपाध्यायादधीते। उपयोगे किम्? नटस्य गाथां श्रृणोति।
अर्थ :– नियमपूर्वक विद्याध्ययन में पढ़ाने वाले वक्ता की 'अपादान' संज्ञा होती है। जैसे–उपाध्यायात् अधीते। 'उपयोगे' का क्या प्रयोजन है? नटस्य गाथां श्रृणोति।
व्याख्या :–गुरूमुख से नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करना 'उपयोग' कहलाता है। नियमपूर्वक अध्ययन करना अर्थ में उपयोग शब्द रूढ है। सूत्र में आख्याता शब्द का अर्थ है–उपदेष्टा, उक्ता, ध्यापयिता या उपाध्याय। तदनुसार नियम पूर्वक विद्याध्ययन में पढ़ाने वाले का अपादान संज्ञा होती है।
यथा–उपाध्यायात् अधीते (उपाध्याय से पढ़ता है) यहां शिष्य उपाध्याय के समीप रहकर नियम पूर्वक विद्या पढ़ता है, अतः वक्ता उपाध्याय की उक्त सूत्र से अपादान संज्ञा होने पर पंचमी विभक्ति होती है।
प्रत्युदाहरण– 'उपयोगे किम्?' जहां नियमपूर्वक विद्या पढ़ी जाती है वहीं वक्ता की अपादान संज्ञा होती है, ऐसा क्यों कहा गया ? इसलिए कि 'नटस्य' गाथां श्रृणोति' (नट की गाथा को सुनता है) यहां यदा कदा गाथा श्रवण में 'नट' की अपादान संज्ञा नहीं होती अतः पंचमी विभक्ति न होकर षष्ठी विभक्ति हुई है।
62. जनिकर्तुः प्रकृतिः /1/4/30 ।। जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्। ब्राह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।

अर्थ :– उत्पन्न होने वाले का हेतु = कारण अपदान संज्ञक होता है।

व्याख्या :– जननं जनिरूत्पत्तिः। जनि का अर्थ उत्पत्ति और सूत्र में उत्पत्ति कर्त्ता का अर्थ लिया गया है। उत्पत्ति' का आश्रय भूत। 'प्रकृति' का साधारण अर्थ 'हेतु' लिया गया है। इस प्रकार उत्पत्ति के आश्रय भूत का विषय जो 'हेतु' रहे उसकी अपादान संज्ञा होती है। अर्थात्: यदि कोई पदार्थ उत्पन्न हो तो उसकी उत्पत्ति का जो 'हेतु' हो (अर्थात् जहाँ से वह उत्पन्न हुआ) तो उसी में पंचमी विभक्ति होती है।

यथा–ब्राह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा से प्रजा या संसार उत्पन्न होता है) यहाँ यदि 'जनि' से जन् मात्र का बोध समझा जाय तो अर्थ सरल हो जाता है 'जन्' के कर्त्ता का हेतु अपादान होता है। इस प्रकार उक्त सूत्र से 'ब्रह्मा' शब्द में प्रपूर्वक सन् के कर्त्ता 'प्रजा' के प्रकृतिभूत होने के कारण अपादान संज्ञा होने पर पंचमी विभक्ति होती है।

63. 'भूवः प्रभवः' / 1 / 4 / 31

भवनं भूः । भूकर्तुः प्रभवस्तथा। हिमावतो गंगा प्रभवति। 'तत्र प्रकाशत'इत्यर्थः।

अर्थ – शब्द का अर्थ अर्थात् प्रकट होना (भू का षष्ठी एकवचन भूवः) प्रकट होने के कर्त्ता का मूल स्थल 'अपादान' कारक होता है।

व्याख्या – उक्त सूत्र में वृत्तिकार की 'भवनं भूः' व्याख्या से स्पष्ट है कि उनका आशय 'भू' का संज्ञा रूप में ग्रहण करना है। तदनुसार 'भू' का आश्रय भूत 'प्रभव' अपादान संज्ञक होता है। प्रभृवृत्ति प्रथमं प्रकाशते अस्मिन्निति प्रभवः । 'प्रभव' उस स्थानादि विषय को कहते हैं जहां पहले कुछ दिखाई देवें। अतः जहां कुछ होना हो वहां जिस स्थान से कुछ होता हुआ दिखाई देंवे। उसकी अपादान संज्ञा होती है।

यथा – हिमवतः गंगा प्रभवति (हिमालय से गंगा निकलती है) यहां पर 'भू' धातु का कर्ता गंगा है उसका प्रभव या उत्पत्ति स्थान हिमालय है अतः हिमवत् की उक्त सूत्र से अपादान संज्ञा करने पर पंचमी विभक्ति हुई है।

अतिविशेष :– वस्तुतः 'प्रभव' का भी अर्थ उत्पत्ति ही है लेकिन इस सूत्र की आवश्यकता सिद्ध करने के लिए प्रायः इसका विशेष अर्थ कहा गया है। इसके अनुसार जहाँ पूर्व सूत्र में 'मूल उत्पत्ति स्थान' में ही अपादान संज्ञा होती है वहां इस सूत्र में केवल 'प्रकाशन स्थान में' अपादान संज्ञा होती है। इस प्रकार पूर्व सूत्रस्थ उदाहरण में ब्रह्मा प्रजा की उत्पत्ति के आदि है किन्तु प्रस्तुत सूत्र में 'हिमवान्' गंगा की उत्पत्ति का आदि कारण नहीं। वस्तुतः गंगा मानसरोवर से निकलती है। वह केवल हिमालय पर उत्पन्न होती दिखाई पड़ती है। इस प्रकार आपाततः कहीं उत्पन्न होने और कहीं से उत्पन्न होते दीख पड़ने में अन्तर है। पूर्व सूत्र की तरह यहाँ भी 'भू' को संज्ञा मानने की अपेक्षा धातु मानना अधिक सुविधायक प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में 'भू' के कर्त्ता का 'प्रभव' ही अपादान होगा। अतः सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर 'जनी' तथा 'भू' इन दोनों धातुओं के अर्थ में अन्तर विदित होता है। तदनुसार जो कभी नहीं था उसका प्रादूर्भाव 'जन्' का वाच्यार्थ है। तथा जो वस्तु पहले थी उसका प्रथम प्रकट होना 'प्रभव' है। अतः 'जनिकर्त्ता' और 'भूकर्त्ता' इन दोनों अर्थो में अन्तर होने से उपर्युक्त दोनों सूत्रों का विषय भिन्न–भिन्न है।

वार्तिक–''ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च''–प्रासादात् प्रेक्षते। आसनात् प्रेक्षते। प्रासादमारूह्य, आसने उपविश्व प्रेक्षते इत्यर्थः। श्वसुराज्जिह्रेति। श्वसुरं वीक्ष्येत्यर्थः। ल्यप् प्रत्यय लगाकर जहां लोप हो गया है वहां ल्यबन्त के साथ जो लोप के पूर्व कर्म या अधिकरण हो उसमें पंचमी विभक्ति होती है। ल्यप् के लोप होने का तात्पर्य ल्यबन्त का लोप होना है। ल्यबन्त के योग में कर्मत्वविवक्षा और अधिकरणत्व विवक्षा होने पर क्रमशः विशेष–विशेष धातु के योग में विशेष–विशेष प्रसंग में द्वितीया और सप्तमी विभक्तियां होती है फिर यदि ल्यबन्त को लोप हो जाता है तो उसके योग में जिस शब्द में द्वितीया या सप्तमी विभक्ति लगी रहती है, उसमें पंचमी विभक्ति हो जाती है।

प्रासादात् प्रेक्षते (महल के ऊपर चढ़कर देखता है) 'प्रासादम् आरूह्य प्रेक्षते' यहाँ आरूह्य ल्यप् प्रत्ययान्त का प्रयोग नहीं, उसका कर्म 'प्रासाद' उपर्युक्त वार्तिक से 'प्रासाद' में पंचमी विभक्ति होती है।आसनात् प्रेक्षते अर्थात् **आसने उपविश्य प्रेक्षते** (आसन पर बैठकर देखता है) यहाँ आसन 'उपविश्य' क्रिया का आधार है। अतः आसन में उक्त वार्तिक से पंचमी विभक्ति होती है।

श्वसुराज्जिह्रेति अर्थात् श्वसुरं वीक्ष्य (श्वसुर को देखकर लज्जा करती है) यहां वीक्ष्य ल्यप् प्रत्ययान्त क्रिया है, उसके लुप्त होने पर उसके कर्म 'श्वसुर' में पंचमी विभक्ति होती है।

वार्तिक – गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् । कस्यात् त्वम्? नद्याः । जिस क्रिया का वाक्य में प्रयोग नहीं होता किन्तु प्रकरण आदि से जो प्रतीयमान हो, उसे गम्यमान क्रिया कहा जाता है। इस प्रकार की गम्यान क्रिया भी कारक विभक्तियों का निमित्त बनती है।

यथा–कस्यात् त्वम् ? (तुम कहां से आये हो?) नद्याः (नदी से) यहां प्रकरण आदि से आगमन क्रिया का बोध होता है। उसके निमित्त से 'कस्मात्' और 'नद्याः' में उक्त वार्तिक से पंचमी विभक्ति होती है।

वार्तिक ''यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पंचमी''।

वार्तिक **''**तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौः''।।

वार्तिक ''कालात्सप्तमी च वक्तव्या'' । वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे।जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान की दूरी या किसी दूसरे समय का अन्तर बताया जाय, उसमें पंचमी विभक्ति होती है।

स्थान की दूरी बताने वाले शब्द में प्रथमा या सप्तमी विभक्ति होती है। समय का अन्तर बताने वाले शब्द में सप्तमी विभक्ति होती है। अन्य शब्दों में नापे गये काल में सप्तमी विभक्ति होती है और नापे गये मार्ग में प्रथमा या सप्तमी विभिक्ती होती है।

वनाद् ग्रामः योजनं योजने वा (वन से ग्राम एक योजन है) यहाँ 'वन' से 'ग्राम' की दूरी दिखाई गई है। अतः ''यतश्चाध्व–''वार्तिक से मार्गवाची शब्द 'योजन' में प्रथमा या सप्तमी विभिक्ति हुई।

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (कार्तिक की पूर्तिमा से मार्गशीर्ष पूर्णिमा एक मास में होती है) यहाँ 'कार्तिक' से 'आग्रहायणी' का अन्तर बताया गया है, अतः यहाँ ''कालात् सप्तमी–'' वार्तिक से अन्तर बताने वाले 'मास' में सप्तमी विभक्ति होती है।

64. ''अन्यारादिरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्त/2/3/29/

एतैर्योगे पंचमी स्यात। अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहणं प्रपंचार्थम्। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्। आराद् वनात्। ऋते कृष्णात्। पूर्वो ग्रामात्। दिशि दृष्टः शब्दो दिक् शब्दः। तेन सम्प्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति। चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः अवयववाचियोगे तु न। 'तस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि– ''षष्ठ्यतसर्थ–''2/3/30 इति षष्ठीं बाधितुं पृथग्ग्रहणम्। प्राक्–प्रत्यग्वा ग्रामात्। आच्–दक्षिणा ग्रामात्। आहि–दक्षिणाहि ग्रामात् ।

अर्थ :– अन्यः = भिन्न, आरात् = निकट या दूर, इतर = भिन्न, ऋते = बिना, दिशावाचक शब्द, अंचु धातु से बना हुआ है उत्तर पद जिनमें ऐसे प्राक्, प्रत्यक् शब्द, तद्धितान्त आच् या आहि प्रत्ययान्त दिग्वाची शब्द–यथा–दक्षिणा, उत्तरा, दक्षिणाहि, उत्तराहि आदि शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति होती है।

व्याख्या– सूत्र में अन्य शब्द से भिन्न अर्थ वाले सभी शब्दों (भिन्न, पर इतर) आदि का ग्रहण होता है। 'इतर' शब्द भी अन्यार्थक है, उसका पृथक् ग्रहण करना दिग्दर्शन मात्र के लिए किया गया है।

अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् (कृष्ण से भिन्न) यहां उक्त सूत्र से अन्य, भिन्न या इतर के योग में दूसरा अर्थ होने या 'कृष्ण' में पंचमी हुई है। आरात् वनात् (वन से दूर या समीप) यहाँ आरात् (दूर या निकट) अव्यय के योग में 'वन' में पंचमी विभक्ति हुई है।

ऋते कृष्णात् (कृष्ण के बिना, कृष्ण को छोड़कर) यहां ऋते (बिना) के योग में 'कृष्ण' में पंचमी विभक्ति हुई है।

पूर्वः ग्रामात् (गांव से पूर्व) यहाँ दिशा का निर्देश करने वाले शब्द 'पूर्व' के योग में ग्राम में पंचमी विभक्ति हुई है। इसी सन्दर्भ में प्रकृत सूत्र में स्थित 'दिक्शब्द' की व्याख्या की जा रही है। इस शब्द का विग्रह 'दिशि दृष्टः शब्दः' है। मध्यमपदलोपी समास होने से 'दृष्ट' शब्द का लोप हो गया है। तदनुसार 'दिक्शब्द' का अभीष्ट अर्थ होगा–दिशावाची प्रचलित पूर्वादि शब्द। जब दिशा बताने वाले शब्द का क्रम बताने के लिए समयवाची शब्दों के साथ आते है तो वहां भी पंचमी होती है।

चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः (चैत्र से पूर्व फाल्गुन आता है) यहां कालवाचक 'पूर्व' शब्द के योग

में चैत्र में पंचमी विभक्ति हुई है। यदि दिशावाचक शब्द से किसी अवयवी के अवयव का बोध होता है तो पंचमी विभिक्ति नहीं होगी। पाणिनि के सूत्र ''तस्य परमाम्रेडितम्'' में 'पर' के योग में 'तत्' में पंचमी न होकर षष्ठी विभक्ति हुई है।

पूर्व कायस्य (शरीर का अगला भाग) इस वाक्य में पूर्व अवयव या अंग का बोध कराने के लिए प्रयुक्त हुआ है अतः 'काय' में पंचमी न होकर षष्ठी हुई है।

जिन शब्दों में 'अंचु' धातु उत्तर पद है वे शब्द है– प्राक्, प्रत्यक, उदीच आदि। ये दिशा बोधक शब्द हैं और इनके योग में पंचमी विभक्ति होती है।

प्राक् (प्र + अंच्), प्रत्यक् (प्रति + अंच्) वा ग्रामात् (गांवके पूर्व या पश्चिम में) यहाँ अंचु उत्तर पद युक्त प्राक् एवं प्रत्यक् शब्दों के योग में 'ग्राम' में पंचमी विभक्ति हुई है।?आच् का उदाहरण –

दक्षिणा ग्रामात् (दक्षिण + आच् = गांव से दक्षिण की ओर) यहां 'दक्षिणा' आच् प्रत्ययान्त है अतः आच् प्रत्ययान्त के योग में 'ग्राम' में पंचमी विभक्ति हुई है।

आहि प्रत्यय के योग में पंचमी का उदाहरण –

दक्षिणाहि ग्रामात् (गावं से दूर दक्षिण की ओर) यहाँ दक्षिण + आहि के योग में 'ग्राम' में पंचमी विभक्ति हुई है। आच् एवं आहि प्रत्ययान्त शब्द दिशावाची होने पर भी ''षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन'' सूत्र से प्राप्त षष्ठी का बाध करने के लिए इन दोनों का यहाँ पृथक् ग्रहण किया गया है।

'अपादाने पंचमी' 2/3/28।।

इति सूत्रे कार्तिक्या प्रभृतीति भाष्यप्रयोगात् प्रभृत्यर्थयोगे पंचमी। भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः ।

अर्थ– 'अपादाने पंचमी' इस सूत्र पर 'कार्तिक्याः प्रभृति' इस भाष्य के प्रयोग से सूचित होता है कि प्रभृति अर्थवाले शब्दों के यागे में पंचमी विभक्ति होती है। प्रभृति का अर्थ उससे लेकर (ततः प्रभृति) किया है। ''प्रभृति'' अव्यय अवधिरूप अर्थ का द्योतक है।)

भवात् प्रभृति आरभ्यो वा सेव्यो हरिः (जन्म से लेकर आमरण हरि की सेवा करनी चाहिये) यहाँ प्रभृति अव्यय के योग में 'भव' में पंचमी विभक्ति होती है।

अपपरिबहिरञ्च्वः पंचम्याः – इति समास विधानाज्ज्ञापकाद् बहिर्योगे पंचमी। ग्रामाद् बहिः।'अपपरि'' सूत्र से बहिः पद का पंचम्यन्त के साथ समास करने से यह सूचित होता है कि 'बहि' के योग में पंचमी विभक्ति होती है।

ग्रामाद् बहिः (ग्राम के बहर) यहां 'बहिः' शब्द के योग में 'ग्राम' शब्द से पंचमी विभक्ति का विधान नहीं किया गया तथापि अपपरिबहि सूत्र में बहिः शब्द का पंचम्यन्त् के साथ समास किया गया है। अतः स्पष्ट होता है कि 'बहिः' के योग में पंचमी विभक्ति होती है।

65.अपपरी वर्जने/1/4/88।।

एतौ वर्जने कर्मप्रवचनीयौ स्तः।

अर्थ :– 'अप' और 'परि' ये दोनों अव्यय वर्जन = निषेध अर्थ में 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञक होते हैं। कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने का फल आगे पंचमी विभक्ति होना बताया जायेगा।

66. **''आङ् मर्यादावचने''/1/4/89।।**

आङ् मर्यादायामुक्तसंज्ञः स्यात्। वचन ग्रहणादभिविधावपि।

अर्थ :– 'मर्यादा' में आङ् की भी 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा होती है। वचन ग्रहण करने से अभिविधि अर्थ भी गृहीत हो जाता है।

व्याख्या :– मर्यादा अर्थ में 'आङ्' उपसर्ग की भी कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। आङ् = मर्यादायात् इस कथन से ही उपुर्यक्त अर्थ निकल जाता फिर 'वचन' शब्द अधिक सूत्र में क्यों कहा गया? इसका अभिप्राय है कि 'अभिविधि' में भी आङ् की 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा इेष्ट है मर्यादा किसी अवधि को कहते हैं तथा 'अभिविधि' भी मर्यादा ही कहलाती है। जहां से किसी बात की अवधि निर्धारित की जाय उसको लेकर अभिविधि होती है तथा मर्यादा उस अवधि से पूर्व समझी जाती है। मर्यादा = तेन विनेति मर्यादा, अभिविधि = तेन सहेत्याभिविधिः।

आ पाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः (पाटलिपुत्र तक वर्षा हुई) प्रकृत वाक्य का मर्यादा अर्थ करने पर यह अभिव्यंजित होता है कि 'पाटलिपुत्र' से पूर्व = पहले वर्षा हुई। यदि इसे अभिविधि परक माना जाय तो अर्थ होगा कि पाटलिपुत्र को लेकर वर्षा हुई अर्थात् पाटलिपुत्र में भी वर्षा हुई। यहाँ उक्त नियम से 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा होने से 'आ' के योग में 'पंचमी' विभक्ति हुई है।

67. ''पंचम्यपाङ् परिभिः'' 2/3/10।।

एतै कर्मप्रवचनीयैर्योगे पंचमी स्यात्। अप हरेः, परि हरेः, संसारः। परिरत्र वर्जने। लक्षणादौ तु हरिं परि। आमुक्तेः संसारः । आ सकलाद् ब्रह्म।

अर्थः—इन कर्मप्रवचनीयों के योग में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—अपहरेः, परिः हरेः संसारः। यहां परि शब्द निषेधार्थक है। लक्षणादि अर्थो में द्वितीया विभक्ति होती है— हरिं परि।

व्याख्या :— यह ''कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया'' इस सूत्र से 'कर्मप्रवचनीय' पद की अनुवृत्ति आ रही है। तदनुसार सूत्रार्थ होता है कि 'कर्मप्रवचनीयसंज्ञक' अप, परि तथा आङ् के योग में पंचमी विभक्ति होती है।

अप हरेः संसारः, परि हरेः संसारः (हरि को छोड़कर सम्पूर्ण संसार जन्म मरण का चक्र है।) यहां 'अप' तथा 'परि' वर्जन अर्थ में है अतः इनकी कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से इनके योग में 'हरि' शब्द में उक्त सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है।

लक्षणादौ'—जहां 'परि' शब्द लक्षण, इत्थंभूताख्यान आदि अर्थ में होगा वहाँ तो इसकी ''लक्षणेत्थंभूताख्यान''— आदि सूत्र से कर्म प्रवयनीय संज्ञा होने पर इसके योग में 'हरि' शब्द में 'कर्म प्रवचनीय युक्ते द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति योगी—यथा हरि परि (हरि विषयक भक्ति से युक्त)। आ मुक्तेः संसारः (मुक्ति तक संसार है— अर्थात् मुक्ति से पूर्व) यहां आङ् मुक्ति मर्यादा है। अतः यहाँ 'आङ्' की उक्त सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने पर 'मुक्ति' में पंचमी विभक्ति होती है। आसकलाद ब्रह्म (ब्रह्म सबमें व्याप्त है अर्थात् सबको व्याप्त करके ब्रह्म है। यहां आङ् 'अभिविधि' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुओं में ब्रह्म ही है। अतः यहां आङ् की उक्त सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने पर इसके योग में 'सकल' शब्द में पंचमी विभक्ति होगी।

68. प्रतिः प्रतिनिधि प्रतिदानयोः 1/4/92।।

एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसंज्ञः स्यात्।

अर्थ :— इन अर्थो में 'प्रति' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या :— पुनः 'प्रतिनिधि' और 'प्रतिदान' अर्थो में 'प्रति' उपसर्ग की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। वस्तुतः किसी के सदृश को उसका प्रतिनिधि कहते हैं तथा 'प्रदत्त' का प्रति निर्यातन 'प्रतिदान' कहलाता है। अर्थात् मुख्य के समान गुणवाला व्यक्ति 'प्रतिनिधि' तथा वस्तु का विनिमय 'प्रतिदान' कहलाता है।

69.प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात् /2/3/11।।

अत्र कर्म प्रवचनीयै— र्योगे पंचमी स्यात्। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् ।

अर्थ — इस विषय में जब 'प्रति' का प्रयोग 'प्रतिनिधि' एवं 'प्रतिदान' के अर्थ में होता है तो 'प्रति' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—प्रद्यम्नः कृष्णात् प्रति। तिलेभ्यः प्रति यच्छति माषान् ।

व्याख्या — इस सूत्र के अनुसार जिसके कोई 'प्रतिनिधि' हो तथा जिससे दान के बदले 'प्रतिदिन' किया जाय उसमें उपर्युक्त सूत्र से विहित कर्म प्रवचनीय 'प्रति' के योग में पंचमी विभक्ति होती है। इस प्रकार उदाहरणों में प्रति क्रमशः 'प्रतिनिधित्व' तथा 'प्रतिदानत्व' का द्योतक है। दूसरे शब्दों में, 'प्रति' के योग में प्राप्त पंचमी का अर्थ प्रथम उदाहरण में 'सादृश्य' और द्वितीय में 'प्रतिदान' है।

यथा—**प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति** (प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि है) यहाँ कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति कृष्ण का प्रतिनिधित्व प्रकट करता है, अतः कृष्ण में पंचमी विभक्ति होती है।

तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् (तिलों से उड़दो को बदलता है) यहाँ तिलों से उड़द बदले जाते हैं इस प्रतिदान को 'प्रति' शब्द द्योतित करता है अतः प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है अतः इसके योग में पंचमी विभक्ति होती है।

अतिविशेष – 'कृष्णस्य प्रतिनिधिः' इत्यादि प्रयोगों की साधुता का निर्वाह 'ज्ञापक सिद्धं न सर्वत्र' का अनुसरण किया गया है। वस्तुतः इस सूत्र में प्रयुक्त 'यस्मात्' शब्द के प्रयोग से ऐसा स्पष्ट प्रतिभाषित होता है। अतः यदि प्रतिनिधि तथा 'प्रतिदान' शब्द के योग में पंचमी होगी तो 'प्रतिनिधि' या 'प्रतिदान' अर्थ वाले 'प्रति' के योग में ही होगी।

70. अकर्तर्यृणे पंचमी /2/3/24।।

कर्तृवर्जितं यद् ऋणं हेतु भूतं ततः पंचमी स्यात्। शताद् बद्धः 'अकर्तरि किम् ? शतेन बन्धितः ।'

अर्थ – कर्तृ संज्ञा से रहित ऋण यदि हेतु हो, तो उस ऋण से पंचमी विभक्ति होती है। जैसे–शताद् बद्धः । अकर्तरि का क्या प्रयोजन है? शतेन बन्धितः ।

विशेष – जो ऋणवाची शब्द कर्त्ता के अर्थ में नहीं हो एवं हेतुभूत हो उसमें पंचमी विभक्ति होती है। अर्थात् किसी वाक्य प्रयोग में यदि कर्त्ता प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में कथित नहीं हो और ऋण ही बन्धनादि क्रिया का हेतु हो तो ऋणवाची शब्द में पंचमी विभक्ति होगी।

शताद् बद्धः (सौ रूपये के ऋण से बंध गया है) यहां 'शत' परिमित ऋण का बोध होता है जो बन्धन क्रिया का हेतु भूत है और कर्तृवर्जित है। अत एवं ऋणवाची 'शत्' शब्द में उक्त सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है।

अकर्तरि किम् ?– कर्त्ता से भिन्न में ही पंचमी विभक्ति क्यों होगी? सूत्र में यदि 'अकर्तरि' न रहा होता तो प्रयोजक कर्त्ता को भी पंचमी विभक्ति हो जाती। अकर्तरि (कर्तृ भिन्न) पद रखने पर वह नहीं होती। अतः **शतेन बन्धितः** (सौ रूपये ने ऋणदाता से कर्जदार को बँधवा दिया।) यहाँ शतेन बन्धितः अधमर्ण उत्तमर्णेन इत्यर्थः। 'बन्धितः' शब्द प्रेरणार्थक 'बन्ध्' धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय से बना है 'अधमर्ण उत्तमर्णेन बद्धः' (कर्जदार को ऋणदाता ने बांधा) यह सामान्य अवस्था (अणिजन्त) का रूप होगा। यहाँ 'शत' की कर्तृ संज्ञा ''तत्प्रयोजको हेतुश्च''सूत्र से हो जाने पर उक्त सूत्र में पंचमी विभक्ति नहीं होती है।

71. ''विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्'' 2/3/25।।

गुणे हेतावस्त्रीलिंग्ङे पंचमी वा स्यात्। जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः। गुणे किम्? धनेन कुलम् । अस्त्रियां किम् ? बुद्धया मुक्तः । विभाषेति योगविभागाद् गुणे स्त्रियां च क्वचित्। धूमादग्निमान् । नास्ति घटोऽनुपलब्धेः ।

अर्थ – जब हेतु गुणवाचक हो, किन्तु स्त्रीलिंग न हो, तब उस हेतु से विकल्प से पंचमी विभक्ति होती है। अर्थात् तृतीया विभक्ति भी होती है।जैसे–जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः 'गुणे' का क्या प्रयोजन है? धनेन कुलम्। 'अस्त्रियाम्' का क्या प्रयोजन है? बुद्धया मुक्तः 'विभाषा' का योग विभाग करने से गुणवाचक शब्दों में भिन्न तथा स्त्रीलिंग में होने पर कहीं कहीं 'पंचमी' होती है। **जैसे–धूमात अग्निमात् । नास्ति घटः अनुपलब्धेः** ।

व्याख्या – यहाँ विशेष परिस्थितिवश विकल्प की व्यवस्था की जा रही है। तदनुसार पूर्व सूत्र से पंचमी एवं 'हेतौ' से हेतु की अनुवृत्ति करने के कारण सूत्रार्थ अभिव्यंजित है कि स्त्रीलिंग को छोड़कर अर्थात् पुर्लिंग और नपुसंकलिंग में वर्तमान जो हेतुवाची गुण बोधक शब्द, उसमें विकल्प से पंचमी विभक्ति होती है। अतः पक्ष में हेतौ से तृतीया विभक्ति भी होगी।

जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः (मूर्खता के कारण बंधन में फंस गया) यहाँ जाड्य (मूर्खता) शब्द बन्धन का हेतु है और स्त्रीलिंग वाची भी नहीं है, अतः उक्त सूत्र से 'जाड्य' में पंचमी विभक्ति हुई है।

प्रत्युदाहरण–गुणे किम्? गुण वाचक होने पर ही क्यों? **''धनेन कुलम्''** (धन से कुल प्रतिष्ठित है) यहाँ धन हेतु भी है, अस्त्रीलिंग भी है, किन्तु गुणवाचकः नहीं है, अतः पंचमी विभक्ति नहीं हुई है।

अस्त्रियां किम्? स्त्रीलिंग से भिन्न शब्द में ही क्यों? बुद्धया मुक्तः (बुद्धि के कारण मुक्त हुआ) यहाँ 'बुद्धि' में गुण भी है, और मुक्ति का हेतु भी है, किन्तु स्त्रीलिंग शब्द है अतः पंचमी न होकर तृतीया हुई है। 'विभाषा इति योग विभागात्' – ''विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्'' इस सूत्र में विभाग करके 'विभाषा' एक सूत्र स्वीकार कर लेते हैं। उसमें 'हेतौ' एवं पंचमी विभक्ति होती है – इसका फल निम्न होगा –

कहीं कहीं गुण वाचक शब्द न होने पर भी पंचमी विभक्ति हो जाती है– यथा– धूमाद् अग्निमान् (धूआं होने से अग्नि वाला है) यहाँ ''धूम' गुणवाचक नहीं है तथापि पंचमी विभक्ति होती है। कहीं–कहीं स्त्रीलिंग शब्दों के योग में भी हेतु में भी पंचमी विभक्ति होती हैं।

यथा–**नास्ति घटः अनुपलब्धेः** (उपलब्धि न होने से घट नहीं है) यहा 'अनुपलब्धि' शब्द स्त्रीलिंग है तथापि इससे पंचमी विभक्ति हो जाती है।

72.'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्'' 2/3/32।।

एभिर्योगे तृतीया स्यात् पंचमी द्वितीये च। अन्यतरस्या ग्रहणं समुच्चयार्थम् । पंचमी द्वितीये चानुवर्तते। पृथग् रामेण रामाद् रामं वा। एवं विना नाना।

अर्थ – पृथक् विना और नाना अव्ययों के योग में तृतीया, पंचमी तथा द्वितीया विभक्ति होती है। 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण समुच्चयार्थक है। पूर्व सूत्रों से 'पंचमी' और 'द्वितीया' की अनुवृत्ति भी होती है। जैसे– पृथक् रामेण, रामं रामात् वा। इसी प्रकार 'विना' और 'नाना' के साथ भी होगी।

व्याख्या – पृथक्' 'विना' और 'नाना' अव्यय शब्दों के योग में पंचमी तथा द्वितीया विभक्तियां तृतीया के विकल्प में होती है। अष्टाध्यायी में 'अपादाने पंचमी 2/3/28 ।।, 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन, /2/3/30।।, एनपा द्वितीया' /2/3/31।।, तथा इसके बाद यह सूत्र– 'पृथग्विना' – ही क्रम से है। इनमें अस्वरितत्व के कारण षष्ठी की अनुवृत्ति नहीं होती, अतः पंचमी की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुति के कारण होती है और द्वितीया संनिहित ही है। इस सूत्र में प्राप्त पृथक् 'विना' और 'नाना' सभी वर्जनार्थक हैं और अव्यय हैं। लेकिन तब सभी का उपादान एक ही के अन्तर्गत क्यों किया गया? वस्तुतः ऐसा करने से इनके अतिरिक्त भी अन्य पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण हो जाता। यह अभीष्ट नहीं था। लेकिन तत्त्व बोधिनीकार के अनुसार 'नाना' प्रत्यय से निष्पन्न 'विना' और 'नाना' शब्दों का ग्रहण किसी एक के अन्तर्गत हो सकता था। वस्तुतः वर्जनार्थक 'नाना' शब्दों का ग्रहण किसी एक के अन्तर्गत हो सकता था। वस्तुतः वर्जनार्थक 'नाना' शब्द का प्रयोग दुर्लभ है। 'नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा' (नारी के बिना जीवन निष्फल है) इसका एक प्रचलित प्रयोग उपलब्ध है। पुनः व्यवहार में 'पृथक्' के योग से पंचमी का अधिक, तृतीया का कम तथा द्वितीया का नहीं के बराबर प्रयोग मिलता है।

यथा–**पृथक् रामेण, रामाद्, रामं वा** (राम से भिन्न, राम के बिना) यहां पृथक् के योग में राम में विकल्प से तृतीया, पंचमी तथा द्वितीया हुई है। इसी प्रकार विना रामेण, रामात्, रामंवा तथा 'नाना' रामेण, रामात्, रामं वा में भी तीनों विभक्तियां होंगी।'

73. ''करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य'' 2/3/33

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीया पंचम्यौ स्तः । स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः । द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण हतः ।

अर्थ–स्तोक (थोड़ा), अल्प, कृच्छ्र तथा कतिपय, इन चार शब्दों के बाद तृतीया और पंचमी विभक्ति होती है, जब वे द्रव्य का संकेत नहीं करते और 'करण' की तरह प्रयुक्त होते हैं। ऐसी स्थिति में ये शब्द विशेषण न होकर क्रिया विशेषण होते हैं।

व्याख्या :– यहां 'अन्यतरस्याम्' एवं पंचमी की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आ रही है। अतः इस सूत्र का विधेय करण कारक अर्थ में पंचमी विभक्ति है। फलस्वरूप यह सूत्र कारक विभक्ति का प्रतिपादक है। सूत्र में स्थित 'कतिपयस्य' पद पंचमी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा वृत्ति में 'एभ्यः' पद का परामर्शक है। इस प्रकार सूत्रार्थ अभिव्यंजित होगा कि 'स्तोक (थोंड़ा), अल्न (थोड़ा), कृच्छ्र (कठिनता) तथा कतिपय (कुछ), इन अद्रव्य वाचक (द्रव्य भिन्न) शब्दों के योग में करण कारक में तृतीया और पंचमी विभक्ति होती है। ये

अद्रव्य वाचक शब्द क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते है।'

यथा–स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः (सरलता से छूट गया) यहां 'स्तोक' शब्द किसी द्रव्य का विशेषण नहीं, अतः उक्त सूत्र से विकल्प से तृतीया एवं पंचमी विभक्ति होती है। इसी प्रकार अल्पेन अल्पाद् वा मुक्तः, कृच्छ्रेन कृच्छ्रान् वा मुक्तः, कतिपयेन कतिपयाद् वा मुक्तः आदि प्रयोग बनते है।

द्रव्ये तु–जहाँ 'स्तोक' आदि का प्रयोग द्रव्य के लिए किया जाता है अर्थात् किसी द्रव्यवाची शब्द के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं वहां इनमें केवल तृतीया ही होती है, पंचमी नहीं – यथा – **स्तोकेन विषेण हतः** (थोड़े विष से मारा गया।) यहाँ 'स्तोक' शब्द 'विष' का विशेषण है एवं विष द्रव्य वाचक है।

74. ''दुरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च । 2/3/35।।

एभ्यो द्वितीया स्याच्चात् पंचमी तृतीये च। प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम् । ग्रामस्य दूरं दूराद् दूरेण वा। अन्तिकम् अन्तिकाद् अन्तिकेन वा। असत्त्ववचनस्य इत्यनुवृत्तेर्नेह। दूरः पन्थाः ।

अर्थ – 'दूर' तथा 'अन्तिक' अर्थ को बताने वाले शब्दों के योग में पंचमी, तृतीया या द्वितीया विभक्ति होती है। यह सूत्र केवल प्रातिपादिकार्थ मात्र में ही इन विभक्तियों का विधायक है। जैसे–ग्रामस्य दूरं दूराद् दूरेण वा। अन्तिकम् अन्तिकाद् अन्तिकेन वा। अद्रव्यवाचक की अनुवृत्ति आने से यह विधान यहाँ नहीं होगा–दूरः पन्थाः ।

व्याख्या – प्रकृत सूत्र से द्वितीया, पंचमी और तृतीया ये तीन विभक्तियाँ होती है। इनमें से सूत्र में द्वितीया पद का उल्लेख होने से द्वितीया का प्रत्यक्ष विधान है। शेष दो विभक्तियाँ सूत्र से प्रयुक्त 'च' शब्द के बल से समाविष्ट हैं। इस प्रकार सूत्रार्थ अभिव्यंजित होता है। कि दूर शब्द तथा उसके पर्यायवाची, अन्तिम (समीप) और उसके पर्यायवाची शब्दों के योग में द्वितीया, पंचमी और तृतीया विभक्ति होती है।

यथा–दूरार्थक के योग में –

ग्रामस्य दूरं, दूरात् दूरेण वा (गांव से दूर)

ग्रामस्य अन्तिकम्, अन्कित्, अन्तिकेन वा (गांव के समीप) प्रकृत दोनों उदाहरणों में दूर एवं अन्तिक शब्द से द्वितीया, तृतीया तथा पंचमी विभक्ति होती है–उपर्युक्त नियम से।प्रकृत सूत्र में ''करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य'' सूत्र से 'असत्त्ववचनस्य' की अनुवृत्ति आती है। **दूरः पन्थाः** (मार्ग से दूर है) में 'दूर' शब्द विशेषण वाचक होने से द्रव्यवाची है, अतः यहाँ द्वितीया, तृतीया तथा पंचमी विभक्तियाँ नहीं हुई। यहाँ प्रातिपादिकार्थ मात्र में प्रथमा हुई।

अभ्यास प्रश्न

1–प्रश्न – अपादान किसे कहते है।

2–प्रश्न–अपादान संज्ञा किस सूत्र से होती है

3–प्रश्न–अपादान मे कौनसी विभक्ति होती है ?

4–प्रश्न– लज्जा के योग मे कौनसी विभक्ति होती है ?

5–प्रश्न'पंचम्यपाङ् परिभिः सूत्र का उदाहरण क्या है।

बहुविकल्पीय प्रश्न – उतर

1–'ध्रुवमपायेऽपादानम ्सूत्र से होती है–

क – सम्प्रदानम् ख –अपादान संज्ञा

ग–अपादान घ – स्म्बोधन

2– अपादान पंचमी विभक्ति होती ह‍ै–

क– कर्मणि द्वितीया ख– साधकतमं करणम्

ग––**'ध्रवमपायेऽपादानम** घ– चतुर्थी सम्प्रदाने

3. **शताद् बद्धः** में विभक्ति है।

क– सम्बोधन ख–चतुर्थी

ग– द्वितीया घ– पंचमी

4. **हिमावतो गंगां प्रभवति इसमें** विभक्ति होती है।
क– सम्बोधन ख–चतुर्थी
ग– द्वितीया घ– पंचमी

5– **स्तोकाद् मुक्तः** में विभक्ति है–
क– द्वितीया ख– पंचमी
ग– सप्तमी घ– चतुर्थी

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि इसमें कि कितने विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में केवल पंचमी विभक्ति का अध्ययन किया गया है। पंचमी विभक्ति का विधान करने वाला मुख्य सूत्र है। ''ध्रुवमपायेऽपादानम । ' इस सूत्र का अर्थ है– अपादान संज्ञा होती है, अपादान संज्ञा जहा जहा होती है वहा वहा 'अपादने पंचमी सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है।

4.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
'ग्रामात् आगच्छिति'	गांव से आता है
प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति	प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि है
शताद् बद्धः	सौ रूपये के ऋण से बंध गया है
नास्ति घटः अनुपलब्धेः	उपलबि न होने से घट नहीं है
नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा'	नारी के बिना जीवन निष्फल है
जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः	मूर्खता के कारण बंधन में फंस गया
स्तोकेन विषेण हतः	थोड़े विष से मारा गया।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर–जिससे कुछ हटे या हटा दिया जाय उसे अपादान कहते ।
2. उत्तर–'ध्रुवमपायेऽपादानम्'' ।
3. उत्तर – अपादान मे पंचमी विभक्ति होती है ।
4. उत्तर लज्जा के योग मे पंचमी विभक्ति होती है ।
5. उत्तर – अप हरेः, परि हरेः, संसार ।

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1.ख –अपादान संज्ञा
2.ग –'ध्रुवमपायेऽपादानम
3.घ – पंचमी
4.घ – पंचमी
5.ख – पंचमी

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.पुस्तक का नाम – लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम – वरदराजाचार्य प्रकाशक का नाम – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2.पुस्तक का नाम –वैयाकरण – सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम – भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम –गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

3.पुस्तक का नाम – व्याकरण महाभाष्यलेखक का नाम – पतंजलि

प्रकाशक का नाम – चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

4.8 उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक का नाम –वैयाकरण – सिद्धान्तकौमुदीलेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1–''आख्यातोपयोगे' इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये

इकाई . 5 षष्ठी विभक्ति ,सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 षष्ठी विभक्ति सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उतर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूत्री

5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

व्याकरण ‘शास्त्र से सम्बन्धित यह पांचवी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि सम्बन्ध कारक की आवयकता क्या है ? सम्बन्ध कारक किसे कहते है।इस इकाइ में मुख्य रूप से सम्बन्ध कारक के विषय में व्याख्या की गयी है कारक और प्रातिपदिकार्थ के अर्थ से भिन्न 'स्व–स्वाभिभाव' आदि सम्बन्ध को शेष कहते हैं। इस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे– राज्ञः पुरुषः।

कारक छः प्रकारक के होते हैं–

कर्ता , कर्म , कारण , सम्प्रदान अपादान अधिकरण। ‘षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं माना गया है क्यों कि क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नही है।इन छः कारकों में सम्बन्ध कारक की व्याख्या की जा रही है–

5.2उद्देश्य

इस इंकाई के अध्ययन के पष्चात् आप पाणिनि रचित व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण विभक्तियों सहित सूत्रों का ज्ञान करेंगे।

- सम्बन्ध कारक किसे कहते है इसके विषय में परिचित होंगे
- शेष अर्थ में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- हेतु शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।इसके विषय में परिचित होंगे
- सर्वनाम्नस्तृतीया च''–षष्ठी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- अतस् (अतसुच्) प्रत्ययों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। इसके विषय में परिचित होंगे
- दूरन्तिकार्थैः षष्ठ्यन्तरस्याम्'' सूत्र से कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे

5.3 सम्बन्ध कारक षष्ठी विभक्ति

75. षष्ठी शेषे /2/3/50।।

कारक प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात् । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्ध मात्रविवक्षायां षष्ठ्येव, सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधोदकस्योपस्कुरूते। भजेः शम्भोश्चरणयोः। फलानां तृप्तः ।

अर्थ :– कारक और प्रातिपदिकार्थ के अर्थ से भिन्न 'स्व–स्वाभिभाव' आदि सम्बन्ध को शेष कहते हैं। इस शेष अर्थ में षष्ठी होती है। जैसे– राज्ञः पुरुषः। 'कर्म' आदि के सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में भी षष्ठी विभक्ति ही होती है। जैसे सतां गतम् । सर्पिषः जानीते। मातुः स्मरति। एधोदकस्योपस्कुरूते। भजेशम्भोः चरणयोः फलानां तृप्तः ।

व्याख्या :– पंचमी विभक्ति तक कारक विभक्तियों का यथा क्रम व्याख्यान प्रस्तुत करने के बाद कारक विभक्तियों से व्यतिरिक्त षष्ठी विभक्ति के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। षष्ठी विभक्ति के ''शेष षष्ठी, कारक शेष षष्ठी, कारक षष्ठी एवं उपपद षष्ठी ये चार प्रकार होते हैं, जिनमें से प्रथम शेष षष्ठी को बताने के लिए 'षष्ठी शेषे' यह सूत्र लिखा गया है।

प्रकृत सूत्र शेष में षष्ठी का विधान करता है। शेष वह है जो इसके पूर्व तक कहे हुए प्रांतिपदिकार्थ एवं कर्मत्वादिरूपकारकार्थ से भिन्न हो। विचार करने पर ऐसा शेष सम्बन्ध ही हो सकता है, तदतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। अथ च उपर्युक्त दृष्टि से **शेष, सम्बन्ध रूप ही ठहरता है। अब यह स्पष्ट है कि 'षष्ठी शेषे' यह सूत्र सम्बन्ध को** बताने के

लिए षष्ठी विभक्ति का विधान करता है। यह सम्बन्ध दो प्रकार का होता है सामान्य सम्बन्ध तथा विशेष सम्बन्ध। जहाँ सामान्य सम्बन्ध की स्थिति होती है वहां सम्बन्ध केवल सम्बन्ध के रूप मे (सम्बन्धत्वेन रूपेण) रहता है। जहां विशेश सम्बन्ध की स्थिति होती है वहां स्वस्वाभिभाव, जन्य–जनक भाव, प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव आदि अनके सम्बन्धों में से कोई एक या एकाधिक सम्बन्ध रहा करते हैं।

अब प्रश्न यह आता है कि शेष षष्ठी सम्बन्ध सामान्य में होती है अथवा सम्बन्ध विशेष में? उत्तर के रूप में यह कहा जा सकता है कि षष्ठी विभक्ति कहीं सम्बन्ध सामान्य में तथा कहीं सम्बन्ध विशेष में होती है। सामान्य के उदाहरण के रूप में ''मातुः स्मरति'' यह वाक्य देखा जा सकता है यहाँ ''मातृ सम्बन्धी स्मरण'' यह वाक्यार्थ है। विशेष के उदाहरण के रूप में 'राज्ञः पुरूषः यह प्रसिद्ध है, जहां षष्ठी शेष रूप स्वस्वामिभाव को अभिव्यक्ति कर रही है।

यहाँ एक बात यह भी ध्यातव्य है कि सम्बन्ध सदैव दो पदार्थो में ही रहता है, अतः स्वस्वामि भावादि सम्बन्ध भी राजा और पुरूष दोनों में है। इस स्थिति में सम्बन्ध की वाचिका षष्ठी विभक्ति जिस प्रकार राजन् शब्द से होती है उसी प्रकार पुरूष शब्द से भी होनी चाहिये? इसका समाधान यह है कि ''राज सम्बन्धी पुरूष'' इस विवधा में यदि पुरूष शब्द से षष्ठी विभक्ति की जायेगी, तो उसका अर्थ विशेषण होगा और पुरूष विशेष्य होने लगेगा, जबकि ''प्रकृति प्रत्ययार्थयोः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यम्'' इस नियमानुसार प्रत्ययार्थ को विशेषण न होकर प्रकृत्यर्थ के प्रति प्रधान होना चाहिये। इस प्रकार उक्त नियम के भंग होने की स्थिति से बचने के लिए वाक्यगत विशेषण वाचक शब्द से ही षष्ठी विभक्ति होती है। इसी बात को आचार्य भर्तृहरि ने ''द्विष्ठोऽप्यसौ परार्थत्वात्'' इत्यादि कारिका में अन्य प्रकार से समझाया है। उनके अनुसार सम्बन्ध के बिना किसी की विशेषणता असम्भव होती है और सम्बन्ध विशेषण में ही उद्भूत रूप से प्रतीत होती है, अतः विशेषणवाचक शब्द में ही षष्ठी विभक्ति होती है। इस प्रकार प्रकृत में विशेषण वाचक 'राजन्' शब्द से ही षष्ठी विभक्ति करना उचित है।

यदि ''पुरूष का राजा'' इस अर्थ का विवक्षा होगी तो पुरूष विशेषण होगा और सम्बन्ध विशेष्य होगा, तथा च पुरूष शब्द से भी षष्ठी होने में बाधा नहीं है।

यथा–राज्ञः पुरूषः (राजा का पुरूष) यहाँ ''राज'' पदार्थ का 'पुरूष' पदार्थ के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है, अतः उक्त सूत्र से 'राजन्' शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है–राज्ञः। जब कर्म आदि कारकों में केवल सम्बन्ध बतलाने की इच्छा होती है तो वहां शेष में षष्ठी विभक्ति ही होती है–

यथा – **संता गतम्** (सत्पुरूषों का गमन) यहां सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में कर्त्ता, सत् शब्द से षष्ठी विभक्ति होने पर 'सताम्' शब्द बनता है।

सर्पिषः जीनीते अर्थात् ''सर्पिषा उपायेन प्रर्वते'' (धृत के द्वारा प्रवृत्त होता है) यहाँ सर्पिस् = धृत प्रवृत्ति का कारण है। उसमें सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी **विभक्ति होती है–सर्पिषः**।मातुः स्मरति (माता को स्मरण करता है) यहां 'माता' स्मरण का कर्म है। कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

एधोदकस्योपस्कुरूते (काष्ठ जल को परिष्कृत करता है) यहां 'एधस्' शब्द सकारान्त पुलिंग है। इसका अर्थ काष्ठ है। कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने से षष्ठी विभक्ति हुई है।

भजे शम्भोः चरणयोः (शम्भु के चरणों को भजता हूँ) वहां चरण कर्म है। अतः सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने से षष्ठी विभक्ति होती है।

फलानां तृप्तः (फलों से तृप्त) यहाँ 'फल' करण है, अतः इसमें सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हो जाती है।

76. ''षष्ठी हेतु प्रयोगे /2/3/26।।

हेतु शब्द प्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात् । अन्नस्य हेतोर्वसति।

अर्थ – हेतु शब्द के योग में यदि उससे हेतु द्योत्य हो तो षष्ठी विभक्ति होती है। यथा–अन्नस्य हेतोः र्वसति।

व्याख्या – प्रकृत सूत्र में 'हेतौ' सूत्र की अनुवृत्ति करने पर अर्थ होता है कि 'हेतु' शब्द के प्रयोग में यदि 'हेतु' अर्थ भी द्योतित हो तो 'हेतु' शब्द में और हेतु शब्द के योग में आये शब्द से भी षष्ठी विभक्ति होगी।

अन्नस्य हेतोः वसति (अन्न के लिए रहता है) यहां रहने का हेतु अन्न है तथा हेतु शब्द का प्रयोग भी किया गया है, अतः षष्ठी विभक्ति हुई है। अन्न के साथ सामानाधिकरण होने से 'हेतु' शब्द में भी षष्ठी विभक्ति हुई है। इसके विपरीत केवल 'हेतु' अर्थ द्योतित रहने पर बिना 'हेतु' शब्द के प्रयोग के षष्ठी नहीं होगी वहां तृतीया होगी–यथा–अन्नेन वसति।

77. ''सर्वनाम्नस्तृतीया च'' /2/3/27।।

सर्वनाम्नो हेतु शब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च। केन हेतुना वसति। कस्य हेतोः ।

अर्थ – एवं विवरण– जब सर्वनाम शब्द हेतु हो और 'हेतु' शब्द का भी प्रयोग हो तो सर्वनाम शब्द में षष्ठी विभक्ति होती है, तथा तृतीया भी होती है। इसके साथ ही 'हेतु' शब्द में भी समानाधिकरण विशेष्य–विशेषण भाव होने से क्रमशः षष्ठी और तृतीया विभक्ति होती है।

व्याख्या– केन हेतुना वसति, कस्य हेतोः (किस हेतु से रहता है) यहां 'हेतु' शब्द का प्रयोग सर्वनाम शब्द 'किम्' के साथ किया गया है तथा हेतु प्रकट करना है, अत एवं उक्त सूत्र से ''केन' तथा 'हेतुना' दोनों में तृतीया विभक्ति होती है। तथा पक्ष में षष्ठी विभक्ति भी होती है–कस्य हेतोः ।।

.वार्तिक– ''निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्''। किं निमित्तं वसति। केन निमित्तेन्। कस्मै निमित्ताय। कस्तात् निमित्तात् । कस्य निमित्तस्य। कस्मिन् निमित्ते एवं कि कारणम्। केन कारणेन। कस्मैं कारणाय। कस्मात् कारणात्। कस्य कारणस्य। कस्मिन् कारणे। एवम् को हेतुः, किं प्रयोजनम् इत्यादि। प्राय ग्रहणादर्सनाम्नः प्रथमाद्वितीये न स्तः। ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः। ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि।

अर्थ– निमित्त शब्द के पर्यायवाची (करण, प्रयोजन हेतु) शब्दों का प्रयोग होने पर प्रायः सभी विभिक्तियों का प्रयोग होता है। किं निमित्तं वसति। केन निमित्तेन। कस्मै निमित्ताय किं कारणं वसति। केन कारणेन। कस्मै कारणाय किं प्रयोजनं वसति। केन प्रयोजनेन। कस्मै प्रयोजनाय (किस लिये रहता है) तात्पर्य यह है कि निमित्त, करण, हेतु, प्रयोजन आदि शब्दों में और इसके साथ आने वाले सर्वनाम शब्दों में प्रायः सभी विभिक्तियों का प्रयोग होता है।

प्रकृत वार्तिक में प्राय शब्द का ग्रहण किया है। इसका तात्पर्य यह है कि जहां सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता (असर्वनाम्नः) वहां प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति नहीं होती, अन्य सभी विभक्तियाँ होती है।

ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः। ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि (ज्ञान के लिए हरि की सेवा करनी चाहिये) यहाँ 'ज्ञान' तथा 'निमित्त' दोनों शब्दों से उपर्युक्त नियम के अनुसार तृतीया

विभक्ति होती है। इसी प्रकार 'ज्ञानाय निमित्ताय'' आदि में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। किन्तु ''ज्ञान'' शब्द सर्वनाम नहीं है अतः यहाँ प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति नहीं होती है।

78. ''षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन'' /2/3/30।।

एतद्योगे षष्ठी स्यात् । दिक्शब्द इति (5/3/27) पंचम्या अपवादः। ग्रामस्य दक्षिणतः। पुरः पुरस्तात्। उपरि उपरिष्टात्।

अर्थ–अतस् (अतसुच्) प्रत्ययों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। ''दिक्शब्दयोग' षष्ठी का यह अपवाद है। अतस् प्रत्यय तथा उसके अर्थ वाले प्रत्यय लगाकर बने हुए (दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात् इत्यादि) शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

व्याख्या :– अतसर्थ शब्द का ''प्रत्यय'' शब्द के साथ समास होने पर सूत्र से अभिव्यंजित होता है कि ''अतम् अर्थक प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यह सूत्र ''अन्यारादितरर्तेदिक् –/2/3/1।। सूत्र से प्राप्त होने वाली पंचमी का अपवाद है।

ग्रामस्य दक्षिणतः (ग्राम के दक्षिण की ओर) यहां दक्षिणतः में अतसुच् दक्षिणतः के योग में 'ग्राम' शब्द में षष्ठी विभक्ति होती है।

इसी प्रकार ग्रामस्य पुरः, यहां पूर्व शब्द को पुर आदेश होने पर (पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्/5/3/39।।) से असि प्रत्यय होने पर ''पुरः'' बनता है। पुरस्तात् = पूर्व +अस्ताति – पुर : अस्तात् – पुरस्तात। उपरितथा उपरिष्टात् दोनों शब्द अतसर्थ प्रत्यय के प्रकरण में ऊर्ध्व शब्द से रिल् तथा रिष्टाति प्रत्यय और ऊर्ध्व को ''उप'' आदेश निपातन द्वारा बनाये गये है। इनके योग में षष्ठी विभक्ति होती है–ग्रामस्य उपरि, ग्रामस्य उपरिष्ठात् इत्यादि बनते हैं।

79. ''एनपा द्वितीया''/2/3/31।।

एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात् । 'एनपा' इति योगविभागात्षठ्यपि। दक्षिणेन ग्रामं – ग्रामस्य वा। एवम् उत्तरेण।

मूलार्थ – एनप् प्रत्यान्त शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। 'एनपा' इस योग विभाग से षष्ठी विभक्ति भी होती है। जैसे–दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। इसी प्रकार–उत्तरेण ग्रामं ग्रामस्य वा।

व्याख्या – अर्थ की दृष्टि से सूत्र स्वतः पूर्ण है। अतः 'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। 'एनम्' प्रत्यय (एनबन्यतरस्याम दूरेऽपंचम्याः (षष्ठ्यतसर्थप्रत्येन 2/3/30) से प्राप्त षष्ठी विभक्ति रही है। उसका यह अपवाद है। इस सूत्र का योग विभाग करने पर पक्ष में षष्ठी विभक्ति भी हो जाती है। प्रकृत सूत्र को दो सूत्रों में विभाजित करने पर प्रथम अंश ''एनपा'' में पूर्व सूत्र से षष्ठी की अनुवृत्ति करने से 'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ षष्ठी विभक्ति भी होगी।

यथा–दक्षिणेनं ग्रामं ग्रामस्य वा (गांव के दक्षिण की ओर) यहां दक्षिणेन (दक्षिण + एनप्) शब्द एनप् प्रत्ययान्त है। अतः उक्त सूत्र से ग्राम शब्द से द्वितीया तथा षष्ठी विभक्तियाँ हुई है। यहाँ ''एनबन्यतरस्याम्– 5/3/35 सूत्र 'एनप्' प्रत्यय विधायक है।

उत्तरेण ग्रामं ग्रामस्य वा (गांव के उत्तर की ओर) यहाँ भी उत्तेरण (उत्तर + एनप्) शब्द एनप् प्रत्ययान्त है। अतः उक्त सूत्र से ''ग्राम' शब्द से द्वितीया तथा षष्ठी विभक्तियाँ हुई है।

80. ''दूरन्तिकार्थैः षष्ठ्यन्तरस्याम्'' /2/3/34।।

एतैर्योगे षष्ठी स्यात् पंचमी च। दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामात् वा।

अर्थ – दूर और समीप (अन्तिक) अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी तथा पंचमी दोनों विभक्तियाँ होती है। इसके विपरीत 'अपादाने पंचमी' सूत्र से मण्डूकप्लुति से पंचमी की अनुवृत्ति आने से पक्ष में पंचमी विभक्ति होगी।

व्याख्या –दूरं ग्रामस्य वा (गांव से दूर) **निकटं ग्रामस्य ग्रामाद वा** (गांव के निकट) यहां 'दूर' और 'निकट' शब्दों के योग में उक्त सूत्र से ग्राम में 'षष्ठी' तथा 'पंचमी' विभक्ति हुई है।

प्रकृत सूत्र षष्ठी विभक्ति का विधान करता है। यहाँ 'अन्यतरस्याम्' का उल्लेख होने से व्यवधान रहते हुए भी ''अपादाने'' पंचमी 2/3/27।। सूत्र से पंचमी की अनुवृत्ति होने से 'पंचमी' का विधान किया गया है। किन्तु इसकी अपेक्षा अत्यन्त निकट = समीपस्थ होते हुए भी 'एनपा द्वितीया' सूत्र से द्वितीया तथा ''पृथग् विनानानाभिः'' सूत्र से तृतीया की अनुवृत्ति व्याख्यानवश नहीं की गई है।

81. ''ज्ञोऽविदर्थस्य करणे'' /2/3/41।

जानातेरज्ञानार्थस्य करणे शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात्। सर्पिषो ज्ञानम्।

अर्थ – जब 'ज्ञा' धातु का अर्थ जानना नहीं होवे तब उसके करण में सम्बन्ध की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होगी। जैसे–सर्पिषः ज्ञानम्।

व्याख्या – प्रकरणवश ''षष्ठी शेषे'' सूत्र से षष्ठी की अनुवृत्ति आती है तदनुसार सूत्रार्थ होगा कि ज्ञान से भिन्न अर्थवाली ''ज्ञा'' धातु के करण में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'शेष' में षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा– सर्पिषः ज्ञानम् (घृत द्वारा होने वाली प्रवृत्ति) यहाँ 'ज्ञा' धातु का अर्थ ज्ञानार्थक जानना न होकर प्रवृत्ति अर्थ है। अतः इसके कारण 'सर्पिष'' से सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हुई है।

82. ''अधीगर्थदयेशां कर्मणि'' /2/3/42।।

एषां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात्। मातुः स्मरणम्। सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा।

अर्थ – अधि पूर्वक 'इक्' धातु के समनार्थक धातु तथा 'दय्' एवं 'ईश्' धातुओं के कर्मकारक में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है– जैसे– मातुः स्मरणम् सर्पिषः दयनम् ईशनं वा।

व्याख्या – पूर्वत् 'षष्ठी शेषे' से शेष में षष्ठी की अनुवृत्ति है। तदनुसार सूत्रार्थ अभिव्यंजित होता है कि अधिपूर्वक इक् = स्मरणे अधीक् अधीगर्थ का अर्थ है – स्मरणार्थक। स्मरणार्थक धातुएं तथा दय् = दानगति रक्षणेषु, ईश् = ऐश्वर्ये इनके कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है अर्थात् अधिपूर्वक इक् तथा इसके पर्यायवाची और दय् तथा ईश् के कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी होती है। अधिकपूर्वक इक् का अर्थ होता है 'स्मरण करना'। अतः सूत्र में 'अधीगर्थ' के स्थान पर 'स्मरणार्थक' ही क्यों न कहा जो अधिक सुगम और सरल होता? वस्तुतः यह बात भी ज्ञापक है कि 'इङ्' और 'इक्' सतत् 'अधि' उपसर्ग के साथ ही प्रयुक्त होंगे? पुनः शेषत्वविवक्षा करने पर कर्म में षष्ठी होगी ऐसा क्यों होगा? इसलिए कहा कि करण में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी न हो जाये।यथा–**मातुः स्मरणम्** (माता को याद करना) यहां 'मातृ' शब्द में कर्म कही शेषत्व विवक्षा होने से उक्त सूत्र से षष्ठी विभक्ति हो जाती है।

सर्पिषः दयनम्, सर्पिषः ईशनं वा (घी का दान, घी का स्वामी बनना) यहां क्रमशः दय तथा ईश् धातुओं के साथ इनके कर्म 'सर्पिषः' में षष्ठी विभक्ति होती है।

83.''कृञः प्रतियत्ने'' /2/3/43।।

प्रतियत्नो गुणाधानम्। कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् गुणाधाने । एधो दकस्योपकस्रणम्।

अर्थ – प्रतियत्न का अर्थ है = गुणाधान, अर्थात् किसी वस्तु में अन्य गुणों की स्थापना करना। गुणाधान अर्थ में 'कृञ' धातु के कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है– जैसे ऐधो दकस्योपकस्त्रकणम्।।

व्याख्या– 'कृञ' में कर्म में शेष में षष्ठी होती है जब 'गुणाधान' अर्थ हो। वस्तुतः गुणाधान का अर्थ 'गुणादान' या 'परिष्करण' है। तात्पर्य यह है कि 'कृ' का अर्थ जब 'परिष्कृत करना' होगा तब उसके कर्म में शेष में द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी होगी। कृ का अर्थ है 'परि', 'उप' तथा 'सम्' उपसर्ग से युक्त होने पर होता है। अतः कहा जा सकता है कि 'परि– 'उप' तथा 'सम्' पूर्वक 'कृ' के कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी होती है–यथा–एधो दकस्योपस्करणम् (ईधन का जल में उष्णता आदि उत्पन्न करना) यहां गुणाधान के कारण 'दक' में षष्ठी हुई है। दक शब्द यहां जल का समनार्थक है।

84. ''रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः /2/3/54।।

भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रूजार्थानां कर्मणिशेषे षष्ठी स्यात्। चौरस्य रोगस्य रुजा।

अर्थ – 'ज्वरि' धातु को छोड़कर अन्य रुजार्थक (रोग अर्थ बताने वाली) धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है, यदि उसका कर्ता भाव वाचक शब्द हो तो– जैसे चौरस्य रोगस्य रुजा। इसका वाक्यार्थ है– रोग कर्तृक चोर सम्बन्धी ज्वर और सन्ताप।

विशेष – यहां 'कर्माणि द्वितीया' से कर्म की तथा 'शेषे षष्ठी' से षष्ठी की अनुवृत्ति पूर्वतः आती है। 'ज्वर' को छोड़कर 'भाववचन' अन्य रुजार्थकधातुओं के कर्म में शेष में षष्ठी होगी। सूत्र में 'रुजा' शब्द रूजो = भंगे से निष्प्न्न होता है। 'भाव वचन' में 'भाव' शब्द का अर्थ यहां घञ् आदि भाववाची प्रत्यय से निष्पन्न शब्द लिया जायगा। व्यक्तीति वचनः। चूंकि भाव का 'वक्ता' होना सम्भव नहीं है, इसलिए 'वचन' का अभीष्ट अर्थ कर्त्ता लिया जायेगा। अतः सूत्रार्थ हुआ कि यदि ज्वरवर्जित रुज् या इसके पर्यायवाची किसी धातु का कर्त्ता किसी भाववाची प्रत्यय से व्युत्पन्न हो तो उस धातु के कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा– **चौरस्य योगस्य रुजा** (रोग से चोर को कष्ट) यहां पर 'रोग' भाववाचक शब्द है (रुज् + घञ् = भाव में) तथा रुजा = पीड़ी का कर्त्ता है, अतः भाववाचक कर्त्ता होने से रुज् के कर्म चोर के शेषत्व विवक्षा में 'षष्ठी' विभक्ति होती है। प्रतिपदविधान षष्ठी होने के कारण 'चौरस्य रुजा' में समास नहीं हुआ है।

वार्तिक– ''अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्'' रोगस्य चौरज्वरः, चौर सन्तापो वा। रोग कर्तृकं चौर सम्बन्धि ज्वरादिकमित्यर्थः ।

सूत्रस्थः 'अज्वरेः' के स्थान पर ''अज्वरिसन्ताप्योः'' ऐसा कहना चाहिये अर्थात् 'ज्वरि और सन्तापि' को छोड़कर। तब इन दोनों धातुओं के प्रयोग में शेषत्व की विवक्षा होने पर कर्म में षष्ठी विभक्ति नहीं होगी। इसके फलस्वरूप 'षष्ठी शेषे' अथवा 'कर्तृकर्मणोः कृतिः'' से षष्ठी होने पर समास हो जायेगा। क्योंकि यह प्रतिपदविधाता षष्ठी नहीं है।

यथा–रोगस्य चौरज्वरः (रोग कर्तृक चोर सम्बन्धी ज्वर)

रोगस्य चौर सन्तापः (रोगकर्तृक चोर सम्बन्धी सन्ताप) उक्त दोनों उदाहरणों में भावकर्तृक रुजार्थक 'ज्वरि' और 'सन्तापि' धातुओं के कर्म को शेषत्व विवक्षा में उक्त वार्तिक से षष्ठी का निषेध हो गया। इसके फलस्वरूप 'षष्ठी शेषे' (2/3/50।।) से षष्ठी होने के कारण समास हो जाता है।

85. ''आशिषि नाथः'' /2/3/55।।

आशीरर्थस्य नाथतेः शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात्। सर्पिषो नाथनम्। ''आशिषि'' इति किम्? माणवक नाथनम्। तत्सम्बन्धिनी याञ्चेत्यर्थः।

अर्थ – अशीर्वाद अर्थ में 'नाथ्' धातु के शेषत्व रूप से विवक्षित कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–**सर्पिषः नाथनम्** (घृत सम्बन्धी इच्छा करना)। आशिषि का क्या प्रयोजन है? **माणवकं नाथनम्** । (माणवक की याचना)।

याख्या – नाथ् धातु का अर्थ यदि 'आशिषि' हो तो उसके कर्म में शेष में षष्ठी विभक्ति होती है। यहां 'आशिषि' का अर्थ है 'आशासन' या 'आशंसा' है न कि 'आशीर्वाद'।

वस्तुतः 'नाथ्' धातु के दो अर्थ होते है– आशा करना और याचना करना। अतः जब 'आशा करना' अर्थ होगा तभी उसके कर्म में विहित अवस्था में षष्ठी होगी। **सर्पिषः नाथनम्** (घृत सम्बन्धी इच्छा का आशीर्वाद) यहाँ पर 'मेरे पास घृत होना चाहिये' यह इच्छा है। 'सर्पिष्' नाथ् धातु का कर्म है। इसमें सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

आशिषि किम् –?सूत्रस्थ आशिषि शब्द का क्या प्रयोजन है? यह है कि जब 'नाथ्' धातु 'आशीः' अर्थ में होती है तभी उक्त नियम से षष्ठी होती है अन्यथा नहीं **माणवकं नाथनम्** (माणवक सम्बन्धी याचना) यहां 'आशा रखना' अर्थ में प्रयोग न होकर 'याचा' (मांगना) के अर्थ में 'नाथ्' धातु आयी है, अतः उसके कर्म में षष्ठी नहीं हुई। शेष षष्ठी होने पर षष्ठी समास हो गया।

86. ''जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्'' /2/3/56।।

हिंसार्थनामेषां शेषे कर्मणि षष्ठी, स्यात्। चौरस्योज्जासनम्। निप्रौ संहतौ विपर्यस्तौ व्यस्तौ वा। चौरस्य निप्रहणनम्। प्रणिहननम्। निहननम्। प्रहणनं वा। 'नट अवस्कन्दने' चुरादिः। चौरस्योन्नाटनम्। चौरस्य क्राथनम्। वृषलस्य पेषणम्। हिंसायां किम्? धानापेषणम्।

अर्थ – हिंसार्थक जासि, नि–प्र उपसर्ग पूर्वक हन्, नाटि, क्राथ और पिष् धातु के कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–चौरस्य उज्जासनम्। हन् धातु में नि और प्र उपसर्ग इसी क्रम से मिले जैसे– चौरस्य उज्जासनम्। हन् धातु में नि और प्र उपसर्ग इसी क्रम में मिल हुए (निप्र) विपरीत क्रम में मिले हुए (विपर्यस्तौ) प्र नि तथा पृथक्–पृथक् रूप में 'व्यस्तौ' लिये जाते हैं। तो भी षष्ठी होगी। जैसे– चौरस्य नि प्र हणनम् प्रणि हननम्, निहननम्, प्रणहन वा। नट् धातु चुरादि में नृत्यार्थक है। जैसे– चौरस्य उन्नाटनम्, चौरस्य क्राथनम्, वृषलस्य पेषणम्। हिंसायाम् का क्या प्रयोजन है? धाना पेषणम्।

याख्या – सूत्रार्थ स्पष्ट करने के लिए 'कर्मणि' तथा 'षष्ठी शेषे' की अनुवृति अपेक्षित है। तद्नुसार हिंसार्थक जासि, नि प्र पूर्वक् हन्, नाट् तथा पिष् धातु के कर्म में शेषत्वविवक्षा में षष्ठी होगी। इन धातुओं में जस् तीन है– 'जसु ताड़ने', जसु हिंसायाम्,' तथा 'जसु' मोक्षणे'। इनमें केवल प्रथम दो का ग्रहण यहां होगा। ये चुरादिगणीय होने के कारण सूत्र में दीर्घान्त 'जासि' पठित हैं। इसके विपरीत, तीसरा, दिवादिगणीय है और हिंसार्थक भी नहीं है। इसी प्रकार नट् भी हैं – 'नट् नृतौ और नट् अवस्कन्दे इसमें यहां केवल यहां अवस्कन्दनार्थक नट् का ग्रहण होगा। यह भी चुरादिगणीय है। पुनः 'क्रथ्' हिंसायाम्, किन्तु तत्वबोधिनीरकार के अनुसार निपातन से इस सूत्र में दीर्घान्त पठित है। पुनः नि प्र पूर्वक हन् के विषय में प्रायः पाणिनि का अभिप्राय था कि यही संहत्, व्यस्त तथा विपर्यस्त सभी क्रमों में इष्ट है। अत एवं उक्त धातुओं के कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा–**चौरस्य उज्जासनम्** (चौर सम्बन्धी हिंसा) यहां और उज्जासन का कर्म है। इसमें सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने पर उक्त सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है। इसका फल यहां समास नहीं होता है।

चौरस्य निप्रहणनम्, प्रणिननम्, निहननम्, प्रहणनम् वा (चोर को पीटना) सूत्रस्थ नि–प्र–हणन पद का यह आशय है कि 'हन्' धातु के साथ 'नि' और 'प्र' उपसर्ग दोनों मिलकर, विपरीत क्रम से तथा पृथक्–पृथक् रहने पर भी षष्ठी विभक्ति होगी। चौरस्य उन्नाटनम् (चौर को मारना) चौरस्य क्राथनम् (चौर को पीटना) वृषलस्य पेषणम् (वृषल को अधिक दण्ड देना) उक्त उदाहरणों में प्रथम नट् अवस्कन्दने चुरादिगण की धातु है। अवस्कन्दन का अर्थ नाट्य है किन्तु उपसर्ग लगने से इसका अर्थ हिंसन हो जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी षष्ठी विभक्ति हुई है।हिंसायाम् इति किम्? हिंसा अर्थ में ही यह षष्ठी होती है ऐसा क्यों कहा गया? इसलिए कि उक्त धातुओं के हिंसार्थक रहने पर ही कर्म की शेषत्व विवक्षा में षष्ठी में 'धानापेषणम्'' (धानानां पेषणम्) धान कूटना, पीसना में ''कर्तृकर्मणोः कृतिः'' 2/3/65।। से कर्म में षष्ठी विभक्ति हुई है। ''शेष षष्ठी'' न होने से समास हो जाता है।

87.व्यवहृपणोः समर्थयोः 2/3/47।।

शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात्। द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता। शतस्य व्यवहरणं, पणनं वा। समर्थयोः किम्? शलाका व्यवहारः। गणनेत्यर्थः।। ब्राह्मणपणनं स्तुतिरित्यर्थ।

अर्थ – समानार्थक 'वि' और 'अव्' उपसर्ग पूर्वक 'हृ' और 'पण्' धातुओं के कर्म से शेषत्व विवक्षा में षष्ठी होती है। जुआ खेलना, खरीदना और बेचना अर्थों में इन दोनों धातुओं की समानता है। जैसे– शतस्य व्यवहरणम् पणनं वा। 'समर्थयोः' क्यों कहा? शलाका व्यवहारः। यहां व्यवहार का अर्थ गणना है। ब्राह्मण पणनम्। पणनं का अर्थ स्तुति है।

व्याख्या – पूर्ववत् 'कर्मणि' तथा 'शेषे षष्ठी' से अनुवृत्ति करने पर सूत्रार्थ होगा कि

समानार्थक वि अव उपसर्ग पूर्वक हृ = हरणे तथा पण् व्यवहारे स्तुतौ च के कर्म में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है। ये दोनों धातु जुआ खेलना तथा क्रय–विक्रय करना अर्थ में समानार्थक हैं। अतः इन्हीं अर्थो में इनके कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी होती हैं।

यथा–शतस्य व्यवहरणं, पणनं वा (सौ रूपये का लेन–देन करना या जुआ खेलना) यहाँ 'शतस्य' व्यवहरति इस अर्थ में 'शत' कर्म है। इसमें सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने पर उक्त सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है।

समर्थयोः किम्? सूत्र में समान अर्थ वाली क्यों कहा? इसलिए कि दोंनों धातुओं के समानार्थक रहने पर ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। अतः 'शलाका व्यवहारः' (सलाई की गणना), ब्राह्मणं पणनम् (ब्राह्मण की स्तुति) उक्त दोंनों उदाहरणों में द्यूत और क्रय–विक्रय व्यवहार अर्थ न होने से प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति नहीं हुई। फलस्वरूप 'षष्ठी शेषे' सूत्र से षष्ठी विभक्ति होने के बाद समास हो गया।

88. ''दिवस्तदर्थस्य''/2/3/48।।

द्यूतार्थस्य क्रय–विक्रयरूप व्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी स्यात्। शतस्य दीव्यति। 'तदर्थस्य' किम्? ब्राह्मणं दीव्यति। स्तौतीत्यर्थः।

अर्थ – द्यूत और क्रय–विक्रय व्यवहार में दिव् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे– शतस्य दीव्यति। 'तदर्थस्य' का क्या प्रयोजन है? ब्राह्मणं दीव्यति। स्तुति करता है।

व्याख्या – सूत्र में स्थित 'तदर्थस्य' पद पूर्वसूत्र में प्रतिपादित विषय का परामर्शक है। सूत्रार्थ करने के लिए ''अधीगर्थदयेशां कर्मणि'' से 'कर्मणि' की तथा 'षष्ठी शेषे' से 'षष्ठी' की अनुवृत्ति आने पर अभिव्यंजित होता है कि ''व्यवहारार्थक'' दिव् धातु के अनभिहित = अनुक्त कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। दिव् धातु तीन अर्थ रखता है– 'द्यूत', क्रय–विक्रय रूप व्यवहार तथा 'स्तुति'। इसमें सूत्रानुसार 'द्यूत' और 'क्रय–विक्रय रूप व्यवहार' अर्थ वाले 'दिव्' के कर्म में षष्ठी होगी।

यथा–'शतस्य दीव्यति' (सौ रूपये का व्यवहार करता है, जुआ खेलता है) यहां 'शत्' दीव्यति का कर्म है। अतः उक्त सूत्र से कर्मवाची 'शत' शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है।

तदर्थस्य किम् ? तदर्थ अर्थात् इन्हीं अर्थों में ही 'दिव्' के कर्म में षष्ठी क्यों? इसलिए कि यदि द्यूत तथा क्रय–विक्रय व्यवहार इन अर्थो से भिन्न अर्थ में दिव् धातु का प्रयोग होता है वहां कर्म में षष्ठी नहीं होती, अत एवं 'ब्राह्मणं दीव्यति' में कर्म द्वितीया ही होती है। यहां दीव्यति का अर्थ है – स्तुति करता है।

अतिविशेष– पूर्व सूत्र में 'दिव्' का समावेश करने से ही इष्ट सिद्ध सम्भव होने पर आगे के सूत्र में 'दिव्' की अनुवृत्ति जाने के लिए पृथक् सूत्र की सार्थकता है।

89. ''विभाषोसर्गे'' /2/3/49।। पूर्वयोगापवादः।

शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

अर्थ –एवं विवरण ' जब 'दिव्' (जुआ खेलना, क्रय–विक्रय करना) धातु के पहले उपसर्ग होता है, तो कर्म में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है, अर्थात् षष्ठी भी हो जाती है तथा द्वितीया भी। सोपसर्ग दिव् धातु के सम्बन्ध में यह पूर्वसूत्र का अपवाद है।

व्याख्या– '**शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति''** (सौ रूपये दाव पर लगाता है) यहाँ पर उक्त सूत्र से 'शत' में विकल्प से षष्ठी हुई है तथा पक्ष में कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होती है।

90. ''प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने'' 2/3/39।।

देवता सम्प्रदानेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणोर्हविषो वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात्। अग्नये छागस्य हविषोवपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा।

अर्थ – देवताओं को उद्देश्य करके कुछ देना वहां वर्तमान 'प्रेष्य' और 'ब्रू' धातुओं के कर्म में हवि विशेष वाचक शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे– अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा।

याख्या – ''अधीगर्थदयेशां कर्मणि'' से अनुवृत्ति 'कर्मणि' पद षष्ठी में परिवर्तित किया गया है। सूत्र में प्रयुक्त 'हविष्' शब्द भी स्वरूपपरक नहीं हैं किन्तु हवि विशेष का बोधक वस्तु परक है। इस प्रकार सूत्रार्थ होगा कि प्र उपसर्ग पूर्वक विशेष का बोधक वस्तु परक है। इस प्रकार सूत्रार्थ होगा कि प्र उपसर्ग पूर्वक इष् धातु (दिवादिगण, पठित) तथा 'ब्रू' धातु के हविष्यवाचक कर्म में देवतासम्प्रदाने अर्थात् यदि देवताओं को देना अर्थ अभिलक्षित हो तो षष्ठी विभक्ति होती है। सूत्र में 'प्रेष्य' लोट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन का रूप है। स्पष्टतः जहां किसी देवता को 'हविष्' देने का अर्थ हो वहां 'प्रेष्य' या 'ब्रूहि' या उपसर्ग युक्त अनुब्रूहि के कर्म भूत 'हविर्विशेष वाचक' शब्द में षष्ठी विभक्ति होगी।

यथा–1 **अग्नये छागस्य हविषो वपायाः मेदसः प्रेष्य** (अग्नि रूपी देवता के लिए छाग की वपा और मेदस् रूप हवि को प्रकट करो) यहां प्रकृत सूत्र से छगस्य, यहां सम्बन्ध समान्य में षष्ठी है। प्रस्तुत वाक्य यज्ञ से सम्बन्धित है। यह मैत्रावरूण। के प्रति अध्वर्यु का प्रेरणारूप कथन है। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि – हे मैत्रावरूण !, अग्नि देवता के उद्देश्य से दिये जाने वाले छग सम्बन्धी हवि (वपा नामक मेदो रूप) को प्रेरक वचन द्वारा प्रकट करो। प्रेरक वचन यह है– ''होतायक्षदग्निम् छागस्य वपाया मेदसो जुषतां हविः, होतर्यज''।

2. अग्नये छागस्य वपायाः मेदसः अनुब्रूहि (अग्नि देवता के लिए छाग सम्बन्धी हवि–वपा नाम कमेदोरूप को समर्पित करो) प्रस्तुत वाक्य में मेदसः तक पूर्व वाक्य के समान अर्थ है। आगे उसे 'पुरोनुवाक्या' से प्रकाशित कर इस प्रकार अर्थ अनुब्रहि पद से अभिव्यंजित किया गया है। वहां भी हवि विशेष वाचक वपा तथा मेदस् शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है और हविस् शब्द से भी।

अति विशेष – देवताओं को समर्पित किया जाने वाला पदार्थ हविष् है– देवतायै सम्प्रदीयते यत् यत् देवतासम्प्रदानम्। इस सूत्र में भी पूर्व सूत्रवत् ''शेषे' पद की अनुवृत्ति नहीं आती । यह 'कर्मणि द्वितीया' का अपवाद एवं कारक षष्ठी है। वस्त्र खण्ड के समान मांस विशेष की मेदस् संज्ञा है। छाग शब्द बकरे का पर्यायवाची है।

91. ''कृत्वोऽप्रयोगे कालेऽधिकरणे'' /2/3/64।।

कृत्वोऽर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी स्यात्। पंचकृत्वोऽह्नो भोजनम्। दिरह्नो भोजनम्। 'शेषे' किम्? दिरहन्यध्ययनम्।

अर्थ – कृत्व अर्थवाले प्रत्ययों के प्रयोग में कालवाचक अधिकरण में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने पर शेष में षष्ठी होती है। जैसे– पंच कृत्वः अह्नः भोजनम्। द्वि अह्नः भोजनम्। ''शेषे'' का क्या प्रयोजन है? द्विः अह्नि भोजनम्।

विशेष – जिस अर्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय लगता है उस अर्थ में जो प्रत्यय लगते है, उन्हें 'कृत्वोऽर्थ' प्रत्यय कहते हैं। वस्तुतः कृत्वसुच् को छोड़कर अन्य एक ही ऐसा प्रत्यय है और वह है सुच्। इनमें ''द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्'' सूत्र के अनुसार सुच् प्रत्यय द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों से लगता है। यह प्रत्यय ''संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगमने कृत्वसुच्'' सूत्र के अनुसार संख्या के द्वारा क्रिया की आवृत्ति की गणना होने में संख्यावाची शब्द से लगता है। अतः सूत्र का स्पष्ट अर्थ है कि यदि किसी भी 'कृत्वोऽर्थ' प्रत्यय से निष्पन्न शब्द का प्रयोग हो तो उसके योग में अधिकरणभूत कालवाची शब्द में शेषत्वविवक्षा करने पर षष्ठी विभक्ति होगी।

यथा–पंचकृत्वः अह्नः भोजनम् (दिन में पांच बार भोजन) यहाँ भोजन क्रिया की पंचावृत्ति हुई है तथा कृत्वसुच् (पंच + कृत्वसुच्) प्रत्यय के कारण अधिकरण भूत कालवाची 'अहन्' शब्द में षष्ठी हुई है।

द्विः अह्नः भोजनम् (दिन में दो बार भोजन) यहाँ सुच् प्रत्यय के योग में अधिकरण भूत कालवाची 'अहन्' शब्द में शेष में उक्त सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है।

शेषे किम् ? षष्ठी विभक्ति सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में ही होती है, अत एव '**द्विः अह्नि अध्ययनम्**' (दिन में दो बाद पढ़ना) यहाँ अधिकरण की विवधा में 'अहनि' में सप्तमी विभक्ति हुई है।

92. ''कर्तृकर्मणोः कृति'' /2/3/65।।

कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्। कृष्णस्य कृतिः। जगतः कर्त्ता कृष्णः ।

अर्थः कृदन्त के योग में कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–कृष्णस्य कृतिः, जगतः कर्त्ता कृष्णः।

याख्या : 'कर्त्ता' एवं 'कर्म' के अनुक्त होने पर ही कृत प्रत्ययों में षष्ठी होगी, क्योंकि अनुक्त होने का फल है। कि जिस 'कृत' प्रत्यय का उस कृत् प्रत्यय से कर्त्ता और कर्म का उक्त होना अभीष्ट नहीं है। वस्तुतः कर्त्ता और कर्म का तात्पर्य कर्तृवाची तथा कर्मवाची शब्द है। अर्थतः कृदन्त प्रत्ययनिष्पन्न शब्द के योग में कर्त्ता तथा कर्म के अर्थ में आये हुए शब्द में षष्ठी विभक्ति होगी। अब कर्त्ता तथा कर्म की स्थिति पूर्ववाक्य से स्पष्ट हो जाती है।

यथा– **कृष्णस्य कृतिः** (कृष्ण की रचना) यहां पर 'कृति' शब्द में 'कृ' धातु से भाव अर्थ में ''स्त्रियां क्तिन्''/3/3/94 सूत्र से कृत संज्ञक 'क्तिन्' (ति) प्रत्यय हुआ हे। अत एव उक्त सूत्र से कृदन्त के कर्त्ता 'कृष्ण' में षष्ठी विभक्ति हुई है। यहां भाव में 'क्तिन्' प्रत्यय होने से कर्त्ता अनुक्त है। यहां तृतीया विभक्ति को बाधकर षष्ठी हुई है।

जगतः कर्त्ता कृष्णः (संसार के कर्त्ता कृष्ण) यहां कर्त्ता में कृ से 'तृच्' (ण्वुल् तृचौ 3/1/133) प्रत्यय होकर कर्त्ता शब्द बनता है। इसका कर्म जगत् है। अत एव उक्त सूत्र से कृतप्रत्ययान्त होने के कारण अनुक्त कर्म जगत् में षष्ठी विभक्ति हुई है। यहां पर कर्म में द्वितीया प्राप्त हैं।

वार्तिक– गुणकर्मणि वेष्यते'' नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा। ''कृति'' किम्? तद्धिते मा भूत्। कृत पूर्वी कटम्।

गुण कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है। कृत्प्रत्यान्त द्विकर्मक धातु के योग में गौण अर्थात् अप्रधान कर्म में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। तात्पर्य यह है कि प्रधान कर्म में नित्य षष्ठी विभक्ति होगी।

नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा घोड़े को स्रुघ्न में ले जाने वाला) यहां ''दुह् याच् पच् दण्ड्''कारिका में 'नी' धातु द्विकर्मक है। प्रकृत वाक्य में 'अश्व' मुख्य कर्म है और गौण कर्म स्त्रुघ्न है तथा 'नेतृ' शब्द में पूर्ववत् कर्त्ता अर्थ में तृच् प्रत्यय करने पर 'नेता' शब्द बना है। अतः यहाँ नेता (ले–जाने वाला) क्रिया के गौण कर्म 'स्त्रुघ्न' में विकल्प से षष्ठी हुई है पक्ष में द्वितीया होती है–स्रुघ्नं। मुख्य कर्म 'अश्व' में नित्य षष्ठी हुई है। ''कृति'' किम्? सूत्र में कृति शब्द का ग्रहण क्यों किया? इसलिए कि कृदन्त के प्रयोग में ही कर्त्ता और कर्म में षष्ठी होती है, तद्धित् प्रत्यान्त शब्दों के प्रयोग में नहीं।

व्याख्या – सूत्र में प्रयुक्त 'कर्म' और 'कर्त्ता' पदों से की क्रिया का आक्षेप हो जायेगा, क्योंकि धातु क्रियावाचक शब्द होते हैं। धातुओं से 'तिङ्' और 'कृत' दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं। उनमें 'कटं करोति' तिङ् प्रत्यय का प्रयोग करने पर– ''न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्'' यहां षष्ठी का निषेध हो जायेगा। तब 'कृत' ही शेष प्रत्यय रहेगे। ऐसी स्थिति में 'कृत्' प्रत्ययों के योग में ही षष्ठी विभक्ति होगी। सूत्र में 'कृति' पद इसलिए कहा जाता है कि यहां मात्र 'कृत' प्रत्ययों का ही प्रयोग आवश्यक है। यदि कृत में तद्धित प्रत्यय मिल जायें तो वहां षष्ठी नहीं होगी यही सूत्र में 'कृति' पद की सार्थकता है। यथा–कृत पूर्वी कटम् (पूर्व में इसने चटाई बना ली है)। यहां 'कृत' शब्द कृदन्त है। 'क्त' प्रत्यान्त 'कृत्' शब्द का पूर्वम् क्रिया विशेषण के योग में–'कृतं पूर्वम् अनेन' इस विग्रह वाक्य में ''समपूर्वाच्च'' /5/2/87 सूत्र से तद्धित 'इनि' प्रत्यय करने पर 'कृतपूर्वी' शब्द सिद्ध होता है। फिर कर्म की अपेक्षा होने पर 'कट' शब्द का कर्म रूप में अन्वय होता है। 'कट' शब्द 'कृत' शब्द का कर्म है। अतः षष्ठी प्राप्त होती है किन्तु 'कृति' ग्रहण करने का फल यह है कि तद्धित प्रत्यय के आधिक्य से यहां षष्ठी नहीं हुई। यहां प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा हुई है।

93. ''उभयप्राप्तौ कर्मणि''/2/3/66।।

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात्। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन।

अर्थ :– जहां कृदन्त के योग में कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी की प्राप्ति होती है वहां कर्म में ही षष्ठी होती है कर्त्ता में नहीं। जैसे–आश्चर्यः गवां दोहः अगोपेन।

याख्या – पुनः एक ही कृदन्त प्रत्ययान्त शब्द के योग में जहां एक ही वाक्य में कर्त्ता और कर्म दोनों की प्राप्ति हो, वहां केवल कर्म में षष्ठी विभक्ति होगी।

यथा–**आश्चर्यः गवां देहः अगोपेन** (गोपाल से भिन्न व्यक्ति के द्वारा गायों का दुहना आश्चर्य की बात है)। प्रकृत वाक्य में 'दोहः' शब्द घञ् प्रत्यान्त कृदन्त है। 'अगोप' कर्त्ता है, तथा 'गो' कर्म है– इन दोनों में पूर्व सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु उक्त सूत्र से गो 'कर्म' में षष्ठी हुई है। यहां अनुक्त कर्त्ता अगोप में तृतीया विभक्ति हुई है।

वार्तिक ''स्त्री प्रत्यययोरकाऽकारयोर्नायं नियमः । भेदिका बिभित्सा वा रूद्रस्य जगतः।

उपर्युक्त सूत्र के अपवाद स्वरूप इस वार्तिक के अनुसार एक ही वाक्य में एक ही कृदन्त पद के योग में 'कर्त्ता' और 'कर्म' दोनों शब्दों में षष्ठी होती है। ण्वुल् (अक्) तथा 'अ' प्रत्य लगने के बाद यदि किसी शब्द में 'स्त्रियां क्तिन्' के अधिकार में विहित कोई स्त्रीप्रत्यय लगा हो तो ऐसे शब्द के योग में उपुर्यक्त सूत्र का नियम लागू नहीं होता।

यथा–**भेदिका बिभित्सा वा रूद्रस्य जगतः** (रूद्र द्वारा जगत् का विनाश या जगत् के विनाश की इच्छा) यहां भेदनं भेदिका। भेत्तुमिच्छा बिभित्सा। ये क्रमशः भिद् से ण्वुल् से अकादेश में टाप् और 'ईत्त्व' करने पर तथा सन्नन्त 'भिद्' से 'अ' प्रत्यात्' से अकार प्रत्यय, फिर टाप् करने पर निष्पन्न होत है। अब भेदिका रूद्रस्य जगतः का पूर्व वाक्य है– 'भिनत्ति रूद्रः जगत्' और 'बिभित्सा रूद्रस्य जगतः का 'बिभित्सते रूद्रः जगत्'। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि भेदिका और 'बिभित्सा' शब्दों के योग में दोनों उदाहरणों में क्रमशः कर्तृभूत 'रूद्र' तथा कर्मभूत 'जगत्' शब्दों में षष्ठी विभक्ति हुई है।

वार्तिक''शेषे विभाषा''। स्त्री प्रत्यये इत्येके। विचित्रा जगतः कृतिर्हरेः– हरिणा वा। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। शब्दानामनुशासनम् आचार्येण आचार्यस्य वा।

पूर्वोक्त 'अक' (ण्वुल्) और 'अकार' प्रत्ययों से 'शेष कृदन्त प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग में 'कर्त्ता' और 'कर्म' दोनों में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। पक्ष में कर्तरि तृतीया होगी। तात्पर्य यह है कि 'उभय प्राप्तौ कर्मणि' सूत्र के अनुसार कर्म में तो नित्य षष्ठी होती ही है, इस वार्तिक के अनुसार दोनों ही प्राप्ति रहने पर 'कर्त्ता' में यह विकल्प से होगी। कुछ वैयाकरणों के अनुसार 'अक' और 'अकार' प्रत्ययों से भिन्न किसी भी कृदन्त किन्तु स्त्रीप्रत्ययान्त ही शब्द के योग में यह विभाषा लागू होता है। वस्तुतः इस नियम को सीधे ''स्त्रीप्रत्यययोरका''–नियम का आनुमानिक नियम माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में स्त्री प्रत्यय की अनुवृत्ति होती है और 'शेषत्व' से अकारऽकारप्रत्ययभिन्नत्व अर्थ निकलता है।

यथा–**विचित्रा जगतः कृतिः हरेः हरिणा वा** (ईश्वर द्वारा दी गई यह जगत् की रचना विचित्र है) यहां कृत्प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्द 'कृति' के कारण कर्त्ता हरि में विकल्प से षष्ठी हुई है, पक्ष में कर्तरि तृतीया।

कुछ आचार्यो का यह मत है कि सामान्यतः सर्वत्र कृत्यप्रत्ययान्त के साथ कर्त्ता के विकल्प से षष्ठी होती है। यथा–**शब्दानाम् अनुशासनम् आचार्येण आचार्यस्य वा** (आचार्य, का या आचार्य के द्वारा शब्दों का अनुशासन) यहाँ 'अनुशासन शब्द का अर्थ है ''अनुशिष्यन्ते असाधुशब्देभ्यः प्रविभज्य बोध्यन्ते येन इति अनुशासनम्''। अनुशासन शब्द कृत्यप्रत्यय 'ल्युट्' करने पर 'यु' को अन आदेश करने पर बना है। इसके योग में उसके कर्त्ता आचार्य में विकल्प से 'षष्ठी' विभक्ति हुई है। पक्ष में तृतीया हाती है।

94. क्तस्य च वर्तमाने'' /2/3/67।। वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। ''न लोकव्यय''– /2/3/69 इति निषेधस्यापवादः। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

र्थ – वर्तमान अर्थ में कहे 'क्त' (त) प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। ''न लोकाव्यय''– इत्यादि अग्रिम सूत्र का यह अपवाद है। जैसे– राज्ञां मतः बुद्धिः पूजितः वा।

व्याख्या – वर्तमान काल के अर्थ में लगे 'क्त' प्रत्यय से निष्पन्न शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। ''मतिबुद्धि पूजार्थेभ्यश्च'' सूत्र से मत्यर्थक, बुद्धय्र्थक तथा पूजार्थक धातुओं से यह 'क्त' प्रत्यय उक्त अर्थ में होता है। अतः अर्थ यह हुआ कि मत्यर्थक, बुद्धय्र्थक तथा पूजार्थक धातुओं से वर्तमानार्थक क्त प्रत्यय से निष्पन्न शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यह सूत्र ''न लोकाव्यय''– विहित षष्ठी निषेध के अपवाद स्वरूप है। वस्तुतः यह निषेध भूतकालिक क्त प्रत्यान्त शब्दों के साथ लागू होता है।

यथा–**राज्ञां मतः, बुद्धः पूजितो वा** (राजाओं द्वारा माना जाता है, जाना जाता है, और पूजा जाता है) यहां वर्तमान अर्थ में मन् = ज्ञाने, बुध् = अवगमने तथा पूज् = पूजायाम् धातुओं से क्त प्रत्यय हुआ है, अतः इनके योग में यहां उक्त सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है राज्ञाम्।

95.''अधिकरण वाचिनश्च'' /2/3/68 ।।

क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा।

अर्थ – अधिकरणवाची ''क्त' प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–इदम् एषाम् आसितं, शयितं, गतं, भुक्तं वा।

व्याख्या – प्रकृत सूत्र में मुख्य रूप से ''क्तस्य च वर्तमाने''/2/3/67 सूत्र से 'क्त' की अनुवृत्ति अपेक्षित है। शेष अनुवृत्ति पूर्ववत्। है अतः यह सूत्र भी ''न लोकाव्यय''– इस निषेध का अपवाद है। तदनुसार सूत्रार्थ होगा कि जब भूताकालीन 'क्त' प्रत्यय किसी अधिकरण का बोध कराता हो तो उसके योग में अनुक्त कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा– **इदम् एषाम् आसितम् (**यह इनका आसन है)

इदम् **एषाम् शयितम्** (यह इनका मार्ग है)

इदम् **एषां गतम्** (यह इनका मार्ग है)

इदम् **एषां भुक्तम्** (यह इनका भोजन पात्र है) यहां उक्त सूत्र से अधिकरण अर्थ में 'क्त' प्रत्यय करने पर अनुक्त कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति हुई है– एषाम्। इनको अधिकरण वाची इसलिए कहते हैं –

आस्यते अस्मिन् इति आसितम् – जिस पर बैठा जाय।

शीयते अस्मिन् इति शयितम् – जिस पर सोया जाये।

गम्यते अस्मिन् इति गतम् – जिस पर चला जावे (गमन क्रिया)

भुज्यते अस्मिन् इति भुक्तम् – (जिस में भोजन किया जावे– पात्र)

96. ''न लोकाव्ययनिष्ठाखर्थतृनाम्'' /2/3/69 ।।

एषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात्। लादेशाः– कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टि हरिः। उ– हरिं दिदृक्षुः अलङ्करिष्णुर्वा। उक् – दैत्यान् धातुको हरिः ।

अर्थ – इनके योग में षष्ठी नहीं होती। इसके अनुसार 'लादेश', 'उ' 'उक' 'अव्यय', 'निष्ठा' 'खलर्थक' तथा 'तृन्' प्रत्याहार के अन्तर्गत समाविष्ट प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होगी।

व्याख्या – ''कर्तृ कर्मणोः कृति'' सूत्र से प्राप्त षष्ठी का यहां उक्त सूत्र द्वारा निषेध किया जा रहा है। सूत्र में 'न' पद निषेध का वाचक है। जिन कृत प्रत्ययों के योग में कर्त्ता एवं कर्म में षष्ठी का निषेध किया गया है उन कृत् प्रत्ययों के योग में कर्त्ता एवं कर्म में षष्ठी का निषेध किया गया है उन कृत् प्रत्ययों का परिगणन उक्त सूत्र में किया गया है। वे कृत् प्रयत्य निम्न है –1. लादेश, ल के स्थान पर होने वाले शत्, शानच्, कानच्, क्वसु, कि, किन, आदेश। 2. उ प्रत्यय तथा उकारान्त प्रत्यय। 3. उकञ् प्रत्यय, 4. कृदन्त के अव्यय, मान्त, एजन्त, क्त्वा, तुमुन् आदि, 5. निष्ठा–क्त और क्तवतु प्रत्यय, 6. खलर्थ प्रत्यय–खल्, 7.तृन् प्रत्यय–इसके अन्तर्गत् ''लट+ शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'' 3/2/124 सूत्र के तृ से प्रारंभ कर 'तृन्' सूत्र के नकारपर्यन्त आये हुए प्रत्ययों का समावेश होता है अतः एवं शानन्, चानश् तथा कर्त्ता में शतृ इन प्रत्ययों का इसमें संग्रह होता है। फलतः इन प्रत्ययों के योग में षष्ठी नहीं

होती। **1–लादेश–कुर्वन् कुर्वाणः वा सृष्टिं हरिः** (सृष्टि को करता हुआ हरि) यहां कुर्वन् शब्द शतृ प्रत्ययान्त है–कृ + शतृ – कुर्वन् तथा कुर्वाणः शानच् प्रत्ययान्त है– कृ + शानच् – कुर्वाणः शतृ और शानच् प्रत्यय लादेश (लट् लकार) कहलाते है। इनकी कृत् संज्ञा भी होती है। इनके योग में ''कर्तृ कर्मणोः कृति'' से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है तथा ''न लोकाव्यय'' से निषेध होता है तथा कर्म में द्वितीया होती है।

2. उ प्रत्यान्त का उदाहरण – हरिं दिदृक्षुः (हरि दर्शन का इच्छुक) यहां दिदृक्षु सन्नत् दृश् धातु से ''सनाशंसाभिक्ष उः'' /3/2/167 सूत्र से उ प्रत्यय होकर बनता है। इसके योग में हरि में हरि में षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी परन्तु उक्त सूत्र ये निषेध हो गया तथा कर्म में द्वितीया होती है।

हरिम् अलंकरिष्णुः (हरि को अलंकृत करने वाला) यहां अलं पूर्वक कृञ् धातु से (अंलकृञ्निराकृञ्प्रयोजनोत्पचोत्पतोन्मदरूच्य्पत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच्) इष्णुच् प्रत्यय हुआ है। सूत्र में 'उ' से उकारान्त कृदन्त लिया जाता है अत एव उक्त सूत्र से यहाँ भी षष्ठी का निषेध होकर कर्म में द्वितीया ही होती है।

3. उक प्रत्ययान्त का उदाहरण–दैत्यान् घातुकः हरिः (दैत्यों को मारने वाले हरि) यहां धातुक शब्द हन् धातु से (लषपतपदस्थाभूवृषहनकमणमशृभ्य उकञ्) 3/2/154 उकञ् प्रत्यय होकर बनता है। यह कृत् प्रत्ययान्त शब्द है। इसके योग में प्राप्त षष्ठी का उक्त सूत्र द्वारा निषेध होकर कर्म में द्वितीया होती है–दैत्यान् ।

वार्तिक कमेरनिषेधः लक्ष्म्या कामुको हरिः । अव्ययम् जगत् सृष्ट्वा। सुखं कर्तुम् निष्ठा–विष्णुना हता दैत्याः। दैत्यान् हतवान् विष्णुः। खलर्थाः ईषत्करः प्रपंचो हरिणा। तृन् इति प्रत्याहारः। 'शतृशानचौ' इति तृ शब्दादारभ्य आतनो नकारात्। शानन्सोमं पवमानः। चानश्–आत्मानं मण्डयमानः । शतृ देवम् अधीयन्। तृन्–कर्त्ता, लोकान् ।

'उक' प्रत्ययान्त 'कम' धातु के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होता।

यथा–**लक्ष्म्या कामुकः हरिः** (हरि लक्ष्मी के इच्छुक है) यहां षष्ठी का निषेध होने से उक्त वार्तिक से 'लक्ष्म्याः' में षष्ठी विभक्ति हुई है।

4. अव्यय प्रत्ययान्त का उदाहरण – जगत् सृष्ट्वा हरिः आस्ते (संसार की रचना करके हरि विराजमान है) यहाँ सृष्ट्वा शब्द सृज् धातु से (समान कर्तृकयोः पूर्वकालेः) 3/3/21 इस सूत्र से क्त्वा प्रत्यय करने पर 'सृष्टवा' तथा ''क्त्वातोसुन्कसुनः /1/1/40 से अव्यय संज्ञा। यहां भी 'न' लोकाव्यय'– सूत्र से अव्यय प्रत्यान्त शब्द के योग में षष्ठी का निषेध होता है, अत एव यहाँ भी षष्ठी विभक्ति न होकर कर्म में द्वितीया हुई है–जगत्।

5. भूतकालिक निष्ठा प्रत्यान्त के उदाहरण– विष्णुना हता दैत्याः (विष्णु के द्वारा दैत्य मारे गये) वहां हन् धातु से (निष्ठा 3/2/102 से) भूतार्थ में क्त प्रत्यय करने पर 'हतः' बना। यहां कर्त्ता उक्त न होने से तृतीया विभक्ति हुई है?

विष्णुः दैत्यान् हतवान् (विष्णु ने दैत्यों को मारा) यहां 'हन्' धातु से 'निष्ठा' 3/2/102 से क्तवतु प्रत्यय करने पर 'हतवान्' बना। यहां उक्त कर्त्ता विष्णु में प्रथमा विभक्ति हुई है तथा अनुक्त कर्म में षष्ठी न होकर द्वितीया हुई है।

6. खलर्थ प्रत्ययान्त का उदाहरण–ईषत्करः प्रपंचो हरिणा, (हरि के लिए संसार रूपी प्रपंच सरल है) यहां ईषत् कृञ् से ''ईषद् दुःसुषु कृच्छ्रार्थेषु खल्'' /3/3/126 सूत्र से कर्म वाच्य में 'खल्' प्रत्यय होने के कारण 'कर्त्ता' अनुक्त है। इसके योग में षष्ठी विभक्ति प्राप्ती थी उसका निषेध ''न लोकाव्यय''– से किया गया है। अतः कर्त्ता हरि में तृतीया विभक्ति हुई है।

7. तृन् प्रत्ययान्त का उदाहरण–इसके अन्तर्गत शानन्, चानश्, शतृ तथा तृन् प्रत्यय आते हैं–इन प्रत्ययों के योग में षष्ठी नहीं होती है।

शानन्–सोमं पवमानः (सोम को पवित्र करता है) यहाँ पूङ् धातु से ''पूङ्यजोः शानन्''/3/2/128 से शानन् प्रत्यय करने पर तथा ''आनेमुक्'' 7/2/82 से मुक् आगम करने पर पवमानः बनता है यहां शानन् प्रत्यय कर्त्ता में होता है तथा कर्म अनुक्त होने से षष्ठी न होकर 'सोमं' में द्वितीया होती है।

चानश्–आत्मानं मण्डयमानः (स्वयं को सजाता हुआ) यहां मण्डि से ''ताच्छील्य वयोवजन शक्तिषु चानश् '' से चानश् प्रत्यय, मुक् का आगम होने पर 'मण्डयमान' बनता है। अतः चानश् प्रत्यय कर्त्ता में होने के कारण कर्म अनुक्त होने से षष्ठी न होकर अनुक्त कर्म ''आत्मानम्'' में द्वितीया विभक्ति हुई है।

शत्–प्रत्यय–वेदम् अधीयन् (वेद को पढ़ता हुआ) यहीं अधिपूर्वक इङ् से ''इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि'' 3/2/130 से शतृ प्रत्यय होने पर 'अधीयन्'' बना। यहां ''शत्'' कर्त्ता में हुआ है अतः अनुक्त कर्म विदम् में षष्ठी न होकर द्वितीया विभक्ति हुई है। यह शर्ता प्रत्यय लादेश से भिन्न है।

तृन् प्रत्यय–कर्तृ लोकान् (संसार को रचने वाला) यहाँ कृ धातु से 'तृन्' 3/2/135 से तृन् प्रत्यय करने पर 'कर्त्ता' कर्तृवाच्य का है। अतः कर्म अनुक्त होने से षष्ठी न होकर लोकान् में कर्म में द्वितीया हुई है।

वार्तिक– द्विषः शतुर्वा मुरस्य मुरं वा द्विषन् ''सर्वोऽयं कारकषष्ठयाः प्रतिषेधः। शेषे षष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। नरकस्य विष्णुः शतृ प्रत्ययान्त द्विष् धातु के योग में षष्ठी विभक्ति का विकल्प से निषेध होता है।

यथा–मुरस्य मुरं वा द्विषन् (मुर नामक राक्षस के शत्रु) यहां 'द्विष्' धातु से ''द्विषोऽमित्रे'' /3/2/31 से शतृ प्रत्यय करने पर 'द्विषन्' शब्द बना है। अनुक्त कर्म होने से प्रकृत सूत्र से नित्य षष्ठी का निषेध प्राप्त रहा, उक्त वार्तिक से विकल्प से षष्ठी का निषेध हुआ, अतः षष्ठी होने पर 'मुरस्य' तथा अनुक्त कर्म में द्वितीया होने से 'मूरं' बना। यह शतृ प्रत्यय भी लादेश नहीं है।

व्याख्या – प्रकृत सूत्र से षष्ठी का निषेध 'कर्त्ता' और 'कर्म' में विहित कारक षष्ठी का ही है, शेष षष्ठी का नहीं। इस विषय में एक नियम ध्यातव्य है ''अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा। ''इसके अनुसार समीपस्थ की ही विधि या निषेध होता है। फलतः इस निषेध की प्रवृत्ति ''कर्तुकर्मणोः कृति'' इत्यादि समीपस्थ सूत्रों तक ही होती है। दूरस्थ सूत्र 'षष्ठी शेषे' में इस निषेध की प्रवृत्ति न होने से शेष षष्ठी होती है। **अतः ब्राह्मणस्य कुर्वन् हरिः** । (ब्राह्मण को बनाता हुआ हरि)

नरकस्य जिष्णुः (नरकारसुर राक्षस को जीतने वाला) उक्त दोनों उदाहरणों में शेषत्व की विवक्षा में ब्राह्मण तथा नरक में षष्ठी हुई है।

97. ''अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः– /2/3/70

भविष्यत्कस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न स्यात्। सतः पालकोऽवतरति। व्रजं गामी। शतं दायी।

अर्थ – भविष्यत् अर्थ में कहे हुए 'अक' प्रत्यय तथा भविष्यत् और आधमर्ण्य (कर्जदार) अर्थ में उक्त् 'इन्' इन दोनों प्रत्ययों के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती।

व्याख्या – पूर्व सूत्र से ही षष्ठी निषेध का विधान किया जा रहा है। अतः 'न लोकाव्यय निष्ठाखलर्थतृनाम्' /2/3/69 सूत्र से 'न' की अनुवृत्ति आती है साथ ही षष्ठी पद 'षष्ठी शेषे' से अनुवृत्ति परक है। तदनुसार यदि अक् (ण्वुल्) प्रत्यय भविष्यत् काल के अर्थ में और इन प्रत्यय (इनि) उस भविष्यत् अर्थ में ही, या आधमर्ण्य अर्थ में लगा हो तो उनसे निष्पन्न शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होगी। यद्यपि सूत्र में 'अक' और 'इनि' के ठीक सम्मुख इसी क्रम में भविष्यत् और 'आधमर्ण्य' की स्थिति है, तथापि यथासंख्य अर्थ संभव नहीं क्योंकि 'इन्' प्रत्यय 'आधमर्ण्य' के अर्थ में भी होता है। अतः यदि 'अक' आधमर्ण्य अर्थ में होता है तो दोंनों प्रत्यय दोनों अर्थो में विहित कहे जा सकते थे। वस्तुतः भाष्यकार ने भी 'अकस्यभविष्यति' एवं ''इन अधमर्ण्ये'' च इस प्रकार सूत्र का योग विभाग करके व्याख्या की है। अब प्रसंग प्राप्त 'अक' (ण्वुल्) प्रत्यय 'भविष्यति गम्यादय' अधिकार में ''तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'' से विहित ही गृहीत् है।

यथा– सतः पालकः अवतरति (सज्जनों का पालन करने वाला अवतार लेता हैं) यहाँ पालि धातु से 'ण्वुल' प्रत्यय करने पर अकादेश होने पर भविष्यत् अर्थ में पालक शब्द निष्पन्न होता है। इसके योग में सत् शब्द से षष्ठी न होकर उक्त सूत्र से द्वितीया होती है–सतः। ''यहां कर्तृकर्मणोः कृति'' से षष्ठी विभक्ति प्राप्त है।

ब्रजं गामी– (व्रज को जाने वाला) यहां भविष्यत् अर्थ में 'गम्' धातु से ''आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनि'' सूत्र से णिनि प्रत्यय करने पर 'गामी' शब्द बनता है। इसके योग में 'व्रज' में षष्ठी विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति हुई–**व्रजम्।**

शत दायी – (सौ रूपये का देनदार) यहां आधमर्ण्य (कर्जदार) अर्थ में दाधातु से (आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः) सूत्र से णिनि प्रत्यय करने पर दायी शब्द बनता है। इसके योग में यहाँ 'शत' में ''कर्तृकर्मणोः कृति'' सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है तथा ''अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः'' सूत्र से षष्ठी निषेध होने पर कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है–शतम्।

98. ''कृत्यानां कर्तरि वा'' /2/3/71

कृत्यानां कर्तरि वा षष्ठी स्यात्। मया मम वा सेव्यो हरिः । कर्तरि इति किम्? गेयो माणवकः साम्नाम् । ''भव्यगेय–''3/4/68 इति कर्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म। अत्र योगो विभज्यते। कृत्यानाम्। उभयप्राप्तावपिनेति चानुवर्तते। तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन। ततः कर्तरि वा। उक्तोऽर्थः।

अर्थ – 'कृत्य' प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। जैसे–मया मम वा सेव्यो हरिः । 'कर्तरि' का क्या प्रयोजन है? गेयः माणवकः साम्नाम्। यहां भव्यगेय'' इत्यादि सूत्र से कर्त्ता में 'यत्' प्रत्यय का विधान होने से कर्म अनुक्त है। इस सूत्र का योग विभाग किया जाता है। सूत्र में कृत्यानां प्रथम पद है। यहां ''उभय प्राप्तौ'' तथा 'न' पदों की अनुवृत्ति आती है। इसका फल है– नेतव्याः व्रजं गावः कृष्णेन' (यहां षष्ठी का निषेध है) उसके बाद 'कर्तरि' है। इसका अर्थ पूर्व में कहा जा चुका है।

व्याख्या प्रकरणवश ''षष्ठी शेषे'' षष्ठी की अनुवृत्ति अपेक्षित है। कृदन्त के अन्तर्गत कुछ प्रत्यय है। जो 'कृत्य' कहलाते हैं। ये प्रत्यय है – यत्, ण्यत्, तव्य, अनीयर् आदि। यह दृष्टव्य है कि इन सभी प्रत्ययों में यकार है, जो वस्तुतः निष्पन्न शब्दों में भी रहता है। 'कृत' में यही यकार जोड़कर 'कृत्य' संज्ञा इन प्रत्ययों की गई है। इस सूत्र के अनुसार 'कृत्य' प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग में 'कर्त्ता' में 'विकल्प' से षष्ठी होती है। वस्तुतः ये कृत्य प्रत्यय भी कर्मवाच्यगत प्रत्यय है। लेकिन अपवाद स्वरूप 'कृत्य' प्रत्यय का कहीं कहीं कर्तृवाच्य गत विधान होता है।

अब ''उभयप्राप्तौ कर्मणि'' सूत्र के अनुसार कृत् प्रत्यय से निष्पन्न किसी शब्द के योग में एक ही वाक्य में कर्त्ता और कर्म दोनों रहने पर केवल कर्म में ही षष्ठी होती है। लेकिन यदि किसी कृत्य प्रत्यय से निष्पन्न शब्द के योग में एक ही वाक्य में कर्त्ता और कर्म दोनों रहे तो न कर्त्ता में और न कर्म में षष्ठी होती है। इसकी व्याख्या भाष्यकार ने सूत्रस्थ 'कृत्यानां' और 'कृर्तरि' का योग विभाग करके 'कृत्यानाम्' में उभयप्राप्तौ सूत्र से 'उभयप्रातौ' तथा 'न लोकाव्यय' सूत्र से 'न' की अनुवृत्ति करके की है।

यथा–**मया मम वा सेव्यो हरिः (**मेरे द्वारा हरि की सेवा करनी चाहिये) यहाँ सेव् धातु से कर्म में ''ऋहलोर्ण्यत् 3/1/124 से ण्यत् प्रत्यय करने पर सेव्य बना है जो कि कृत्य संज्ञक है। अतः उक्त सूत्र से कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी हुई (मम) तथा पक्ष में तृतीया विभक्ति होती है–मया।

'कृर्तरि' इति किम्? सूत्र में 'कर्तरि' शब्द क्यों कहा गया? इसलिए कि 'कृत्य' प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में ही विकल्प से षष्ठी का विधान करने के कारण **'गेयः माणवकः साम्नाम्'** (माणवक साम का गाय है) यहां गेय शब्द से गौ से आत्व गां से 'भव्यगेय' आदि सूत्र से कर्त्ता में यत् प्रत्यय होने पर बना है। यहां कर्म (सामन) अनभिहित है अतः 'साम्नाम्' में नित्य षष्ठी विभक्ति होती हैं।

अत्रेति– **''नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन** (कृष्ण को व्रज में गायें ले जानी हैं) यहाँ 'गावः' प्रधान कर्म है। प्रधान कर्म में ही 'तव्य' प्रत्यय हुआ है। 'व्रज' गौण कर्म तथा कृष्ण कर्त्ता है। ये दोनों अनुक्त है। अतः दोनों में षष्ठी प्राप्त है, किन्तु उक्त सूत्र से व्रज (कर्म) तथा 'कृष्णेन' (कर्त्ता) में षष्ठी विभक्ति नहीं होती अपितु क्रमशः द्वितीया और तृतीया विभक्तियाँ होती हैं।

99.तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्'' /2/3/72।।

तुल्याथैर्योगे तृतीया वा स्यात् पक्षे षष्ठी। तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। अतुलोपमाभ्यां किम्? तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

अर्थ – तुला और 'उपमा' दो शब्दों को छोड़कर शेष तुल्य अर्थ वाले शब्दों के योग में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है पक्ष में षष्ठी होती है। जैसे तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णेन कृष्णस्य वा। 'अतुलोपमाभ्यां का क्या प्रयोजन है? तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

व्याख्या – प्रसंगवश उपपद 'षष्ठी' का प्रकरण आरम्भ होता है। षष्ठी विभक्ति के प्रकरण में इस सूत्र का समावेश होने से सूत्र में निर्दिष्ट पाक्षिक तृतीया के न होने पर षष्ठी विभक्ति होगी। अतः सम्पूर्ण सूत्र में षष्ठी शेषे की अनुवृत्ति अपेक्षित है। तब सूत्र का वास्तविक अर्थ होता है कि तुला और उपमा दो शब्दों को छोड़कर (अतुलोपमाभ्यां तुला च उपमा च तुलोपमे न तुलोपमे अतुलोपमे ताभ्याम्) शेष तुल्यार्थक (तुल्यः, सदृशः समः, समानः) शब्दों के साथ विकल्प से तृतीया होगी। पक्ष में षष्ठी होगी।

यथा–**तुल्यः सदृशः, समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा** (कृष्ण के समान) यहाँ तुल्य, सदृश आदि तुल्यार्थक शब्दों के योग में उक्त सूत्र से कृष्ण में तृतीया विभक्ति करने पर 'कृष्णेन' तथा षष्ठी विभक्ति करने पर 'कृष्णस्य' हुआ है।

''अतुलोपमाभ्यां किम्? सूत्र में 'अतुलोपमाभ्यां' पद क्यों कहा गया? इसलिए की तुला एवं उपमा के योग में केवल षष्ठी विभक्ति ही हुई है– जैसे **तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति** (कृष्ण की समता नहीं है) यहां सम्बन्ध में षष्ठी हुई।

100. ''चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थ हितैः/2/3/73।।

एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा स्यात्। पक्षे षष्ठी आशिषि। आयुष्यं चिरं जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। एवं मद्रं भद्रें कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात्। आशिषि किम्? देवदत्तस्यायुष्यमस्ति। व्याख्यानात् सर्वत्राऽर्थग्रहणम्। मद्रभद्रयोः पर्यायत्वादन्यतरो न पठनीयः। इति षष्ठी।।

अर्थ – आशीर्वाद अर्थ में इनके योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। पक्ष में षष्ठी होगी। जैसे–आयुष्य चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। इसी प्रकार–मद्रम, भद्रम, कुशलम्, निरामय, सुखम्, शम्, अर्थः, प्रयोजनम् हितम्, पथ्यं वा भूयात्। 'आशिषि' का क्या प्रयोजन है? देवदत्तस्य आयुष्यम् अस्ति। सूत्रोक्त सभी शब्दों के समानार्थक शब्दों का ग्रहण पूर्वाचार्यों के व्याख्यान से ग्रहण किया जाता है। 'मद्र' और 'भद्र' इन दोनों में से पर्यायवाची होने के कारण किसी एक का ग्रहण नहीं करना चाहिये।

व्याख्या – उक्त सूत्र भी उपपद 'षष्ठी' का सूत्र है। यहां पूर्वसूत्र से ''अन्यतरस्याम्'' पद की तथा 'षष्ठी शेषे' से षष्ठी की अनुवृत्ति करने पर सूत्रार्थ होता है कि आशीर्वादार्थ में 'आयुष्य' (दीर्घायु, दीर्घजीवन), 'मद्र', 'भद्र' (कल्याण, शुभ), 'कुशल', (आरोग्य), 'सुख', अर्थ (प्रयोजन) और 'हित' (लाभ, सुख)– इन शब्दों के समानार्थक अन्य शब्दों के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है तथा पक्ष में षष्ठी भी होती है।

यथा–**आयुष्यं चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्** (कृष्ण की दीर्घायु हो) यहां 'आयुष्य' अर्थ में ही 'चिरंजीवितम्' पद है। अतः दोनों के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। पक्ष में षष्ठी होती है– कृष्णाय, कृष्णस्य वा भूयात् (कृष्ण का कुशल, शुभ, आनन्द, नीरोगता, सुख, कल्याण, सफलता, प्रयोजन, हित अथवा भला हो) यहां भी आशीर्वाद अर्थ होने से मद्रादि शब्दों के योग में विकल्प से चतुर्थी हुई। पक्ष में षष्ठी होती है। 'आशिषि' किम्–आशीर्वाद में चतुर्थी अथवा षष्ठी विभक्ति हो जाती है– ऐसा क्यों कहा गया? इसलिए कि आशीर्वाद देना अर्थ न होने पर–**देवदत्तस्य आयुष्यम् अस्ति** (देवदत्त का जीवन लम्बा है) इस वाक्य में आशीर्वाद या आशा करना अर्थ न होकर एक सामान्य तथ्य का कथन है। अतः केवल षष्ठी विभक्ति ही होती है।अति विशेष – सूत्रोक्त सभी शब्दों में समान अर्थ का ग्रहण होता है। अतः इनके पर्याय भी यहां समाविष्ट हैं। 'मद्र' और 'भद्र' शब्द पर्यायवाची है। अतः 'मद्र' और 'भद्र' में से किसी एक का ग्रहण नहीं होना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

1–प्रश्न –स्व स्वाभिभाव' आदि सम्बन्ध को क्या कहते हैं?
2–प्रश्न–शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति किस सूत्र से होती है?
3–प्रश्न–सम्बन्ध मे कौनसी विभक्ति होती है ?
4–प्रश्न–हेतुशब्द के योग में यदि उससे हेतु द्योत्य हो तो कौनसी विभक्ति होती है?
5–प्रश्न–षष्ठी हेतु प्रयोगे सूत्र का उदाहरण क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1–'षष्ठी शेषे सूत्र से होती है–
क– सम्प्रदानम् ख–षष्ठी विभक्ति
ग–अपादान घ– सबोधन

2– सम्बन्ध कितने प्रकार का होता है–
क– दो प्रकार का ख– एक प्रकार का
ग–तीन प्रकार का घ– चार प्रकार का

3– अन्नस्य हेतोः वसति में विभक्ति है।
क– सम्बोधन ख–चतुर्थी
ग– द्वितीया घ– षष्ठी

4– ग्रामस्य दक्षिणतः इसमें विभक्ति होती है।
क– सम्बोधन ख–चतुर्थी
ग– द्वितीया घ–षष्ठी

5– इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा में विभक्ति है–
क– द्वितीया ख–षष्ठी
ग– सप्तमी घ– चतुर्थी

5.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि इसमें कि कितने विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में केवल षष्ठी विभक्ति का अध्ययन किया गया है। शेष षष्ठी सम्बन्ध सामान्य में होती है अथवा सम्बन्ध विशेष में? उत्तर के रूप में यह कहा जा सकता है कि षष्ठी विभक्ति कहीं सम्बन्ध सामान्य में तथा कहीं सम्बन्ध विशेष में होती है। सामान्य के उदाहरण के रूप में ''मातुः स्मरति'' यह वाक्य देखा जा सकता है यहाँ ''मातृ सम्बन्धी स्मरण'' यह वाक्यार्थ है। विशेष के उदाहरण के रूप में 'राज्ञः पुरूषः यह प्रसिद्ध है, जहां षष्ठी शेष रूप स्वस्वामिभाव को अभिव्यक्ति कर रही है।षष्ठी विभक्ति के सभी सूत्रों का वर्णन किया गया है।

5.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
एषाम् आसितम्	यह इनका आसन है
एषाम् शयितम्	यह इनका मार्ग है
एषां गतम्	यह इनका मार्ग है
एषां भुक्तम्	यह इनका भोजन पात्र है
आस्यते अस्मिन् इति आसितम्	जिस पर बैठा जाय।
शीयते अस्मिन् इति शयितम्	जिस पर सोया जाये।
गम्यते अस्मिन् इति गतम्	जिस पर चला जावे गमन क्रिया

भुज्यते अस्मिन् इति भुक्तम्	जिस में भोजन किया जावे– पात्र
लादेश–कुर्वन् कुर्वाणः वा सृष्टिं हरिः	सृष्टि को करता हुआ हरि यहां कुर्वन् शब्द
हरिं दिदृक्षुः	हरि दर्शन का इच्छुक
हरिम् अलंकरिष्णुः	हरि को अलंकृत करने वाला

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–उत्तर– स्व स्वाभिभाव' आदि सम्बन्ध को शेष कहते हैं ।

2–उत्तर–'षष्ठी शेषे'

3–उत्तर –सम्बन्ध मे षष्ठी विभक्ति होती है ?

4–उत्तर–हेतुशब्द के योग में यदि उससे हेतु द्योत्य हो तो षष्ठी विभक्ति होती है?

5–उत्तर– अन्नस्य हेतोर्वसति।

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1–' ख–षष्ठी विभक्ति

2– क– दो प्रकार का

3– घ– षष्ठी

4– घ–षष्ठी

5– ख–षष्ठी

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–पुस्तक का नाम– लघुसिद्धान्त कौमुदीलेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाषक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण–
सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त
पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशक वाराणसी
3–पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्यलेखक का नाम– पतंजलि
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशक वाराणसी

5.8–उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदीलेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाषक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 .षष्ठी शेषे इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये

इकाई . 6 सप्तमी विभक्ति का सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 षष्ठी विभक्ति सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न–उतर

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 उपयोगी पुस्तंके

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1प्रस्तावना

व्याकरण 'शास्त्र से सम्बन्धित यह छठी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि अधिकरण कारक की आवश्यकता क्या है ? अधिकरण कारक किसे कहते है।

इस इकाई में मुख्य रूप से अधिकरण कारक के विषय में व्याख्या की गयी है आधार की अधिकरण संज्ञा होती है। वस्तुतः क्रिया का आधार ही अधिकरणसंज्ञक होता है। इसीलिए वृत्तिकार ने सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की है कि 'कर्त्ता' और 'कर्म' के द्वारा तन्निष्ठ क्रिया का आधार अधिकरण होता है।इस तरह 'भूतले घटः' प्रयोग में भी 'अस्ति' क्रिया का आधार समझना चाहिये।वस्तुतः विश्लेषण करने पर अधिकरण के अन्तर्गत दो स्थितियाँ होती है।

कारक छः प्रकारक के होते है– कर्ता , कर्म , कारण , सम्प्रदान अपादान अधिकरण। इन छः कारकों में अधिकरण कारक की व्याख्या की जा रही है–

6.2 उद्देश्य

इस इंकाई के अध्ययन के पष्चात् आप पाणिनि रचित व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण विभक्तियों सहित सूत्रों का ज्ञान करेंगे।

- अधिकरण कारक किसे कहते है इसके विषय में परिचित होंगे
- अधिकरण अर्थ में कौन सी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे
- आधार तीन प्रकार का होता है। है।इसके विषय में परिचित होंगे
- यस्य च भावेन भावलक्षणम्''सप्तमी विभक्ति होती है इसके विषय में परिचित होंगे

6.3 अधिकरण कारक सप्तमी विभक्ति

101. ''आधारोऽधिकरणम्'' /1/4/45

कर्तृ कर्म द्वारा तन्निष्ठ क्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञं स्यात्।

मूलार्थ–कर्त्ता एवं कर्म के द्वारा तन्निष्ठ क्रिया के आधार भूत कारक की अधिकरण संज्ञा होती है।

व्याख्या अतः आकांक्षा उपस्थित होती है कि किसका आधार अधिकरण होता है। वस्तुतः क्रिया का आधार ही अधिकरण संज्ञक होता है। इसीलिए वृत्तिकार ने सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की है कि 'कर्त्ता' और 'कर्म' के द्वारा तन्निष्ठ क्रिया का आधार अधिकरण होता है।

इस तरह 'भूतले घटः' प्रयोग में भी 'अस्ति' क्रिया का आधार समझना चाहिये।

वस्तुतः विष्लेषण करने पर अधिकरण के अन्तर्गत दो स्थितियाँ होती है। इनमें से एक में तो क्रिया का साक्षात् सम्बन्ध रहता है जैसे–'मार्गे गच्छति' में, किन्तु दूसरी स्थिति में वह साक्षात् नहीं रहता है जैसे–भूतले घटः में।

102.''सप्तम्यधिकरणे च'' /2/3/3

अधिकरणे सप्तमी स्यात्। चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः। औपष्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा। कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति वनस्य दूरे अन्तिके वा। ''दूरान्तिकार्थेभ्य– इति विभक्तित्रयेण सह चतस्त्रोऽत्र विभक्तयः फलिताः।

अर्थ–अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। सूत्रस्थ 'च' पद से 'दूर' और 'अन्तिक का भी ग्रहण होता है। आधार तीन प्रकार का होता है।

1.औपश्लेषिक, 2. वैषयिक और 3. अभिव्यापक। उदाहरण– कटे आस्ते, स्थाल्यां

पचति। 2. मोक्षे इच्छास्ति 3. सर्वास्मिन् आत्मा अस्ति। दूराद्यर्थक–वनस्य दूरे अन्तिके वा। ''दूरान्तिकार्थेभ्यः''–सूत्र से विहित तीन विभक्तियों के सहित इस सप्तमी विभक्ति को मिलाने से चार विभक्तियां फलित हुई है।

व्याख्या–यह सूत्र सप्तमी विभक्ति का विधान करता है। यह आधार तीन प्रकार का होता है।

औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक। अतः तीनों आधार की अधिकरण संज्ञा होती है और जहॉ अधिकरण संज्ञा होती है वहा सप्तमी विभक्ति होती है–1. औपश्लेषिक आधार– उप समीपे, श्लेषः संयोगः, तेन निर्वृतः तत्र भवो वा औपश्लेषिक, इस व्युत्पति के अनुसार संयोगादि सम्बन्ध, इसलिए तत्प्रयोज्य आधार ही औपश्लेषिक कहलाता है। इन सबका उदाहरण दिया जा रहा है–

1.औपश्लेषिक का उदाहरण–

कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है) यहां पर बैठने वाले कर्त्ता का चटाई के साथ संयोग सम्बन्ध है। 'कट' औपष्लेषिक आधार है–अतएव 'कट' की ''आधारोऽधिकरणम्– से अधिकरण संज्ञा होकर –सप्तम्यधिकरणे च'' से सप्तमी विभक्ति होती है।

स्थाल्यां पचति (तपेली में पकाता है) यहां पर 'कर्म' चावल का –स्थाली (तपेली) के साथ संयोग सम्बन्ध है। अतः 'स्थाली' की अधिकरण संज्ञा होने पर सप्तमी विभक्ति होती है।

वैषयिक आधार का उदाहरण–

विषय से सम्बन्ध रखने वाला आधार वैषयिक कहॉ जाता है, वैषयिक आधार विषयता सम्बन्धकृत होता है। अर्थात् उसके साथ कर्त्ता का बौद्धिक सम्बन्ध होता है।

मोक्षे इच्छास्ति (मोक्ष में इच्छा है) यहां कर्त्ता की मोक्ष में इच्छा है। मोक्ष इच्छा का विषय है अतः यह वैषयिक आधार है। अत एव 'मोक्ष' की अधिकरण संज्ञा करने से अधिकरण में उक्त सूत्र से सप्तमी विभक्ति हुई है।

अभिव्यापक आधारः का उदाहरण–

जिसका आधेय के साथ सर्वावयत्वेन(अभिव्याप्नोति सर्वम्)सम्बन्ध हो वह अभिव्यापक आधार है अर्थात् जिससे कोई वस्तु समस्त अव्यवों में व्याप्त होकर रहती है।

सर्वस्मिन् आत्माऽस्ति (सब में आत्मा है) यहां आत्मा सब में व्यापक है अतः सर्व अभिव्यापक आधार है इसकी अधिकरण संज्ञा होकर इसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

तिलेषु तैलम् (तिलों में तेल है) यहाँ यद्यपि तिल और तैल का संयोग सम्भव है किन्तु देष विभाग न होने से 'संष्लेष' नहीं माना जा सकता। तैल (आधेय) के आधार का तिलों के साथ सर्वात्मना संयोग हे न कि किसी अवयव से, अतः अभिव्यापक आधार होने से सप्तमी विभक्ति होती है।

दूरान्तिकार्थक शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। उदाहरण– **वनस्य अन्तिके** (वन के समीपे) यहां 'दूर' और 'अन्तिक' शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। इस प्रकार 'दूरान्तिकार्थेभ्यः' सूत्र से होने वाली तीन विभक्तियों (द्वितीया, पञ्चमी तथा तृतीया) सहित दूर और समीप अर्थवाले शब्दों में चार विभक्तियाँ (द्वितीया, तृतीया, पंचमी तथा सप्तमी) होती है

वार्तिक–''क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्''। अधीतीव्याकरणे, अधीतमनेनेति विग्रहे ''इष्टादिभ्यश्च'' /5/2/88 इति कर्तरीनिः।

क्त प्रत्ययान्त शब्दों से 'इन' प्रत्यय करने के उपरान्त निष्पन्न हुए शब्दों के कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे–अधीती व्याकरणे। 'अधीतम् अनेन' इस विग्रह में 'इष्टादिभ्यश्च' सूत्र से कर्त्ता अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय हुआ है।

अधीती व्याकरणे (जिसने व्याकरण पढ लिया है) यहां 'अधीती' शब्द अधीत (अधि + इङ् + क्त) से कर्त्ता अर्थ में ''इष्टादिभ्यष्च'' से इनि प्रत्यय होकर बना है। (अधीत + इन = अधीतिन् प्रथमा एक वचन अधीती व्याकरणमं अधीतवान्) यह अर्थ निकलता है। यहाँ व्याकरण कर्म है और उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है–व्याकरणे।

वार्तिक–"साध्वसाधुप्रयोगे च"। साधुः कृष्णो मातरि। असाधुर्मातुले। '
साधु' एवं 'असाधु' शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है।
साधुः कृष्णः मातरि (कृष्ण माता के प्रति अच्छा है) यहां 'साधु' शब्द के योग में 'मातरि' में इस वार्तिक से सप्तमी विभक्ति होती है। **कृष्णः असाधु मातुले** (कृष्ण मामा के लिए अच्छा नहीं है) यहां 'असाधु' शब्द के योग में 'मातुले' में इस वार्तिक से सप्तमी विभक्ति होती है।

वार्तिक–"निमित्तात्कर्मयोगे"। निमित्तमिह फलम्। योगः संयोगसमवायात्मकः।।
चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः।। (इति भाष्यम्)
हेतौ तृतीयाऽत्र प्राप्ता तन्निवारणार्थमिदम्। सीमा अण्डकोषः। पुष्पकलको गन्धमृगः। योग विशेषे किम् ? वेतनेन धान्यं लुनाति।

अर्थ–इस वार्तिक में निमित्त का अर्थ है फल। 'योग' शब्द का तात्पर्य यहां संयोग और समवाय दोनों से है। अतः जिस निमित्त या प्रयोजन से कोई क्रिया की जाती है, वह निमित्त या प्रयोजन यदि क्रिया के कर्म से युक्त हो तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। अर्थात् यदि क्रिया का प्रयोजन क्रिया के कर्म से युक्त हो तो प्रयोजन वाचक शब्द से सप्तमी होती है।

यथा–1. **चर्मणि द्वीपिनं हन्ति** (चर्म के लिए व्याघ्र को मारता है) यहां चर्म (फल) के लिए व्याघ्र की हत्या करता है। चर्म 'द्वीपी' (व्याघ्र) रूप में समवेत है अर्थात् समवाय सम्बन्ध से रहता है। अतः उक्त वार्तिक से चर्म में सप्तमी विभक्ति होती है–चर्माणि

2. **दन्तयोः हन्ति कुञ्रम्** (दांतो के लिए हाथी को मारता है) यहाँ दन्त रूपी फल के लिए हाथी की हत्या करता है। दन्त कुञ्जर (हाथी) रूप कर्म में समवाय सम्बन्ध से रहता है। अतः दन्त में सप्तमी विभक्ति हुई है–दन्तयोः।

3. **केशेषु चमरीं हन्ति** (बालो के लिए चमरी नामक मृग विषेष को मारता है) यहाँ केश (फल) के लिए मृग की हत्या करता है। केश चमरी (मृग) रूप कर्म में समवाय समबन्ध से रहता है। अत इस वार्तिक से केश में सप्तमी विभक्ति होती है–केशेषु

4. **सीम्नि पुष्कलकः हतः** (अण्डकोष के लिए कस्तूरी मृग को मारा) यहाँ भी सीमन् (फल) फल के लिए पुष्कलक नामक मृग की हत्या हुई है। सीमन् = अण्डकोष पुष्कलक = मृग रूप में समवाय सम्बन्ध से रहता है। अतः उपर्युक्त वार्तिक से 'सीम्नि' में सप्तमी विभक्ति होती है।

प्रकृत वार्तिक बनाने का फल यह है कि 'हेतौ' –2/3/23 सूत्र से प्राप्त तृतीया विभक्ति यहाँ न हो जावे। उक्त चारों उदाहरणों में "तादर्थ्ये चतुर्थीवाच्या" वार्तिक से प्राप्त चतुर्थि विभक्ति का उक्त वार्तिक से निवारण होता है।

योगे विशेषे किम् ? योग विशेष या किसी विशेष सम्बन्ध में संयोग या समवाय सम्बन्ध में ही सप्तमी क्यों कहा ? इसलिए कि "वेतनेन धान्यं लुनाति (वेतन के लिए धान्य काटता है) यहाँ 'वेतन' का 'धान्य' के साथ संयोग अथवा समवाय सम्बन्ध नहीं अतः यहाँ सप्तमी विभक्ति न होकर 'हेतौ' सूत्र से वेतन में तृतीया विभक्ति ही होगी–वेतनेन।

103."यस्य च भावेन भावलक्षणम्" 2/3/37

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात्। गोषु दुह्यमानासु गतः।

अर्थ–जिसकी क्रिया से कोई दूसरी क्रिया लक्षित होती है उससे सप्तमी होती है। जैसे–गोषु दुह्यमानासु गतः।

व्याख्या–प्रकरणवशात् 'सप्तम्यधिकरणे' च' /2/2/36 से अधिकरण की अनुवृत्ति आ रही है। यहाँ भाव का अर्थ क्रिया है। क्रिया या व्यापार भी कर्त्ता अथवा कर्म के आश्रित रहती है। तदनुसार सूत्र का अर्थ हुआ कि जिस कृर्तनिष्ठ या कर्मनिष्ठ क्रिया से किसी अन्य क्रिया का होना सूचित हो तब उस कर्तृनिष्ठ या कर्मनिष्ठ क्रिया में तथा उसके कर्त्ता एवं कर्म में भी 'सप्तमी' विभक्ति होती है।

उदाहरण–गोषु दुह्यमानासु गतः (गायो के दुहे जाने पर वह गया) यहाँ गायों की दोहन क्रिया से किसी की गमन क्रिया लक्षित होती है। अतः उक्त सूत्र से 'गोषु' तथा

दुह्यमानासु में सप्तमी विभक्ति हुई है।

वार्तिक–."अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च"। सत्सु तरत्सु असन्त आसते। असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति। सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति। असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति।

अर्थ–योग्य के कर्तृत्व बतलाने में अयोग्य के अकर्तृत्व बतलाने में या इसके विपरीत र्काय बतलाने में (कर्ता और तद्वोधक क्रिया) इन दोनों में सप्तमी विभक्ति होती है।

व्याख्या– जिस कार्य के लिए जो उपयुक्त या योग्य है, वे 'अर्ह' कहलाते हैं तथा जो र्काय के लिए अनुपयुक्त या अयोग्य होते है वे 'अनर्ह' कहलाते है। अतः योग्यों का कर्तृत्व प्रकट करने में तथा अयोग्यों का अकर्तृत्व प्रकट करने में और इसकी विपरीतता में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा–अर्हाणां कर्तृत्व का उदाहरण–

सत्सु तरस्तु असन्त आसते (सज्जनों का उद्धार होते हुए असज्जन रह जाते है) यहां सज्जनों का तरना उचित है, वे तरण क्रिया के कर्त्ता है। अतः 'सत्सु' में उक्त वार्तिक से सप्तमी विभक्ति हुई है तथा 'सत्सु' के समान इसके विशेषण 'तरस्तु' में भी सप्तमी विभक्ति हो जाती है। अनर्हाणाम् अकर्तृत्व का उदाहरण–

असत्सु तिष्ठत्सु सन्तः तरन्ति (असज्जनों के रहते सज्जन पार हो जाते है) यहां असज्जनों का तरना अनुचित है तथा 'तिष्ठत्सु' से तरण क्रिया में 'अकर्तृत्व' का बोध होता है। अतः उक्त वार्तिक से 'असत्सु' में सप्तमी विभक्ति हो जाती है। तद्वैपरीत्ये (उसकी विपरीत दषा में) सप्तमी का उदाहरण

सत्सु तिष्ठत्सु असन्तः तरन्ति (सज्जनों के रहते हुए असज्जन तर जाते है) यहाँ सज्जनो का तरना उचित है किन्तु उनका न तरना अकर्तृत्व को प्रकट करता है अतः 'सत्सु' तथा 'तिष्ठत्सु' में सप्तमी विभक्ति हुई है। जिनका करना उचित नहीं उनका कर्तृत्व प्रकट करने में सप्तमी होती है।

असत्सु तरस्तु सन्तः तिष्ठन्ति (असज्जनों के पार होते हुए सज्जन रह जाते है) यहां अयोग्य कर्तृत्व प्रकट हो रहा है। अतः उक्त वार्तिक से असत्सु तथा उसके विशेषण 'तरस्तु' में सप्तमी विभक्ति होती है।'

104. "षष्ठीचानादरे" 2/3/38

अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठी सप्तम्यौ स्तः। रूदति रूदतो वा प्राव्राजीत्। रूदन्तं पुत्रादिकम् अनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः।

अर्थ–अनादर की अधिकता प्रकट करने पर भाव लक्षण में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। **जैसे रूदति रूदतः वा प्राव्राजीत्।** इसका अर्थ है कि रोते हुए पुत्रादि को छोडकर सन्यास ले लिया।

व्याख्या –'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इस सूत्र से सम्बद्ध अर्थ को अभिलक्षित कर षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति का विधान किया जा रहा है। तदनुसार सूत्रार्थ होगा कि जिसकी क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित हो उसमें और उसकी जो क्रिया जो उसमें सप्तमी क्रिया के अतिरिक्त षष्ठी विभक्ति भी होगी, यदि उसमें अनादर का भाव भी सूचित हो तो। "यस्य च भावेन"–और इस सूत्र में केवल यही अन्तर है कि वहाँ जहाँ केवल क्रियान्तर लक्षण भाव की आवश्यकता है तथा यहां अतिरिक्त रूप से अनादर भाव भी आवश्यक है।

रूदति रूदतः वा प्राव्राजीत (रोते हुए पुत्र आदि की अपेक्षा करके सन्यासी हो गया) यहां 'रोदन' क्रिया से 'प्रव्रजन' क्रिया अभिलक्षित होती है तथा अनादर का भाव भी प्रकट होता है, अतः उक्त सूत्र से 'सप्तमी' और 'षष्ठी' विभक्तियां हुई है–रूदति, रूदतः वा। यहाँ धातु का अर्थ होगा अनादर भाव से विषिष्ट 'प्रव्रजन'।

105. "स्वामीस्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च" /2/3/39//

एतैः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। षष्ठायामेव प्राप्तायां पाक्षिकसप्तम्यर्थ वचनम्। गवां गोषु वा स्वामी। गवां गोषु वा प्रसूतः। गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः।

अर्थ–इन सातों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी होती है। षष्ठी प्राप्त होने पर भी पाक्षिक सप्तमी कही गई है। जैसे– गवां गोषु वा स्वामी। गवां गोषु वा प्रसूतः। गायों का ही

उपयोग करने के लिए उत्पन्न हुआ है।

व्याख्या –सूत्रस्थ चकार से षष्ठी और सप्तमी दोनों की ही अनुवत्ति होती है। तदनुसार सूत्रार्थ होगा कि स्वामी (प्रभु), ईश्वर (प्रभु), अधिपति (स्वामी), दायाद (अंशहर), साक्षी (गवाह), प्रतिभू और प्रसूत (उत्पन्न) – इन सात शब्दों के योग में ये विभक्तियाँ होती है। वस्तुतः शेष षष्ठी के सिद्ब होने पर भी सप्तमी के समुच्चयार्थ पृथक करके दस सूत्र का विधान किया गया है। स्वामी, ईश्वर तथा अधिपति परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं, पुनश्च इनका पृथक् निर्देश क्यों ? इसलिए कि इन तीनों के योग में ही ये दोनों विभक्तियां होगी, अन्य पर्यायवाची के योग में नहीं होगी।

गवां गोषु वा स्वामी (गायों का मालिक या स्वामी) यहाँ उक्त सूत्र से 'स्वामी' शब्द के योग में विकल्प से 'गवाम्' तथा 'गोषु' में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति हुई है। **गवां गोषु वा प्रसूतः** (गायों में उत्पन्न हुआ है) तात्पर्य है कि गायों को प्राप्त करने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। यहाँ भी 'प्रसूत' शब्द के योग में 'गवां' तथा 'गोषु' में षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति हुई है। इसी प्रकार पृथिव्याः पृथिव्यां वा ईश्वरः, ग्रामाणां ग्रामेषु वा अधिपतिः पित्रंषस्य पित्रंषे वा दायादः, व्यवहारस्य व्यवहारे वा साक्षी, दर्शनस्य दर्शने वा प्रतिभूः इत्यादि प्रयोगों में षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होंगी।

106. ''आयुक्त् कुशलाभ्यां चासेवायाम्'' /2/3/40

आभ्यां योगे षष्ठी सप्तम्यौ स्तः तात्पर्येऽर्थे। आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने–हरिपूजनस्य वा। 'आसेवायाम्' किम् ? आयुक्तो गौः शकटे। ईषद्युक्तः इत्यर्थः।

अर्थ–तात्पर्य अर्थ में आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। आयुक्त का अर्थ लगाया हुआ है। जैसे–आयुक्त कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा।आसेवायाम्–क्यों कहा ? आयुक्तो गौः शकटे(बैल गाडी में जुटा हुआ है)

व्याख्या –पूर्ववत् 'षष्ठी' और सप्तमी की अनुवृत्ति आ रही है। 'आसेवा' अर्थात् तत्परता अर्थ गम्यमान होने पर आयुक्त तथा कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ होंगी। आयुक्त का अर्थ है व्यापारीत अर्थात् लगा हुआ।

आयुक्तः कुशलो वा हरीपूजने हरीपूजनस्य वा (हरि की पूजा में पूर्णरूप से लगा हुआ या प्रवीण) यहाँ उक्त सूत्र से 'आयुक्त' और 'कुशल' शब्दों के योग में 'षष्ठी' और सप्तमी विभक्ति हुई है– हरिपूजनस्य, हरिपूजने वा। 'आयुक्त' का अर्थ ''सम्यक् युक्तः''। 'आसेवा' का अर्थ है–समन्तात् सेवा, (तत्परता से कार्य में पूर्ण रूप से लगा रहना) ''आसेवायाम्'' जहाँ तत्परता अर्थ होता है वहीं आयुक्त तथा कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी होती है, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि 'आसेवा' या 'श्रद्धापरता' अर्थ नहीं रहने पर अधिकरण में केवल सप्तमी होगीं यथा–आयुक्तः गौः शकटे (गाड़ी में जुड़ा हुआ बैल) यहाँ 'आयुक्त' का अर्थ केवल लगा हुआ है अतः 'शकट' शब्द में सप्तमी विभक्ति हुई है। 'कुशल' शब्द के साथ भी श्रद्धा विषयक अर्थ नहीं होने पर ऐसी ही होगी।

107.''यतश्च निर्धारणम्'' /2/3/41।।

जाति गुणायिसंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः।

अर्थ– जाति, गुण, क्रिया तथा संज्ञा की विशेषता के कारण किसी एक का समुदाय से पृथक् करना निर्धारण कहलाता है। जिसमें से निर्धारण किया जाता है, उसमें षष्ठी या सप्तमी विभक्तियाँ होती है।

व्याख्या–'षष्ठी' तथा 'सप्तमी' दोनों पदों की अनुवृत्ति पूर्ववत् आ रही है। नियमानुसार पंचम्यन्त 'यतः' पद के कारण 'ततः' पद का अध्याहार किया जाता है। अतः सूत्रार्थ होगा कि जहाँ से निर्धारण होता है उसमें षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती है। अर्थात् जिस प्रवत्ति निमित्त से निर्धारण होता है तद्वाची शब्द में ये दोनों विभक्तियाँ होगी। निर्धारण किसी समुदाय से ही सम्भव होता है। समुदाय विषेष में से जो वस्तु छांटी जायेगी वह उसकी अपेक्षा न्यून होगी। सूत्र में स्थित पंचम्यन्त यतः पद से

निर्धायमाण समुदाय का बोध होता है। वह

निर्धार्यमाण समुदाय चार प्रकार का होता है–

जाति विषिष्ट समुदाय, 2. गुणविशिष्ट समुदाय, 3. क्रियाविशिष्ट समुदाय तथा 4. संज्ञाविशिष्ट समुदाय।

1.जाति विशिष्ट का उदाहरण–

नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः (मनुष्यो में ब्राह्मण श्रेष्ठ है) यहाँ मनुष्य एक समुदाय रूप है और उसमें से जाति के आधार पर 'द्विज' को पृथक् करने में मनुष्यवाची 'नृ' शब्द में उक्त सूत्र से षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ हुई है– नृणां नृषु वा

2.गुण विशिष्ट का उदाहरण–

गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा (गायों में कृष्ण वर्ण वाली गाय अधिक दूध देती है) यहाँ गुण के कारण पृथक् करण होने से उक्त सूत्र से षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ हुई है– गवां गोषु वा

3. किया विषिष्ट का उदाहरण–

गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः (चलने वालो में दौड़ने वाला घोड़ा शीघ्र चलता है) यहाँ गमन क्रिया के कारण पृथक् करण होने से उक्त सूत्र से षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ हुई है–गच्छतां गच्छत्सु वा।

4. संज्ञा विशिष्ट का उदाहरण–

छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः (छात्रों में मैत्र चतुर है) यहाँ छात्र एक समुदाय रूप है और उसमें से संज्ञा के आधार पर 'मैत्र' को पृथक् काने में उक्त सूत्र से विकल्प से छात्र शब्द में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ हुई हैं–छात्राणां छात्रेषु वा।

108. ''पंचमी विभक्तेः /2/3/42

विभागो विभक्तम्। निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पंचमी स्यात्। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः।

अर्थ –यतश्च निर्धारणम् की यहां अनुवत्ति आ रही है। तदनुसार सूत्रार्थ होगा कि जहाँ दो समुदायों में से तुलना करके जिससे विशेषता या भेद बताया जाय। अर्थात् पृथक् की जाने वाली वस्तु का शेष वस्तुओं से भेद हो तो जिससे पृथकता बतायी जा रही हो उसमें पंचमी विभक्ति होती है। वस्तुतः यदि निर्धारण रहने पर जिससे निर्धारण किया जाता है उसमें और जो निर्घारीत होता है उसमें भिन्नता अर्थात् पार्थक्य रहे तो जहाँ से निर्धारण हो उसमें षष्ठी तथा सप्तमी न होकर पंचमी ही होती है।

माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः (मथुरावासी पाटलिपुत्र वालों से अधिक धनी हैं) प्रकृत वाक्य में 'मथुरावासियों' की विशेषता 'पाटलिपुत्र' से बताई गई है। 'माथुराः' निर्धार्यमाण है, उनकी पाटलिपुत्रकेभ्यः, से पृथकता बताई जा रही है। ये दोनों भिन्न–भिन्न है, पाटलिपुत्रकों में 'माथुरा' सम्मिलित नहीं है, बल्कि उनसे बिल्कुल भिन्न है, इसलिए उक्त सूत्र से 'पाटलिपुत्रकेभ्यः' में पंचमी हुई है।

109. ''साधु निपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः'' 2/3/43 आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायां न तु प्रतेः प्रयोगे। मातरि साधुर्निपुणो राज्ञो भृत्यः। इह तत्त्वकथने तात्पर्यम्।

अर्थ–साधु और निपुण शब्दों के योग में जब प्रशंसा या आदर अर्थ हो तो इनके योग में सप्तमी होती है किन्तु 'प्रति' के प्रयोग में नहीं होती है, जैसे–मातरि साधुः निपुणः वा। आर्चायां, का क्या प्रयोजन है ? निपुणः राज्ञः भृत्यः। यहां तत्त्व कथन में तात्पर्य है।

व्याख्या–प्रकृत सूत्र अर्थ की दृष्टि से स्वतः ही पूर्ण है। तदनुसार सूत्रार्थ होगा कि सम्मान या पूजा अर्थ गम्यमान होने पर साधु (भला, सज्जन) और निपुण (चतुर, कुशल) शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है, किन्तु 'प्रति' आदि के योग में अर्चा अर्थ रहने पर सप्तमी विभक्ति नहीं होगी।

मातरि कृष्णः साधुः निपुणः वा (कृष्ण माता के प्रति सज्जन, भला अथवा माता की सेवा में निपुण) यहाँ उक्त सूत्र से साधु तथा असाधु शब्दों के योग में 'मातृ' शब्द से सप्तमी विभक्ति हुई है–मातरि'।

अर्चायम् किम् ?सूत्र में 'अर्चा' प्रशंसा अर्थ में ही सप्तमी होवे, ऐसा क्यों कहा गया?

इसलिए कि जहाँ पूजा या आदर का भाव नहीं रहता वहाँ सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति ही होती हैं–जैसे–निपुणः राज्ञः भृत्यः। (राजा का सेवक कुशल है) यहां तत्त्वकथन अर्थ में राजन् शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई है।

वार्तिक–''अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्''। साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा। सूत्र में 'अप्रतेः' के स्थान पर 'अप्रत्यादिभिः' कहना चाहिये। अतः प्रति परि तथा अनु के प्रयोग में साधु और निपुण शब्द के साथ अर्चा अर्थ में भी

अभ्यास प्रश्न

1– प्रश्न – अधिकरण संज्ञा किसे कहते है

2– प्रश्न – अधिकरण संज्ञा किस सूत्र से होती है

3– प्रश्न – अधिकरण मे कौनसी विभक्ति होती है ?

4– प्रश्न – दूर' और 'अन्तिक के योग मे कौनसी विभक्ति होती है ?

5– प्रश्न .''यतश्च निर्धारणम्'' सूत्र का उदाहरण क्या है।

बहुविकल्पीय प्रश्न – उत्तर

1– आधारोऽधिकरणम्'' ़सूत्र से होती है–

क– सम्प्रदानम् ख–अधिकरण संज्ञा

ग–अपादान घ– सम्बोधन

2–अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है–

क– कर्मणि द्वितीया ख– साधकतमं करणम्

ग–सप्तम्यधिकरणे च घ– चतुर्थी सम्प्रदाने

3–कटे आस्ते में विभक्ति है।

क– सम्बोधन ख–चतुर्थी

ग– द्वितीया घ– सप्तमी

4–स्थाल्यां पचति इसमें विभक्ति होती है।

क– सम्बोधन ख–चतुर्थी

ग– द्वितीया घ– सप्तमी

5–साधुः कृष्णः मातरि में विभक्ति है–

क– द्वितीया ख– सप्तमी

ग– सप्तमी घ– चतुर्थी

5.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि इसमें कि कितने विभक्तियों का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में केवल सप्तमी विभक्ति का अध्ययन किया गया है। सप्तमी विभक्ति का विधान करने वाला मुख्य सूत्र है। आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र का अर्थ है कर्तृ कर्म द्वारा तन्निष्ठ क्रियाया आधारः कारक की अधिकरण संज्ञा होती है। अधिकरण संज्ञा जहॉ जहॉ होती है वहा वहा सप्तम्यधिकरणे च सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है।

6.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
'कटे आस्ते	चटाई पर बैठता है
स्थाल्यां पचति	तपेली में पकाता है
मोक्षे इच्छास्ति	मोक्ष में इच्छा है
सर्वस्मिन् आत्माऽस्ति	सब में आत्मा है
तिलेषु तैलम्	तिलों में तेल है
वनस्य अन्तिके	वन के समीपे
अधीती व्याकरणे	जिसने व्याकरण पढ लिया है
साधुः कृष्णः मातरि	कृष्ण माता के प्रति अच्छा है

कृष्णः असाधु मातुले कृष्ण मामा के लिए अच्छा नहीं है
चर्मणि द्वीपिनं हन्ति चर्म के लिए व्याघ्र को मारता है
दन्तयोः हन्ति कुञ्जरम् दांतो के लिए हाथी को मारता है
केशेषु चमरीं हन्ति बालो के लिए चमरी नामक मृग विषेष को मारता है
सीम्नि पुष्कलकः हतः अण्डकोष के लिए कस्तूरी मृग को मारा
वेतनेन धान्यं लुनाति वेतन के लिए धान्य काटता है

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–उत्तर– आधार भूत कारक की अधिकरण संज्ञा कहते है।
2–उत्तर–आधारोऽधिकरणम्'' '
3–उत्तर–सप्तमी विभक्ति होती है ?
4–उत्तर दूर' और 'अन्तिक योग मे सप्तमी विभक्ति होती है ?
5–उत्तर– नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः।

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1– ख–अधिकरण संज्ञा
2– ग–सप्तम्यधिकरणे च
3–घ– सप्तमी
4– घ– सप्तमी
5–ख– सप्तमी

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–पुस्तक का नाम– लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
3–पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य , लेखक का नाम– पतंजलि
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

5.8उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ।

खण्ड दो

इकाई .1 सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित भू धातु की रूप सिद्धि

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित भू धातु की रूप सिद्धि

1.4 सांराश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि व्याकरण शास्त्र में भू धातु का अर्थ क्या है ? इसमे भू धातु के अर्थ के विषय में सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है व्याकरण शास्त्र के महत्त्व को जानते हुए इस इकाई में जानेंगे कि भू धातु की रूप सिद्धि किस प्रकार हूई है तथा भू धातु आत्मनेपदी है कि परस्मैपदी है ? इसका वर्णन सूत्रों के माध्यम से सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है । इस इकाई के अध्ययन से आप धातु रूपों को सिद्ध करते हुए उनको वाक्यों में प्रयोग कर सकेंगे।

1.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप धातु रूपों को जानते हुए उनको संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करेंगे

- पुरुष कितने होते है इसके विषय में आप परिचित होंगे ।
- प्रथम पुरुष का प्रयोग कहा होता है इसके विषय में परिचित होंगे ।
- मध्यम पुरुष का प्रयोग कहा होता है इसके विषय में परिचित होंगे ।
- उत्तम पुरुष का प्रयोग कहा होता है इसके विषय में परिचित होंगे ।
- आत्मनेपद का प्रयोग कहॉ होता है इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- परस्मैपद का प्रयोग कहॉ होता है इसके विषय में आप परिचित होंगे।

1.3 सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित भू धातु की रूप सिद्धि

अब आगे यहा से धातुओं का प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है यह प्रकरण संस्कृत व्याकरण का प्राण स्वरूप है। धातुओ के द्वारा ही अनेके प्रकार के क्रिया रूपों तथा कृदन्त रूपों की उत्पति हुआ करती है। शाकटायन आदि वैयाकरण तो प्रत्येक शब्द की उत्पति किसी न किसी धातु से मानते है। अतः विद्यार्थियों को यह प्रकरण सम्यग्रूप से ध्यान से पढ़ना चाहिए । जिस विद्यार्थी को इस प्रकरण का जितना स्मरण होगा उसको संस्कृत भाषा पर उतना ही गति होगा– यह शतशः सत्य है। अब सर्वप्रथत धातु प्रकरण में दश गड़ पढ़े गसे है। 1– भ्वादिगण , 2–अदादिगण , 3– जुहोत्यादिगण , 4– दिवादिगण , 5– स्वादिगण , 6– तुदादिगण , 7– रूधादिगण , 8– तनादिगण , 9– क्रयादिगण , 10– चुरादिगण इन दश गणों में भ्वादि प्रकरण प्रारम्भ करते है।

1– लट् , लिट् , लुट् , लृट् , लेट् लोट् लङ् लिङ् लुङ् लृङ् । एषु पंचमो लकार श्छन्दोमात्र गोचरः ।।

अर्थः– 1– लट् , 2– लिट् , 3– लुट् , 4– लृट् , 5– लेट् , 6–लोट् , 7– लङ् , 8– लिङ् , 9– लुङ् , 10– लृङ् इन दश लकारों में से पाचवॉ जो लेट् लकार है उनका प्रयोग केवल वेद में होता है। जो सिद्धान्त कौमुदी में स्वर वैदिक प्रयिा में पढ़ा गया है। इन दश लकारों में प्रथम छः लकार में (लट् , लिट् ,लुट , लृट् , लेट् , लोट्) टकार की **हलन्त्यम्** सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोपः होने से टित् माना गया है। टित् का प्रयोजन–टित् आत्मने पदानां टेरे इस सूत्र से एत्व होता है। तथा शेष चार लकार (लङ् , लिङ् , लुङ् , लृङ्) यहाँ भी हलन्त्यम् सूत्र से ङकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होने के कारण ङित् माना गया है। ङित्, आदि सूत्रों में स्पष्ट किया गया है। यहाँ पर आगे नौ लकारों का विवेचन लघुसिद्धान्त कौमुदी में किया गया है। परन्तु लिङ् लकार के दो प्रकार के (विधि लिङ् आशीर्लिङ्) होने के कारण पुनः लोक में भी दश लकार हो जाते है। किन्तु इस इकाई में मात्र पाँच ही लट् , लृट् , लोट् , लङ् विधि लिङ् लकारों का विवेचन किया गया है।

अब इन लकारों के अर्थों की व्यवस्था करने के लिए अग्रिम सूत्र का अवतरण करते है–

लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः 3/4/69

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

अर्थः– लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में हों।

व्याख्या–लकार के तीन अर्थ होते हैं–कर्ता , कर्म , और कर्म वाच्य । यदि धातु सकर्मक हो तो लकार का प्रयोग कर्तृवाच्य में होंगे , यदि धातु अकर्मक हो तो लकार का प्रयोग कर्तृवाच्य और भाव वाच्य में होंगे।

सकर्मक अकर्मक का सामान्य विवेचन

समर्कक जिस धातु का कर्म होता है उसे सकर्मक कहते है । यथा – रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक को पढ़ता है) यहाँ पर पठ् धातु का कर्म पुस्तक है अतः पठ् धातु सकर्मक है। जिस धातुओं के फल और व्यापार अलग–अलग हो उसे सकर्मक कहते है। (**फल व्यधिकरण व्यापार वाचकत्वं सकर्मकत्व**) यथा–पच् धातु , इसका विक्लिति रूप फल तण्डुलों में तथा तदनुकूल (उस विक्लिति को पैदा करने वाला) व्यापार देवदत आदि कर्ता में है।

देवदत्तः ओदनं पचति (देवदत्त चावला पकाता है।) यहाँ पर फल कर्म में और व्यापार कर्ता में रहता है। पचन में विक्लित रूप फल का आश्रय ओदन है अतः वह कर्म है , और उस विक्लिति के साधक आग जलाना पात्र उपर धरना आदि क्रिया रूप व्यापार का आश्रय देवदत्त है अतः वह कर्ता है इस लिए देवदत्तः ओदनं पचति में देवदत्त कर्ता हुआ , ओदन कर्म हुआ , तथा पचति क्रिया हुई।

अकर्मक जिन धातुओं का कोई कर्म न हो उसे अकर्मक कहते है। यथा देवदत्तः शेते (देवदत्त सोता है) यहाँ पर शीङ् शयने धातु से शेते बना है। इस धातु का कोई कर्म नहीं है अतः शी धातु अकर्मक है। जिन धातुओं का फल और व्यापार के आश्रय एक ही आश्रम देवदत्त आदि में रहते है अकर्मक त्वम्। यथा–शीङ् धातु , इसका फल विश्राम तथा तदनुकूल व्यापार लेटना आदि दोंनो एक धातुओं का निर्णय सिद्धान्त कौमुदी में किया गया है।

सकर्मक धातुओं से लकार कर्ता और कर्म में होते है जिसे कर्तृवाच्य और कर्म वाच्य कहा जाता है। कर्ता–(कर्तृ वाच्य) में यथा रामः पुस्तकं पठति यहा पठ् धातु से लट् लकार कर्ता में हुआ है अतः इसका सम्बन्ध कर्ता से ही है इसी लिए कर्ता के द्विवचनान्त या बहुवचनान्त होने पर क्रिया भी द्विवचनान्त या बहुवचनान्त हो जाता है। जब लकार कर्ता में होगा तो कर्म से उसका सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। वहाँ कर्ता के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है। वहाँ कर्ता एकवचन है तो क्रिया भी एकवचन रहेगा यदि कर्ता बहुवचन है तो क्रिया भी बहुवचन हा रहेगा।

कर्म वाच्य में यथा पुरुषेण घट क्रियते (पुरुष के द्वारा घड़ा बनाया जाता है) यहाँ 'क्रियते' में लट् लकार कर्म हुआ है। अतः इसका कर्म के साथ सम्बन्ध है। इस लिए यहाँ कर्म के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है यदि कर्म एकवचन है तो क्रिया भी बहुवचन ही रहेगा। कर्ता से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । यथा–पुरूषेण घटाः क्रियन्ते , पुरूषैः घटः क्रियते इत्यादि।

अकर्मक धातुओं से लकार कर्ता और भाव में होते है। कर्ता में यथा–बालकः शेते (बालक सोता है) यहा लट् लकार शीङ् धातु से कर्ता में हुआ है अत एव कर्ता से सम्बन्ध है। कर्ता के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है यदि कर्ता एकवचन है तो क्रिया भी एकवचन रहता है यदि कर्ता अन्य वचन का रहेगा तो क्रिया भी एकवचन रहता है यथा बालकौ शयाते , बालकाः शेरते इत्यादि। अकर्मक धातुओं से लकार भाव में भी हुआ करता है। अत एव भाव वाच्य में सदा प्रथम पुरुष के एकवचन का ही प्रयोग होता है। यथा–बालकेन शय्यते , युष्माभिः , अस्माभिः , शय्यते इत्यादि। यहाँ

लकार केवल धातु के अर्थ शयन (सोना) को शीङ् प्रगट करता है। अत एव सदा एकवचनान्त ही रहता है।
हमें पाँच लकारों में ही रूप सिद्ध करना है उन पांच लकारों में से सर्व प्रथम लट् लकार का प्रयोग करते है।
लट् लकार विधायक विधि सूत्र

वर्तमाने लट् 3/2/123।

वर्तमान क्रिया वृत्तंर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्वम्। भू सत्तायाम्। कर्तृ विवक्षायां भू ल् इति स्थिते।

अर्थः— वर्तमान कालिक क्रिया से युक्त अर्थात् वर्तमान काल की क्रिया को जब धातु प्रगट करती है , तब उस अर्थ में धातु से लट् लकार होता है। लट् में टकार अकार की इत्संज्ञा हो जाती है। लकार की उच्चारण सामर्थ्य से इत्संज्ञा नहीं होती है भू धातु सता अर्थ में है अपने आप को धारण करने का नाम सत्ता है रामः भवति (राम होता है) इस वाक्यों में राम अपने स्थिति को धारण करता है यह तात्पर्य निकलता है भ्वादिगण में पठित और क्रिया वाचक होने के कारण भू की भूवादयो धातवः से धातु संज्ञा होती है वर्तमान काल कार्य प्रारम्भ होने के बाद जब तक समाप्ति न हो जाय उस काल को वर्तमान काल कहते है। यथा रामः गच्छति (राम जाता है।) राम गमन (जाना) रूपी कार्य प्रारम्भ कर दिया । किन्तु कब तक जायेगा यह निश्चित नहीं हुआ। अतः इस काल को वर्तमान काल कहते है।
भू धातु से कर्तृविवक्षा (कर्ता की कहने की इच्छा) में वर्तमाने लट् सूत्र के द्वारा वर्तमान काल में लट् (प्रत्यय) लकार करने के बाद भू + लट् बना। उसके बाद हलन्त्यम् सूत्र से टकार की इत्संज्ञा होने के बाद तस्य लोपः से लोप होकर भू + ल् बना। इसके बाद अलग सूत्र प्रवृत होता है—

लकारादेश विधायक विधि सूत्र — तिप्— तस्— झि— सिप्— थस्— थ—मिब्—वस्—मस्—तातां—झ—थासाथां—ध्वमिड्—वहि—महिङ् 3/4/78।

अर्थः—तिप्, तस्, झि, सिप् , थस् , थ , मिप् , वस् , मस् त , आताम् , झ , थास् , आथात् , ध्वम् इड् , वहि , महिङ् ये अठारह प्रत्यय 'ल्' के स्थान में आदेश होते है। दश लकारों के स्थान पर से अठारह प्रत्यय प्राप्त होंगे । यह सम्भव नहीं है। अतः इस प्रकार यह अनियम हुआ। इस अनियम को रोकने के लिए अगला सूत्र लगा—

परस्मैपद विधायक संज्ञा सूत्र

लः परस्मैपदम् 1/4/98 लादेशाः परस्मैपद संज्ञाः स्युः।

अर्थः— ल् के स्थान में होने वाले आदेश परस्मैपद संज्ञक होते हैं। अब ल् के स्थान में जो अठारह प्रत्यय प्राप्त है। इनकी परस्मैपद संज्ञा प्राप्त होती है। इस पर अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।आत्मनेपद संज्ञा विधायक सूत्र

तङानावात्मनेपदम् 1/4/99।।तङ् प्रत्याहारः शानचकानचौ चैतत् संज्ञा स्युः। **पूर्वसंज्ञाऽपवाद** तङ् प्रत्याहार अर्थात त , आताम्,झ,थास् ,आथाम्,ध्वम्,इट् ,वहि , महिङ् ये नव प्रत्यय और शानच् कानच प्रत्यय आत्मनेपद संज्ञक होते है। यह सूत्र पूर्व सूत्र द्वारा विहित परस्मैपद संज्ञा का अपवाद है।
इस प्रकार त ,आताम्,झ,आदि नव प्रत्यय आत्मने पद संज्ञक होते हैं। तथा अवशिष्ट तिप्,तस्,झि आदि नव प्रत्यय परस्मैपद संज्ञक होते हैं। कोष्ठक में देंखे—

परस्मैपद			**आत्मने पद**		
तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
सिप्	थस्	थ	थास्	आथाम्	ध्वम्
मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्,

अब परस्मैपद आत्मने पद निश्चित हो जाने के बाद , अब किस धातु से परस्मैपद प्रत्यय हो और किस धातु से आत्मने पद प्रत्यय हो , इसका विर्णय अगले सूत्रों में करते हैं। आत्मने पद विधायक विधि सूत्र

अनुदात्तङित् आत्मनेपदम् 1/1/12//अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्।

अर्थः— जिस धातु का अनुदात इत् हो या ङकार इत् हो , उस धातु से परे (लकार के स्थान में) आत्मने पद प्रत्यय हो।धातु पाठ में जहॉ जहॉ प्रयोजन वशात् – अनुदात्त स्वर जोड़ा गया है वहॉ पर आत्मने पद प्रत्यय होते हैं। यथा एध् वृद्धौ धातु है यहॉ पर अन्त्य स्वर अनुदात्त है। अनुदात्त होने से अकार की इत्संज्ञा हुई है। इस लिए यहॉ पर आत्मने पद प्रत्यय होते हैं । और जिस धातु में ङकार की इत्संज्ञा हुई हो, वहॉ पर भी आत्मने पद प्रत्यय होते हैं यथा शीङ् शयने यहॉ पर हलन्त्यम् सूत्र से ङकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोप : से लोप हुआ है। इस लिए यहॉ पर भी ङित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं । किसी–किसी धातु से आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों प्रत्यय होते हैं। इसका निर्णय अगले सूत्र में किया जा रहॉ है–उभयपद विधायक विधि सूत्र.

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रिया फले 1/3/73//स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मने पदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रिया फले।

अर्थः— यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त होता हो तो स्वरितेत तथा ञित् धातु से आत्मने पद प्रत्यय होते हैं यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो तो स्वरितेत तथा ञित् धातुओं से आत्मने पद प्रत्यय होते है स्वरितेत धातु उसे कहते है स्वर इत् होता है । यथा यज धातु है इस में यज में जकार में जो अकार है उसकी इत्सज्ञा होकर यज् बना। इसी को स्वरितेत कहते है स्वरितेत होने से आत्मनेपद प्रत्यय आते है। इसी प्रकार जिस धातु में ञकार की इत्संज्ञा हुई है उसे ञित् कहते है यथा – डुकृञ् करणे इसमें ञकार की इत्संज्ञा हुई है ञित् होने के कारण यदि क्रिया का फल कर्ता को मिले तो वहॉ पर आत्मने पद प्रत्यय होते हैं। यदि क्रिया का फल कर्ता को नही मिला तो वहॉ पर परस्मैपद प्रत्यय होते हैं । इसी लिए स्वरितेत और ञित् में दोनों धातु उमय पदी है इसको विस्तार से सिद्धान्त कौमुदी में व्याख्या किया गया है उसको देखें अब परस्मैपद प्रत्ययों के लिए प्रकृति का निर्देश करते हैं–

परस्मैपद विधायक विधि सूत्र

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् 1/3/78।। आत्मनेपदनिमित्तहीनाद् धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

अर्थः— आत्मने पद के निमित्तों से रहित धातुओं से कर्ता में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं। जिस धातु में आत्मने पद प्रयोग के लिए जो जो भी कारण बताये गये है यदि ये कारण न हो तो उन धातुओं से परस्मैपद होना चाहिए । अतः इससे कर्तृविवक्षा में परस्मैपद प्रत्यय ही होंगे। पदों की व्यवस्था करके अब पुरुषों की व्यवस्था के लिए सर्व प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष संज्ञाओं का विधान करते है–प्रथमादिपुरुष संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र –

तिङस्त्रीणि तीणि प्रथममध्यमोत्तमा :1/4/100।। तिङ् उभयो : पदयो स्त्रयस्तिका : क्रमाद् एतत्संज्ञा : स्युः ।

अर्थः— तिङ् के दोनों पदों के त्रिक क्रमश : प्रथम ,मध्यम और उतम संज्ञक होते है। तिङ् के दोनों पदों में नौ – नौ प्रत्यय होते हैं अतः प्रत्येक पद में तीन त्रिक (तीन तीन प्रत्ययों के टोले) बनते है। इधर संज्ञाएं भी तीन है– प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष । यथासंख्यमनुदेशः समानाम् से पहला त्रिक प्रथम पुरुष संज्ञक , दूसरा त्रिक मध्यम पुरुष संज्ञक , और तीसरा त्रिक उतम पुरुष संज्ञक होता है इन संज्ञाओं के साथ

'पुरुष ' शब्द का व्यवहार पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्य करते है। इस प्रकार प्रथम से प्रथम पुरुष, मध्यम से मध्यम पुरुष , उत्तम से उत्तम पुरुष समझना चाहिए

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः 1/4/102।। लब्ध प्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः।

अर्थः– प्रथम पुरुष संज्ञा होने के बाद जो त्रिक में तीन–तीन हैं, वे क्रमशः एकवचन संज्ञक , द्विवचन संज्ञक और बहुवचन संज्ञक होते हैं।

	परस्मैपद			**आत्मनेपद**		
	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	तिप्	तस्	झि,	त	आताम्	झ
मध्यम पुरुष	सिप्	थस्	थ,	थास्	आथाम्	ध्वम्
उतम पुरुष	मिप्	वस्	मस्,	इट्	वहि	महिङ्

अब अगले तीन सूत्रों के द्वारा इस बात की व्यवस्था करते हैं कि कहा किस पुरुष का प्रयोग करना चाहिए–

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः 1/4/104।।

तिङ् वाच्य कारक वाचिनि युष्मदि (34 पदे) प्रयुज्यमानेऽप्रपुज्यमाने च मध्यमः।।

अर्थः–तिङ् का वाच्य जो कारक तद् वाचक युष्मद् शब्द के प्रयुज्यमान या अप्रयुज्यमान रहते मध्यम पुरुष होता है।

युष्मदि उपपदे मध्यमः युष्मद् शब्द के समीप उच्चरित होने पर मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है। यथा त्वं पुस्तकं पठसि यहा त्वं शब्द युष्मद् शब्द उपपद है इस लिए पठ् धातु से मध्यम पुरुष हुआ है।

अस्मद्युत्तमः 1/4/106।।तथा भूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात्।

अर्थः– तिङ् का वाच्य जो कारक तद्वाचक अस्मद् शब्द के प्रयुज्यमान वा अप्रयुज्यमान रहते उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है।

अहं पुस्तकं पठामि यहा अस्मद शब्द उपपद है इस लिए पठ् धातु से उत्तम पुरुष हुआ है।

शेषे प्रथमः 1/4/107।मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्। भू ति इति जाते ।

अर्थः– मध्यम पुरुष या उतम पुरुष का विषय न होने पर प्रथम पुरुष का प्रयोग होता है।

अब यहा भू धातु से कर्ता के विवक्षा में लट् लकार लाकर तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। उसके बाद शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् सूत्र से ल् के स्थान पर प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में 'तिप्' प्रत्यय होकर भू+तिप् बना। हलन्त्यम् सूत्र से तिप् में पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+ति बना। इसके बाद अब अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3/4/13।। तिङ् शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः।

अर्थः– धातु के अधिकार में कहे गये तिङ् और शित् प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तिप् , तस् , झि आदि अठारह प्रत्यय तिङ् कहे जाते है। यह पीछे कह दिया गया है। शित् प्रत्यय उसे कहते है जहाँ श् की इत्संज्ञा हुई हो , यथा–शप् श्यन् श श्नम् , श्ना आदि शित् प्रत्यय है। तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुक होते है। भू + ति यहां पर धात्वधिकार में भू धातु से 'ति' यह तिङ् विधान किया गया है अतः इस सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा होती है इसके बाद अगला सूत्र लगता है–

कर्तरि शप् 3/1/68। कर्त्रर्थे सार्वधातुक परे धातोः शप् स्यात् ।

शपावितौ।

अर्थः– कर्ता अर्थ में सार्वधाातुक परे हो तो धातु से परे शप् प्रत्यय होता है। शप् में शकार पकार की इत्संज्ञा हो जाती है। भू+ति में सार्वधातुक पर में है 'ति' और लट् स्थानिक होने के कारण कर्ता अर्थ में विधान किया गया है। अतः भू+धातु से परे शप् प्रत्यय होकर भू+शप्+ति बना। शप् में शकार की लशक्वतद्धिते सूत्र से इत्संज्ञा होकर तथा पकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा होकर भू+अ+ति बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7/3/84।। अनयोः परयोः इगन्ताङ्गस्य गुण : स्यात्। अवादेशः– भवति , भवतः।

अर्थः– सार्वधातुक या आर्धधातुक परे हो तो इगन्त अंग के स्थान पर गुण आदेश होता है। अवादेशः–एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होता है।

भू+अ+ति यहाँ पर अकार शित् होने के कारण तिङ् शित् सार्वधातुकम् से सार्वधातुक संज्ञा हुई । सार्वधातुक संज्ञा होने के बाद सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से 'भू' इस इगन्त अंग के अन्त्य वर्ण 'ऊ' के स्थान पर ओकार गुण होकर भो + अ +ति बना। इसके बाद एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+ति बना। वर्ण सम्मेलन करने पर भवति प्रयोग सिद्ध होता है।

विशेष आगे अन्य प्रयोगों को सिद्ध करने के लिए ये जितने सूत्र पढ़े गये है इन सभी सूत्रों को ध्यान से स्मरण करना अत्यन्त आवश्यक है। क्यों कि आगे जितने भी प्रयोग सिद्ध किये जायेंगे वे सभी प्रयोग इन्ही सूत्रों के आधार प्रयोग सिद्ध किये जायेंगे ।

भवतः– भू धातु से कर्तृविवक्षा के वर्तमानकाल में वर्तमाने लट् सूत्र से लट् लकार होकर भू+लट् बना। लट् में टकार की हलन्त्यम सूत्र से इत्संज्ञा तथा अकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा दोनों को तस्य लोपः से लोप होकर भू+ल् बना। इसके बाद 'ल्' के स्थान में प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर भू+तस् बना। तिङ्शित् सार्वधातुकं से सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भू+शप् बना। इसके बाद अनुबन्ध लोप होने के बाद भू + अ बना। शिप् होने के कारण शप् अकार की सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार को गुण होकर भो+अ+तस् बना। इसके बाद एचोऽयवायावः सूत्र से भो में ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+तस् बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवतस् बना। स् को रूत्व विसर्ग होकर भवतः प्रयोग सिद्ध होता है।

भवन्ति–भू धातु से कर्तृविवक्षा के वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल के विवक्षा में लट् लकार होकर भू+लट् बना। अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। प्रथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में ल् के स्थान पर झि प्रत्यय होकर भू+झि बना। तिङ्शित् सार्वधातुकम् से सार्वधातुक संज्ञा होकर कर्तरि शप् इस सूत्र से शप् प्रत्यय होने के बाद अ बचा। भू+अ+झि बना। सार्वधातुक संज्ञा , सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से गुण होकर भो+अ+झि बना। उसके बाद एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+झि बना। वर्ण सम्मेलन होकर भव+झि बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

झोऽन्तः 7/11/3।। प्रत्ययावयस्य झस्य अन्तादेशः स्यात्। अतो गुणे भवन्ति। भवसि। भवथः। भवथ।

अर्थः– प्रत्यय के अवयव झ के स्थान पर अन्त आदेश होता है। भव+झि यहाँ पर झि प्रत्यय है अतः इसके अवयव झ् के स्थान पर अन्त आदेश होकर भव+अन्ति बना। अब यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त होता है। उस सवर्ण दीर्घ को बाधकर अतो गुणे सूत्र से पररूप एकादेश होकर भवन्ति प्रयोग सिद्ध होता है।

भवसि– भू धातु से वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल के विवक्षा में लट् लकार

तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में ल् के स्थान पर सिप् प्रत्यय होकर भू+सिप् बना। सिप् में पकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+सि बना। अब यहाँ सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर तथा शकार पकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने के बाद भू+अ+सि बना। सार्वधातुक संज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान पर गुण ओकार होकर भो+अ+सि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओ के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवसि प्रयोग सिद्ध होता है।

भवथः— भू धातु से वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल के विवक्षा में लट् लकार तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में ल् के स्थान में थस् प्रत्यय होकर भू+थस् बना। अब यहाँ सार्वधातुक संज्ञा , कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर तथा शकार पकार की इत्संज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान पर गुण ओकार होकर भो+अ+थस् बना एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+थस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवथः प्रयोग सिद्ध होता है।

भवथ—भू धातु से वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल के विवक्षा में लट् लकार तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में ल् के स्थान पर **थ** प्रत्यय होकर भू+थ बना। सार्वधातुक संज्ञा कर्तरि शप् से शप् प्रत्यय होकर तथा शकार पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोपः होकर भू+अ+थ बना । सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान पर गुण ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+थ बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवथ प्रयोग सिद्ध होता है।

भवामि— भू धातु से वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल के विवक्षा मतें लट् लकार तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर भ्+ मिप् बना। सार्वधातुक संज्ञा , कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+अ+मि बना। सार्वधातुक संज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान पर ओकार गुण होकर भो+अ+मि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भव+मि बना। अब इस बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है—

अतो दीर्घो यञि 7/3/101।। अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके। भवामि। भवावः। भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अह भवामि आवां भवामः। वयं भवामः।

अर्थः—अदन्त अंग के स्थान पर दीर्घ आदेश होता है यञादि सार्वधातुक परे हो तो। 'भव+मि' , यहाँ पर अदन्त अंग है भव में व में अकार। इस अकार से परे यञादि सार्वधातुक है मि में मकार। इस लिए अदन्त अंग को दीर्घ होकर भवामि प्रयोग सिद्ध होता है।

भवावः— भू धातु से वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल की विवक्षा में लट् लकार तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर भू+वस् बना। सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर शकार पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से दोनों का लोप होकर भू+अ+वस् बना। सार्वधातुक संज्ञा , सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान में ओकार गुण होकर भो+अ+वस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान में अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+वस् बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवावस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवावः प्रयोग सिद्ध होता है।

भवामः— भू धातु से वर्तमाने लट् इस सूत्र से वर्तमान काल की विवक्षा में लट् लकार तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर

भू+मस् बना। सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर शकार पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से दोनों का लोप होकर भू+अ+मस् बना। सार्वधातुक संज्ञा , सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान में ओकार गुण होकर भो+अ+वस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार के स्थान में अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+मस् बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवामस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवामः प्रयोग सिद्ध होता है।

वाक्य ,उदाहरण ,अर्थ

पुरूष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स भवति (वह होता है)	तौ भवतः (वे दोनो होते है)	ते भवन्ति (वे लोग होते है)
मध्यम पुरुष	त्वं भवसि (तुम होते हो)	युवां भवथः (तुम दोंनो होते है)	यूयं भवथ (तुम लोग होते हो)
उतम पुरुष	अहं भवामि (मै होता हूँ)	आवां भवावः (हम दोनों होते है)	वयं भवामः (हम लोग होते है।)

इस प्रकार लट् लकार का सम्पूर्ण सिद्धि की गयी । अब इसके बाद लृट् लकार का रूप सिद्ध किया जा रहा है।

।। लृट् लकार।।

काल तीन प्रकार का होता है। वर्तमान , भविष्य और भूत। जो पहले बताया गया है वर्तमान काल का अध्ययन आप ने कर लिया है अब भविष्य काल के विषय में अध्ययन करेंगे।

भविष्य काल क्रिया के उस काल को कहते है जिसमें क्रिया का प्रारम्भ होना न पाया जाय। अपि तु आगे होना पाया जाय । जैसे–स गमिष्यति (वह जायेगा)। इस वाक्य में गमन (जाना) क्रिया का आगे होना पाया जाना है। इस वाक्य के द्वारा मालूम पड़ता है कि क्रिया अभी प्रारम्भ नहीं हुई। अतः यह भविष्यतकाल का प्रयोग है। आगे लृट् लकार के भू धातु के रूपों को सिद्ध करते हैं।

लृट् लकार विधायक विधि सूत्र

लृट् शेषे च 3/2/13।। भविष्यदर्थाद् धातोर्लृट् स्यात्। क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा स्यः। इट् भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः।

अर्थः–एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया उपपद हो या न हो तो (सामान्य)भविष्यत काल में लृट् लकार का प्रयोग किया जाता है।

भविष्यति – भू धातु से लृट् शेषे च सूत्र से सामान्य भविष्यत काल की अर्थ में लृट् लकार होकर भू+लृट् बना। टकार ऋकार दोनों की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोपः होकर भू+ल् बना। प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में ल् के स्थान में तिप् प्रत्यय होकर भू+तिप् बना। पकार की हलन्त्य सूत्र से इत्संज्ञा तथा लोप होकर भू+ति बना। सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त होता है। उसको बाधकर सूत्र लगा–स्यतासिलृलुटोः। यह सूत्र कहता है कि लृट् , लृङ् और लुट् लकार के परे रहने परे धातु से स्य और तास् प्रत्यय होते है। यहाँ पर भू धातु से लृट् लकार पर में है। इस लिए स्य प्रत्यय होकर भू+स्य+ति बना। अब इसके बाद आर्धधातुक संज्ञा होती है। यहाँ पर धातु से विहित प्रत्यय है 'स्य' यह तिङ् और शित् से भिन्न है अतः तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण आर्धधातुक संज्ञा हुई। आर्धधातुक संज्ञा होने के बाद आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र आया । यह कहता है कि यहाँ पर वलादि आर्धधातुक है 'स्य', इसको इट् का आगम होकर भू+इट्+स्य+ति बना। टकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर भू+इ+स्य+ति बना। इसके बाद से सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार को ओकार गुण तथा एचोऽयवायावः सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर

भ्+अव्+इ+स्य+ति बना। आदेशः प्रत्ययोः सूत्र से स्य में स् को मूर्धन्य षकार होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर भविष्यति रूप सिद्ध होताहै। **नोट**–जिस प्रकार भविष्यति रूप बना है , उसी प्रकार अन्य पुरुषों और वचनों में रूप बनेंगे । अन्तर केवल इतना ही होगा कि केवल प्रत्यय जोड़े जायेंगे । यथा –

भविष्यतः– भविष्य पूर्व प्रक्रिया के अनुसार बनेगा केवल प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय जोड़कर भविष्यतस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भविष्यतः प्रयोग सिद्ध होता है।

भविष्यन्ति–भविष्य पूर्व प्रक्रिया के अनुसार बनेगा केवल प्रथम पुरुष वहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय जोड़कर भविष्य+झि बना।यहाँ पर झि प्रत्यय है अतः इसके अवयव झ् के स्थान पर झोऽन्तः सूत्र से अन्त आदेश होकर भविष्य +अन्ति बना। अब यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त होता है। उस सवर्ण दीर्घ को बाधकर अतो गुणे सूत्र से पररूप एकादेश होकर भविष्यन्ति प्रयोग सिद्ध होता है।
सकार को रुत्व विसर्ग होकर भविष्यतः प्रयोग सिद्ध होता है।

भविष्यसि – मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय तथा पकार की इत्संज्ञा होकर भविष्य+सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर भविष्यसि प्रयोग सिद्ध होता है।

भविष्यथः– मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर भविष्य+थस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर भविष्यथः प्रयोग सिद्ध होता है।

भविष्यथ – मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में **थ** प्रत्यय होकर भविष्यथ प्रयोग सिद्व होता है।

भविष्यामि – उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर तथा पकार की इत्संज्ञा होकर भविष्य+मि बना। अतो दार्घो यञि सूत्र से दीर्घ होकर भविष्यामि प्रयोग सिद्ध होता है।

भविष्यावः– उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर भविष्य+वस् बना। अतो दीर्घो यञि सूत्र से यकार में अकार को दीर्घ होकर भविष्यावस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भविष्यावः प्रयोग सिद्ध होता है।

भविष्यामः – उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर भविष्य+मस् बना। अतो दीर्घो यञि सूत्र से यकार के अकार को दीर्घ तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर होकर भविष्यामः प्रयोग सिद्ध होता है।

वाक्य में प्रयोग एवं अर्थ

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	सः भविष्यति (वह होगा)	तौ भविष्यतः (वे दोनों होगे)	ते भविष्यन्ति (वे लोग हागें)
मध्यम पुरुष	त्वं भविष्यसि (तु होगे)	युवां भष्यिवथंः (तुम दोंनो होंगे)	यूयं भविष्यथ (तुम लोग होंगे)
उतम पुरुष	अहं भविष्यामि (मै होता हूँ)	आवां भविष्यावः (हम दोनों होंगे)	वयं भविष्यामः (हम लोग होंगे)

लोट् लकार

विधि आदि अर्थो में लोट् लकार का प्रयोग किया जाता है । विधि – उस प्रेरणा को कहते है जिसे आज्ञा देना कहा जाता है। जैसे नौकरों और मजदूरों आदि अपने से निकृष्ट लोगों को कहा जाता है भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । ओदनं पच चावल पकाओं । अतः यहा आज्ञा दी जा रही है।

लोट् च 3/3/162।। विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् स्यात्

अर्थ :–विधि आदि अर्थों में धातु से परे लोट् लकार होता है

भवतु– भू धातु से लोट् च सूत्र से विधि आदि अर्थों में लोट् लकार होकर भू+लोट् बना । प्रथम पुरुष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर भू+तिप् तथा पकार की इत्संज्ञा होकर भू+ति बना। ति की सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भू+शप्+ति बना। शकार पकर की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+अ+ति बना।अब शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में उकार को गुण ओकार होकर भो+अ+ति बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवति बना । इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है–

उत्वविधायक विधि सूत्र

एरुः 3/4/86।।लोट् इकारस्य उः । भवतु।

अर्थ : लोट् लकार सम्बन्धी इकार के स्थान पर उकार आदेश होता है।

लोट् लकार में जहॉ भी इकार मिलेगा उस इकार के स्थान में उकार आदेश होगा। भवति यहॉ पर लोट् लकार सम्बन्धी इकार है भवति में इकार उसके स्थान में उकार आदेश होकर भवतु बना। इसके बाद अगनला सूत्र प्रवृत होता है–

तातङादेश विधायक विधि सूत्र

तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् 7/1/35/

आशिषि तुह्योस्तातङ्. वा परत्वात् सर्वादेशः– भवतात्

अर्थः – आशीर्वाद अर्थ में लोट् के 'तु'और 'हि' को विकल्प से तातङ् आदेश होता है।परत्वात् सर्वादेशः पर होने से सम्पूर्ण 'तु' और' 'हि' के स्थान पर तातङ्. आदेश होता है भवतु में यहॉ पर इस सूत्र से सम्पूर्ण 'तातङ् अङ् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भवतात् प्रयोग सिद्ध होता है यह तातङ् आदेश विकल्प से होता है जिसे पक्ष में तातङ् आदेश नही होगा, उस पक्ष में भवतु यही रहेगा ।

तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः 3/4/101।। ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः भवताम्। भवन्तु।

अर्थ :– ङित्– लङ् लिङ् लुङ् लृङ् लकारों के चार तस् थस् थ और मिप् इन प्रत्ययों के स्थान में क्रम से ताम् तम् त और अम् आदेश होता है। ' अर्थात् तस् को ताम्, थस् को तम् , थ को त, और मिप् को अम् आदेश होते हैं।

भवताम् – भू धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर भू+तस् बना । तस् की सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भू + शप् + तस् बना । शकार पकर की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+ अ+तस् बना । अब शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में उकार को गुण ओकार होकर भो+अ+तस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+तस् बना। अब यहा तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः इस सूत्र के द्वारा तस् के स्थान में ताम् प्रत्यय होकर भ्+अव्+अ+ताम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

भवन्तु – भू धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर भू+झि बना ।झि की सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भू + शप् +झि बना । शकार पकर की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+ अ+झि बना । अब शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में उकार को गुण ओकार होकर भो+अ+झि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+झि बना। वर्ण सम्मेलन होकर भव+झि बना। यहाँ पर झि प्रत्यय है अतः इसके अवयव झ् के स्थान पर झोऽन्तः सूत्र से अन्त् आदेश होकर भव+अन्ति

बना। अब यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त होता है। उस सवर्ण दीर्घ को बाधकर अतो गुणे सूत्र से पररूप एकादेश होकर भवन्ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर भवन्तु प्रयोग सिद्ध होता है।

भव–भू धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में ल् के स्थान पर सिप् प्रत्यय होकर भू+सिप् बना। सिप् में पकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+सि बना। अब यहाँ सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर तथा शकार पकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने के बाद भू+अ+सि बना। सार्वधातुक संज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान पर गुण ओकार होकर भो+अ+सि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओ के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर भव+सि बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

सेर्ह्यपिच्च 3/4/87।।लोटः सेर्हि सोऽपिच्च।

अर्थ :– लोट् लकार के सि के स्थान हि आदेश होता है और वह अपित् होता है

अतो हेः 4/4/104।।

अतः परस्य हेर्लुक्। भव , भवतात् । भवतम् । भवत्।

अर्थः–अकार से परे हि का लुक (लोप) होता है ,

भव+सि यहॉ पर सेर्ह्य पिच्च सूत्र के द्वारा सि के स्थान में हि आदेश होकर भवहि बना। हि का अतो हेः सूत्र से लोप प्राप्त था।उसको बाधकर तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् सूत्र से विकल्प से तातङ् आदेश तथा अनुबन्ध लोप होकर भवतात् बना । तातङ् विकल्प से होता है। जिस पक्ष में तातङ् आदेश नही होगा उस पक्ष में अतो हेः सूत्र से हि का लोप होकर भव बना इस प्रकार भव्, भवतात् दो रूप सिद्ध होता है।

भवतम्– भू धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर भू+थस् बना । थस् की सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भू+शप्+थस् बना । शकार पकर की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+अ+थस् बना । अब शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में उकार को गुण ओकार होकर भो+अ+थस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+थस् बना। अब यहा –तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः इस सूत्र के द्वारा थस् के स्थान में तम् प्रत्यय होकर भ्+अव्+अ+तम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर भवतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

भवत – भू धातु से लोट् लकार तथा अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में ल् के स्थान पर थ प्रत्यय होकर भू+थ बना। सार्वधातुक संज्ञा कर्तरि शप् से शप् प्रत्यय होकर तथा शकार पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोपः होकर भू+अ+थ बना । सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार के स्थान पर गुण ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+थ बना। वर्ण सम्मेलन तस्थस्थमिपां तान्तन्ताम्ः सूत्र से थ के स्थान में त आदेश होकर भवत प्रयोग सिद्ध होता है।

मेर्निः 3/4/89 लोटो मेर्निः स्यात्।

अर्थः– लोट् लकार के मि के स्थान पर नि आदेश होता है

आडुत्तमस्य पिच्च 3/4/92।। लोडुत्तमस्याट स्यात् पिच्च।

हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारण सामर्थ्यात्।

अर्थः– लोट् लकार के उत्तम पुरुष को आट् आगम होता है और वह आट् सहित

उत्तम पुरुष पित् के समान होता है। उत्तम पुरुष में मिप् तो पित् है किन्तु वस् ,मस् पित् नही है इनको भी पित् के समान हो जाने का अतिदेश यह सूत्र करता है। आट् में टकार की इत्संज्ञा होगी और टित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ के नियमानुसार प्रत्यय के आदि में होगा।

हिन्यो रुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात्। मि और नि के इकार को एरु :– सूत्र से उत्व नही होता है क्यों कि आदि उकार ही आदेश करना होता है नि के स्थान पर नु का उच्चारण और हि के स्थान पर हु का उच्चारण करते।

भवानि : भू धातु से लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर भू+मिप् बना । पकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर भू+ मि बना ।उसके बाद सार्वधातुक सज्ञा , शप्, अनुबन्ध लोप, होकर भू+अ+मि बना ।सार्वधातुकसंज्ञा, ,गुण अवादेश होकर भव + मि बना। मेर्निः इस सूत्र से लोट् लकार के उत्तम पुरुष एक वचन होने के कारण मि के स्थान पर नि होकर भव+नि बना। और आडुतमस्य पिच्च इस से आट् का आगम होकर भव +आ + नि । आ और नि मिलकर आनि बना । भव+आनि बना । अब अकः सवर्णे दीर्घः होकर भवानि प्रयोग सिद्ध होता है।

भवाव : भू धातु से लोट् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर भू+वस् बना । उसके बाद सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्ध लोप ,गुण अवादेश होकर भव + वस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस से आट् का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर भव+आ + वस् अब अकः सवर्णे दीर्घः होकर भवावस् बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

सकार लोप विधायक विधि सूत्र

नित्यं ङितः 3/4/99।। सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोप : । अलोऽन्त्यस्येति स लोप : । भवाव। भवाम।

अर्थ :– ङित् लकार के सकारान्त उत्तम पुरुष का लोप होता है। ङित् अर्थात जिस लकार में ङकार की इत्संज्ञा हुई है उसे ङित् कहते है लड. लिङ्. लृङ्. लृङ्. और लोट् को लङ्. के समान माना गया है इन लकारों में उत्तम पुरुष का सकार जहॉ भी प्राप्त होगा उसके स का लोप होगा ।

भवावस् यहॉ पर लोट् लकार के उत्तम पुरुष का स है इस लिए सकार का लोप होकर भवाव प्रयोग सिद्ध होता है।

भवाम– भू धातु के लोट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर भू+मस् बना । शप्, गुण , आवदेश होकर भव + मस् बना ।आट् का आगमन अनुबन्ध लोप होकर भव्+आमस् बना । अकः सर्वेण दीर्धः से सर्वण दीर्ध होकर भवामस् बना । नित्यं ङितः सूत्र से सकार का लोप होकर भवाम प्रयोग सिद्ध होता है।

लङ् लकार

अनद्यतने लङ् 3/2/111/ अनद्यतन भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अर्थ :– अनद्यतन भूतकाल में धातु से लङ् लकार होता है पहले बताया जा चुका है कि जो आज का विषय नहीं है उसे अनद्यतन कहते है और जो आज का विषय है उसे अद्यतन कहते है। यहॉ पर भूत काल ऐसा होने पर लङ् लकार का प्रयोग किया जाता है।

अभवत् :– भू धातु से अनद्यतन भूत काल अर्थ में अनद्यतने लङ् बना । ङकार की इत्संज्ञा होकर तथा तस्य लोपः से लोप होकर भू+ल् बना । उसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है **।**

अडागम विधायक विधि सूत्र

लुङ्लङ्लृङ् क्ष्वडुदात्तः 6/4/71/ एष्वङ्स्यात्।

अर्थः –लुङ् लङ् लृङ् लकार के परे रहने पर धातु रुप अंग को अट् का आगम होता है।

भू+ल् यहॉ पर प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में ल् के स्थान में तिप् प्रत्यय होकर अभू+ तिप् बना पकार की इत्सञ्ज्ञा तथा लोप होकर अभू + ति बना । उसके बाद तिङ्शित् सार्वधातुकं से सार्वधातुकसंज्ञा , तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अभू+शप्+ति बना । उसके बाद शका पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर अभू+अ+ति बना। लुङ्लङ्लृङ् क्ष्वडुदात्तः सूत्र से अट् का आगम तथा
अट् में टकार की इत्संज्ञा होती है, टित् होने के कारण धातु के आदि में होकर अभू +अ+ति बना । सार्वधातुकसंज्ञा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार को गुण ओकार होकर अभो+अ+ति बना। इसके बाद एचोऽयवायावः सूत्र से भो में ओ के स्थान में अव् आदेश होकर अ+भ्+अव्+अ+ति बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर अभवति बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है–

लोप विधायक विधि सूत्र

इतश्च 1/4/100।। ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः।

अभवत् ,अभवताम् । अभवन्। अभवः। अभवतम् । अभत। अभवम्। अभवाव । अभवाम।

अर्थः– ङित् लकार के स्थान पर आदेश हुआ जो इकारान्त परस्मैपद उसके अन्त्य (इकार) का लोप होता है। अभवति में ति में इकार ,उसका लोप होकर अभवत् प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवताम्– भू धातु से लङ् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर तथा अट् का आगम,अनुबन्ध लोप होकर अभू+तस् बना । तस् की सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अभू + शप् + तस् बना । शकार पकर की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर अभू+ अ+तस् बना । अब शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में उकार को गुण ओकार होकर अभो+अ+तस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर अभ्+अव्+अ+तस् बना। अब यहा –तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः इस सूत्र के द्वारा तस् के स्थान में ताम् प्रत्यय होकर अभ्+अव्+अ+ताम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर अभवताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवन्–भू धातु से लङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर तथा अट् का आगम होकर अभू+झि बना ।झि की सार्वधातुक संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अभू+शप्+झि बना । शकार पकर की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर अभू+अ+झि बना । अब शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से भू में ऊकार को गुण ओकार होकर अभो+अ+झि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर अभ्+अव्+अ+झि बना। वर्ण सम्मेलन होकर अभव+झि बना। यहाँ पर झि प्रत्यय है अतः इसके अवयव झ् के स्थान पर झोऽन्तः सूत्र से अन्त् आदेश होकर अभव+अन्ति बना। अब यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त होता है। उस सवर्ण दीर्घ को बाधकर अतो गुणे सूत्र से पररूप एकादेश होकर अभवन्ति बना। इकार का लोप होकर अभवन्त् बना। तकार को संयागान्त लोप होने के बाद अभवन् प्रयोग सिद्ध होता है। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर भवन्तु प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवः – भू धातु से लङ् लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय , अट् का आगम शप् , गुण अवादेश होकर अभव+ सि बना। इकार का लोप तथा सकार

को रुत्व विसर्ग होकर अभवः प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवतम् – भू धातु से लङ् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय , अट् का आगम शप् , गुण अवादेश होकर अभव+थस् बना। तस्थस्थमिपां तान्तन्तामःसूत्र से थस् के स्थान में तम् होकर अभवतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवत – भू धातु से लङ् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय , अट् का आगम शप् , गुण अवादेश होकर अभव+ थ बना। तस्थस्थमिपां तान्तन्तामःसूत्र से थ के स्थान में त होकर अभवत प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवम् – भू धातु से लड्. लकार उत्तम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय , अट् का आगम शप् , गुण अवादेश होकर अभव+ मि बना। तस्थस्थमिपां तान्तन्तामःसूत्र से मि के स्थान में अम् तथा पररुप होकर अभवम प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवाव – भू धातु से लड्. लकार उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय , अट् का आगम शप् , गुण अवादेश होकर अभव+वस् बना। अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ होकर अभवावस् बना । नित्यं ङितः सूत्र से सकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर अभवाव प्रयोग सिद्ध होता है।

अभवाम – भू धातु से लड्. लकार उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय , अट् का आगम शप् , गुण अवादेश होकर अभव+मस् बना। अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ होकर अभवामस् बना।नित्यं ङितः सूत्र से सकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर अभवाम प्रयोग सिद्ध होता है। ध्यान रहे कि यह रूप संक्षेप में सिद्ध किया गया है विशेष ज्ञान के लिए अभवत् के रूप को देंखे।

वाक्य में प्रयोग एवं अर्थ

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पथम पुरुष	सः अभवत् (वह हुआ)	तौ अभवताम् (वे दोनो हुए)	ते अभवन् (वे लोग हुए)
मध्य पुरुष	त्वम् अभवः (तुम हुए)	युवाम् अभवतम् (तुम दोनों हुए)	यूयम् अभवत (तुम लोग हुए)
उत्तम पुरुष	अहम् अभवम् (हम हुए)	आवाम् अभवाव (हम दोनों हुए)	वयम् अभवाम (हम लोग हुए)

विधि लिङ् . लकार

इस लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में होता है। विशेष – यह लकार लिङ् में ङकार की इत्संज्ञा होने से ङित् है ङित् होने से तीन काम सर्व प्रथम अनिवार्य है ।– नित्यं ङित : से उत्तम पुरुष वस् मस में सकार का लोप । इतश्च सूत्र से तिप् झि, सिप् में इकार का लोप । 3–तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः इस सूत्र से तस् – ताम् ,थस् – तम् , थ –त , और मिप् के स्थान में अम् आदेश होता है। यह लकार सार्वधातुक है सार्वधातुक होने से शप् – अ, गुण अवादेश होना ही है। अब आगे सूत्रों के माध्यम से प्रयोगों को सिद्ध करे ।

भवेत् – भू धातु से विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाऽधीष्टसम्प्रश्न – प्रार्थनेषु लिङ् इस सूत्र से विधि आदि अर्थों में लिङ् लकार अनुबन्ध लोप होने के बाद भू +ल् बना। प्रथम पुरुष एवचन विवक्षा में ल् के स्थान में तिप् प्रत्यय होकर भू+ तिप् बना । पकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत् संज्ञा होने के बाद भू+ति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होने के बाद भू+त् बना। सार्वधातुक संज्ञा कर्तरि शप् से शप् , अनुबन्ध लोप होने के बाद अ बचा । भू+ अ +त् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से गुण ओ होकर भो+अ+त् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर भ्+अव्+अ+त् बना। वर्ण सम्मेलन होकर भव+त् बना । यह प्रक्रिया तीनों पुरुषों , नवों वचनों में होना है। अब

यहाँ अगले सूत्र के द्वारा लिङ् लकारों में यासुट् का आगम करते है–

यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च 3/4/103/। लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च।

अर्थः– लिड्. लकार के स्थान मे होने वाले जो परस्मैपद प्रत्यय उस को यासुट् का आगम होता है। तथा वह आगम उदात्त और ङित् है।

भव+त् यहाँ पर लिङ् लकार का परस्मैपद प्रत्यय है त् , इसको यासुट् का आगम होकर भव+यासुट्+त् बना। यासुट् में टकार उकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने के बाद भव+यास्+त् बना। इसके बाद यास् के स्थान में इय आदेश करने वाला अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

अतो येयः 7/2/80।। अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् स्यात्। गुणः।

अर्थ :– अदन्त अंग से परे सार्वधातुक का अवयव यास् के स्थान पर इय् आदेश होता है।

भव+यास्+त् यहाँ पर अदन्त अंग है भव में व में अ, तथा सार्वधातुक का अवयव है यास् इस यास् के स्थान पर इय् आदेश होकर भव+इय्+त् बना। उसके बाद आद् गुणः से गुण होकर भवेय् + त् बना। अब इसके बाद यकार का लोप करने वाला अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

लोपो व्योर्वलि 6/1/64।।

अर्थः– बल् प्रत्याहार का वर्ण परें में हो तो यकार वकार का लोप होता है।

भवेय् + त् यहाँ पर बल् प्रत्याहार का वर्ण परें में है। त्,बना । अब इसके बाद यकार वकार का लोप होता है।

भवेय्+त् यहाँ पर बल् प्रत्याहार वर्ण परें में है। त्, इस त् के पूर्ण में वर्ण है भवेय् का यकार इस यकार का लोप होकर भवेत् प्रयोग सिद्ध होता है।अन्य तीनों पुरुषों तथा आठों वचनों में इसी प्रकार प्रयोग सिद्ध किये जायेंगें । इस लिए इस प्रयोग को ध्यान पूर्वक अध्ययन करें।

भवेताम् – इस प्रकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भवेय्+तस् बना । तस् के स्थान पर ताम तथा यकार का लोप होकर भवेताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

भवेयुः पूर्व प्रक्रिया के अनुसार प्रथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर भवेय् + झि बना । उसके बाद झि के स्थान में उस् करने के लिए अगला सूत्र प्रवृत है।

झेर्जुस् 3/4/08।।लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः। भवेतम्। भवेत । भवेयम् । भवेव ।भवेम।

अर्थः– लिङ् लकार के झि के स्थान में जुस् आदेश होता है। भवेय्+ झि यहाँ पर लिङ् लकार के झि के स्थान पर जुस् प्रत्यय होकर भवेय् + जुस् बना। जुस् मे जकार की चुटू से इत्संज्ञा तथा लोप होकर भवेय्+उस् बना । अब यहाँ बल प्रत्याहार का वर्ण पर मे न होने से यकार का लोप नहीं होगा । तो वर्ण सम्मलेन होकर भवेयुस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवेयुः प्रयोग सिद्ध होता है।

भवेः– मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर भवेय्+ सि बना। इकार का लोप तथा यकार का लोप होकर भवे+स् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवेः प्रयोग सिद्व होता है।

भवेतम् – मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भवेय् + थस् बना । थस् के स्थान में तम् प्रत्यय होकर भवेय्+तम् बना। यकार को लोप होकर भवेतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

भवेत – मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय तथा पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भवेय्+थ बना। थ के स्थान पर त् प्रत्यय होकर भवेय् त बना । यकार का लोप होकर भवेत प्रयोग सिद्व होता है।

भवेयम– उत्तम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर भवेय्+मिप् बना। सकार का लोप होकर भवेय्+मि बना। मिप् के स्थान में अम् आदेश तथा वल् पप्रत्याहार का वर्ण न होने के कारण यकार का लोप न होकर भवेयम् प्रयोग सिद्ध होता है।

भवेव –उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भवेय् +वस् बना।वस् में सकार का लोप होकर भवेय्+व बना। यकार को
लोप होकर भवेव प्रयोग सिद्ध होता है।

भवेम –उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर पूर्व प्रक्रिया के अनुसार भवेय् +मस् बना।मस् में सकार का लोप होकर भवेय्+म बना। यकार को
लोप होकर भवेम प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट–भवेत्–प्रयोग किस तरह सिद्ध हुआ है। इसको जानने के लिए भवेत् प्रयोग को सम्यग् रुप से ज्ञान करें । उसी के अनुसार केवल प्रत्यय जोड़ कर सभी रूप सिद्ध किये गये है।

प्रयोग सहित वाक्य उदाहरण

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तम् भवेत्	तौ भवेताम्	तान् भवेयुः
अर्थः–(उसे होना चाहिए)		(उन दोनो को होना चाहिए)	(उन लोगो को होना चाहिए)
मध्यम पुरुष –	त्वं भवेः	युवां भवेतम्	युष्मान् भवेत
अर्थ–(तुम को होना चाहिए)		(तुम दोनों को होना चाहिए)	(तुम लोगों को होना चाहिए)
उत्तम पुरुष	मां भवेयम्	आवां भवेव	वयं भवेम
	(हम को होना चाहिए)	(हम दोनो को होना चाहिए)	(हम लोगों को होना चाहिए)

अभ्यास प्रश्न

अति लघुत्तरीय प्रश्न

1–प्रश्न–पुरुष कितने होते हैं ?
2– प्रश्न–प्रथम पुरुष एकवचन में कौन सा प्रत्यय होता है ?
3–प्रश्न–आत्मने पद प्रत्यय कितने होते है ?
4–प्रश्न–परस्मैपद प्रत्यय कितने होते हैं ?
5–प्रश्न–इस खण्ड में कितने इकाई का वर्णन है ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1– लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में रूप होता है–
(क) – भवति (ख) – भवतः
(ग)– भवन्ति (घ)– भवसि

2. लृट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रूप होता है–
(क)– भविष्यति (ख) –भविष्यामि
(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

3– भूत काल में लकार का प्रयोग होता है।
(क) लृट् (ख) लोट्
(ग) लङ् (घ) लिङ्.

4– लिङ् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है–
(क) भवेत् (ख) भवेताम्
(ग) भवेः (घ) भवेतम्

5– अस्मद् उपपद रहने पर प्रयोग होता है
(क) मध्यम पुरुष (ख) प्रथम पुरुष

(ग) उतम पुरुष (घ) कुछ भी नही

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़न के पश्चात् आप जान चुके है कि धातु रुप की सद्धि किस प्रकार होती है इसकी आवश्यकता संस्कृत में अनुबाद बनाने के लिए किया गया है। इस इकाई में पॉच लकारों में भू धातु की रूप सिद्धि की गयी है। 1–लट् लकार 2–लृट् 3–लोट् , विधि लिड्. । लकार तो श होते है। लेकिन सामान्य ज्ञान के लिए इन्ही पॉच लकारों का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। इस इकाई में आत्मने पदी , परस्मैपदी तथा उमय पदी धातु कौन से होते है। इन सबका वर्णन सूत्रों के माध्यम से किया पुरुष भी तीन प्रकार के होते है प्रथम पुरुष , मध्यम पुरुष तथा उतम पुरुष । इन तीनों पुरुषों का सम्यग् रुप से वार्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
भवति	होता है।	भवत	होवे
भवसि	होते हो	भव	होओ
भवामि	होता हूॅं।	भवानि	होऊं
भविष्यति	होगा	अभवत्	हुआ

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघुत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1–उत्तर– पुरुष तीन होते हैं।

2–उत्तर–प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय होता है।

3–उत्तर– आत्मने पद प्रत्यय नव होते हैं?

4–उत्तर– परस्मैपद प्रत्यय नव होते हैं।

5–उत्तर– इस खण्ड में पॉच इकाई का वर्णन है।

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1– (घ)– भवसि

2– (ख) –भविष्यामि

3– (ग) लङ्

4– (ग) भवेः

5– (ग) उत्तम पुरुष

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–पुस्तक का नाम– लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

3–पुस्तक का नाम– व्याकरण महाभाष्य लेखक का नाम– पतंजलि
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

1.8–उपयोगी पुस्तकें

2–पुस्तक का नाम–वैयाकरण– सिद्धान्तकौमुदी लेखक का नाम– भट्टोजिदीक्षित सम्पादक का नाम–गोपालदत्त पाण्डेय प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2–पुस्तक का नाम– लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक का नाम– वरदराजाचार्य
प्रकाशक का नाम– चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1– भवति रूप को सिद्ध कीजिए
2–.भविष्यति रूप को कीजिए

इकाई 2 .लट् लृट् , लोट् लङ्. विधि लिङ्. इन लकारो में श्रु श्रवणे गम् (गम्लृ गतौ, एध् वृद्धौ इन धातुओं की सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित रूप सिद्धि।

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित श्रु श्रवणे एध् वृद्धौ धातु की रूप सिद्धि

2.4 सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित गम् धातु ,धातु की रूप सिद्धि

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 उपयोगी पुस्तकें

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बान्धित यह दूसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि व्याकरण शास्त्र में व्याकरण शास्त्र में 'श्रु' धातु गम् धातु , एक धातु का अर्थ क्या है इस , इकाई में इन धातुओं अर्थों के विषय में सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है।

व्याकरण शास्त्र के महत्त्व को जानते हुए इस इकाई मे जानेंगे कि इन धातुओं की रुप सिद्वि किस प्रकार हुई है इन धातुओं का वर्णन सम्यग् रुप से किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप धातु रुपों को सिद्व करते हुए उनको वाक्यों में प्रयोग कर सकेंगे।

2.2 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप रुपों को जानते हुए उनके विषय को समझ सकेंगे ।

- इस इकाई में कितने धातुओं के रुपों को सिद्ध किया गया है इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- इस इकाई में कितने लकार पढ़े गये है इसके विषय में आप परिचित होंगे
- श्रु धातु का रूप किस प्रकार सिद्ध होता है इसके विषय में आप परिचित होंगे ।
- गम् धातु का रूप किस प्रकार सिद्ध होता है। इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- एध् धातु का रूप किस प्रकार सिद्ध होता है, इसे विषय में आप परिचित होंगे।
- तित् क्या है इसके विषय में आप परिचित होगें ।

2.3 सूत्र ,वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित श्रु धातु लट् लकार

शृणोति – श्रु धातु से लट् लकार अनुबन्ध लोप होने के बाद श्रु+ल्। प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय तथा पकार की इत्संज्ञा होकर श्रु+ति बना । अब यहॉ कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है किन्तु इसको बाधकर अगला सूत्र प्रवृत्त है–

श्रुवः शृ च 3/1/74।। श्रुवः 'शृ' इत्यादेश : स्यात् ,श्नु प्रत्ययश्च । शृणोति।

अर्थः– कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे होने पर श्रु धातु के स्थान पर शृ आदेश हो और साथ ही उससें परें श्नु प्रत्यय भी होता है।

यह सूत्र दो कार्य एक साथ करता है श्रु के स्थान में 'शृ' आदेश और कर्तरि शप् सूत्र से प्राप्त शप् को बाधकर श्नु प्रत्यय । श्नु में शकार की इत्संज्ञा होकर 'नु' मात्र बचता हैं शित् होने से सार्वधातुसंज्ञा होती ह। चार लकार सार्वधातु है लट् , लोट्, लड्, विधि लिृड्.। इन चारों लकारों में शप् को बाधकर श्नु प्रत्यय होता है।

श्रु+ति यहॉ श्रु के स्थान पर शृ तथा श्नु प्रत्यय होकर शृ+श्नु + ति बना। शकार की इत्सज्ञा होकर शृ+नु + ति बना। अब यहॉ तिप् सार्वधातुक के परे होने पर सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से नु में उकार को ओकार गुण होकर शृ+नो+ति बना। ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् इस वार्तिक से नो के नकार को णकार होकर शृणोति प्रयोग सिद्ध होता है

शृणुतः– श्रु श्रवणे धातु से प्रथमा विभक्ति द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर श्रु+तस् बना। श्रुः शृच् सूत्र से श्रु के स्थान पर, शृ तथा श्नु प्रत्यय होकर शृ+श्नु + ति बना। शकार की इत्संज्ञा होकंर शृ+नु+ति बना। अब यहॉ नी मे उकार को गुण प्राप्त होता

है। उसके बाद अगला सुत्र प्रवृत हो रहा है–

सार्वधातुकमपित. 1/2/4//अपित सार्वधातुकं ङिद्वत्। शृणुतः।

अर्थः– पित् से भिन्न सार्वधातुक ङिद्वत् होता है।

शृ+नु+तस् यहॉ पर श्नुं पत्यय पित् से भिन्न है पित् से भिन्न होने से ङित् के समान माना गया है। ङित होने से क्ङिति च सूत्र से गुण का निषेध हो जाता है नकार को णकार होकर शृ+णु+तस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर शृणुतः प्रयोग सिद्ध होता है।

शृण्वन्ति श्रु धातु से लट् लकार बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर श्रु+झि बना श्रु के स्थान शृ तथा श्नु प्रत्यय होकर शृ+श्नु+झि बना। झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्त आदेश होकर शृ+श्नु+अन्ति बना। श्नु में शकार की इत्संज्ञा होकर शृ+श्नु + अन्ति बना। अब यहॉ नु तथा अन्ति दोनों सार्वधातुक+अपित है। अपित होने से जो गुण प्राप्त है उसको क्ङिति च सूत्र से निषेध हो जाता है। शृ+नु+अन्ति बना । उसके बाद अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है।

हुश्नुवोः सार्वधातुके 6/4/87/हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके । शृण्वन्ति । शृणोषि, शृणुथः, शृणुथ । शृणोमि

अर्थः– हु धातु तथा श्नु प्रत्ययान्त जो अनेकाच अङ्, उनके असंयोग पूर्व उकार के स्थान पर यण् आदेश हो अजादि सार्वधातुक परे हो तो।

शृ+नु+अन्ति यहा पर अन्ति यह अ अजादि सार्वधातुक परे है, शृनु यह अनेकाच अड़. है उकार से पूर्व कोई संयोग वर्ण भी नही है, अतः नु के उकार को यण वकार होकर , तथा नकार को णकार होकर शृण्वन्ति प्रयोग सिद्व होता है।

शृणोसि – लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर श्रु+नु+सि बना। सिप् में पित् होने के कारण नु में उकार को गुण तथा नकार को णकार होकर शृणोसि प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुथः–जिस प्रकार पुरुष द्विवचन विवक्षा में शृणुतः प्रयोग बना है उसी प्रकार यहॉ भी लट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर शृणुथ प्रयोग सिद्ध होता है

शृणोमि– जिस प्रकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में शृणोति बना। है उसी प्रकार यहॉ भी लट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर तथा पकार की इत्संज्ञा होकर शृणोमि प्रयोग सिद्ध होता है।

शृण्वः शृणुवः श्रु धातोुः लट् लकारे उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर श्रु+बस बना। श्रु के स्थान में शृ आदेश श्नु प्रत्यय होकर शकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर शृनु+वस् बना उसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

लोपश्चाऽस्याऽन्यतरस्यां म्वोः 6/4/107//

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकास्य लोपो वा म्वोः परयोः।

शृण्वः–शृणुवः। शृण्मः शृणुमः।

अर्थः– जिसके पूर्व में संयोग वर्ण नही है ऐसा जो प्रत्यय का अवयव उकार तदन्त का विकल्प से लसेप होता है म अथवा व परे हो तो।

शृनु+वस् यहॉ पर श्नु प्रत्यय का उकार विघमान है इससे परे वकार मकार भी विद्यमान है। अतः इस सूत्र से तदन्त अंग शृनु की वैकल्पिक लोप प्राप्त होने पर अलोऽन्त्य परिभाषा से केवल अन्त्य अल् उकार का लोप हो जाने से शृ न्+ वस् बना । नकार को णकार तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर शृण्वः प्रयोग सिद्ध होता है उकार का लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप नहीं होगा उस पक्ष मे शृणुवः प्रयोग सिद्ध होता है ।

शृण्वः शृणुमः– जिस प्रकार शृण्वः शृणुवः प्रयोग बना है उसी प्रकार यहाँ भी उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर शृण्मः शृणुमः प्रयोग सिद्ध होता है।

लट् लकार

प्रथम पुरुष	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
मध्यम पुरुष	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उतम पुरुष	शृणोमि	शृण्वः	शृण्मः

लृट् लकार

विशेष– हमें पॉच लकार सिद्ध करना है जिसमे लट् लृट् लोट् लङ् लिङ् इन पॉच लकारों में लृट् लकार सार्वधातुक है तथा शेष बचे चार लकार सार्वधातुक है। सार्वधातुक होने से श्रु के स्थान मे शृ तथा श्नु प्रत्यय होता है यहॉ पर हम लृट् लकार का रुप सिद्ध करने जा रहे है, यहॉ पर शृ, श्नु न ही होगा , रूप तथा श्रु को गुण होता है आगे प्रयोग को सिद्ध करते है–

श्रोष्यति–श्रु धातु से लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर श्रु+ तिप् बना । पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर श्रु+ति बना। 'ति' सार्वधातुक होने सें कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है उसको स्यता सीलृलृटोः सूत्र से स्य प्रत्यय होकर श्रु+स्य+ति बना। अब यहॉ वलादि आर्धधा– तुक होने से स्य को इट् का आगम होना चाहिए , किन्तु एकाच अनुदात है। एकाच अनुदात होने से एकाच उपदेशे ऽनुदात्तात् सूत्र से इट् का निषेध होकर श्रु+स्य+ति बना। सार्वधातकार्धधातुकयोः सूत्र स श्रु में उकार को गुण ओकार होकर श्रो+स्य+ ति बना। आदेशः प्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्यादेश होकर श्रोष्यति प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यतः–श्रु धातु से लृट् लकार पथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर श्रु+तस् बना। 'स्य ' आदेश , गुण ,होकर श्रोष्यतस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर श्रोष्यतः प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यन्तिः–श्रु धातु से लृट् लकार पथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर श्रु+झि बना। 'स्य ' आदेश , गुण ,होकर श्रोष्य+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर श्रोष्यन्ति प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यसि श्रु धातु से लृट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय, पकार की इत्संज्ञा , 'स्य' आदेश , गुण होकर श्रोष्यसि प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यथः श्रु धातु से लृट् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर श्रु+थस् बना । 'स्य' आदेश , गुण , सकार को रुत्व विसर्ग होकर श्रोष्यथः प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यथ– श्रु धातु से लृट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में थ् प्रत्यय होकर श्रु+थ बना । 'स्य' प्रत्यय, गुण होकर श्रोष्यथः प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यामि श्रु धातु से लृट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय तथा पकार की इत्संज्ञा श्रु+मि् बना । 'स्य' प्रत्यय, गुण दीर्घ होकर श्रोष्यामि प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यावः श्रु धातु से लृट् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर श्रु+वस् बना। 'स्य' प्रत्यय तथा गुण होकर श्रो+स्य+वस् बना। दीर्घ होकर श्रोष्यावस् सकार को रुत्व विसर्ग होकर श्रोष्यावः प्रयोग सिद्ध होता है।

श्रोष्यामः– श्रु धातु से लृट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय तथा 'स्य' प्रत्यय गुण होकर श्रो+स्य+मस् बना। दीर्घ तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर श्रोष्यावः प्रयोग सिद्ध होता है।

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति

मध्यम पुरुष	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उत्तम पुरुष	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

लोट् लकार

सामान्य नियम– श्रु धातु लोट् लकार में सार्वधातुक है सार्वधातुक होने से श्रु के स्थान में शृ तथा शप् को बाधकर श्नु प्रत्यय होता है और भू धातु के लोट् लकार के समान प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध किये जाते है ।

शृणोतु – शृणुतात् श्रु श्रवणे धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर श्रु+तिप् बना। पकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर श्रु के स्थान में ' श्रुवः शृच् सूत्र से शृ तथा श्नु पत्यय होकर शृ+श्नु+ति बना। शकार की इत्संज्ञा होकर शृ+नु+ति बना। सार्वधातुककार्धधातुकयोः सूत्र से नु में उकार को गुण तथा नकार को णकार होकर शृणोति बना। भवतु के समान शृणोतु तथा शृणुतात् प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुताम् श्रु धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर श्रु+ तस् बना । श्रु के स्थान 'शृ, आदेश श्नु प्रत्यय तस् के स्थान में ताम् आदेश ,नकार को णकार होकर श्रृणुताम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

शृण्वन्तु – श्रु धातु से लोट् लकार बहुवचन विवक्षा में जिस प्रकार लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में शृण्वन्ति बनने के बाद एरु : सूत्र से लोट् के इकार को उकार होकर श्रृण्वन्तु प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणु–शृणुतात् श्रु धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय तथा 'शृ' को श्नु' आदेश होकर शृ+श्नु+सिप् बना।शकार पकार की इत्संज्ञा तथा सि के स्थान पर हि आदेश होकर शृ+श्नु+हि बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

उतश्च प्रत्ययादसंयोग पूवात् 6/4/106//

असंयोग पूर्वात् प्रत्ययोतो हेर्लुक स्यात् , शृणु– शृणुतात् शृणुतम् । शृणुत। शृणवामि, शृणवाव, शृणवाम्।

अर्थ :– जिसके पूर्व संयोग नही, ऐसा प्रत्यय का अवयव जो उकार उससे परे हि का लुक् होता है।

शृ+नु+हि यहॉ पर प्रत्यय का अवयव उकार से पूर्व में कोई संयोग वर्ण नही है अतः इससे परे इस सूत्र के द्वारा हि का लुक् होकर णत्व करने से शृणु प्रयोग सिद्ध होता है जब हि के स्थान में तातङ् होगा उस पक्ष में शृणुतात् प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुतम्– श्रु धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा थस् प्रत्यय तथा श्रु .. 'शृ' श्नु प्रत्यय नकार को णकार थस् को तम आदेश होकर श्रृणुतम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

शृणुत– श्रु धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय शृ+श्नु+थ बना। थ के स्थान में त' आदेश होकर शृणुत प्रयोग सिद्ध होता है ।

शृणवानि :– श्रु धातु से लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय , श्रु के स्थान में शृ, श्नु प्रत्यय , मि के स्थान में नि आदेश , आट् का आगम होकर शृ+नु+आनि बना । नकार को णकार गुण अव् आदेश होकर श्रृण्+अव्+आनि बना। वर्ण सम्मेलन ' करने के बाद शृणवानि प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणवाव– श्रु धातु लोट् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर श्रु के स्थान में शृ, श्नु प्रत्यय , गुण , अवादेश होकर तथा सकार का लोप शृणवाव प्रयोग सिद्ध होता है

शृणवाम– श्रु धातु लोट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर श्रु

के स्थान में शृ, श्नु प्रत्यय,गुण,अवादेश होकर तथा सकार का लोप शृणवाम प्रयोग सिद्ध होता है

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	शृणोतु शृणुतात्	शृणुताम्	शृण्वन्तु
मध्यम पुरुष	शृणु–शृणुतात्	शृणुतम्	शृण्वन्तु
उत्तम पुरुष	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम्

लङ् लकार

सामन्य नियम – लङ् लकार का भूत काल में प्रयोग किया जाता है यथाः रमेश : कथाम् अशृणोत् (रमेश कथा सूना) अतः यह भूत काल का वाक्य है लङ् लकार भूत काल में रूप सिद्धि के लिए चार कार्य अनिवार्य है। 1– अट् का आगमन। 2– इतश्च से इकार का लोप। 3– नित्यं ङितः से उत्तम पुरुष के सकार का लोप। 4– तस् थस् थ, मिप् के स्थान में ताम् , तम् अम् आदेश । अब इसके बाद रूप सिद्ध करते है।
अतः यह लकार सार्वधातुक है सार्वधातुक होने से श्रु के स्थान में शृ तथा शप् के स्थान में श्नु प्रत्यय होता है इस नियम को ध्यान से पढ़े यह नियम आ गया तो रूप सिद्ध करने में कोई समस्या नही होगी।

अश्रृणोत् श्रु धातु से लड्. लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर श्रु+तिप् बना। अब श्रुवः शृ च' सूत्र से श्रु के स्थान में शृ तथा श्नु प्रत्यय होकर शृ+श्नु+ति बना । शकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर सार्वधातुकयों : सूत्र से नु में उकार को गुण ओकार तथा नकार को णकार होकर शृ+नु+ति बना । लुङ्लङ्लृङ् क्ष्वडुदात्तः सूत्र से अट् का आगम तथा अट् में टकार की इत्संज्ञा होती है, टित् होने के कारण धातु के आदि में होकर अश्रृ+नु+ति बना । सार्वधातुकसंज्ञा सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से नु में उकार को गुण ओकार होकर अश्रृ+नो+ति बना। उसके बाद ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् इस वार्तिक से नो के नकार को णकार होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर अशृणोति बना। इतश्च से इकार का लोप होकर अशृणोत् प्रयोग सिद्ध होता है ।

अश्रृणुताम् – श्रु धातु से लङ् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय श्रु के स्थान में शृ, श्नु प्रत्यय , तस् के स्थान में ताम् , अट् का आगमन , नकार को णकार अशृणुताम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

अशृण्वन् श्रु धातु से जिस प्रकार लट् में शृण्वन्ति प्रयोग बना है उसी प्रकार अट् का आगम होकर अशृण्वन्ति बना। इकार तथा तकार का लोप होकर शृण्वन्त् बना। तकार का संयोगान्त लोप होकर प्रयोग अशृण्वन् सिद्ध होता है।

अशृणोः– श्रु धातु से जिस प्रकार लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में शृणोसि बना है उसी प्रकार यहा लड्. लकार मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में अट् का आगम होकर अशृणोसि बना। इकार की इत्संज्ञा तथा सकर को रुत्व विसर्ग होकर अशृणोः प्रयोग सिद्ध होता है

अशृणुतम् :– श्रु श्रवणे धातु से लङ् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय , होकर श्रु+थस् बना। अट् , श्रु के स्थान में शृ तथा श्नु प्रत्यय होकर शृ+नु +थस् बना। नकार को णकार , थस् को तम् आदेश होकर अशृणुतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

अशृणुत– श्रु धातु से जिस प्रकार अशृणुतम् बना है उसी प्रकार यहॉ लड्. लकार मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में अषृणु+थ बना। थ के स्थान में त होकर अशृणुत प्रयोग सिद्ध होता है

अशृणवम् :– श्रु धातु से लड्. लकार उतम पुरुष एकवचन विवक्षा में मिप् , अट् श्रु के स्थान में शृ , शनु, मिप् के स्थान में अम् , गुण अवादेश होकर अशृणवम् प्रयोग सिद्ध होता है।

अशृण्व :— श्रु धातु से लड्. लकार उतम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय , अट् श्रु के स्थान में शृ, श्नु, उकार का विकल्प से लोप, सकार का लोप होकर अशृण्व, उकार के लोप के अभाव पक्ष में अशृणुव प्रयोग सिद्ध होता है

अशृण्मः— इसी प्रकार यहॉ भी उतम पुरुष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय अशृण्म, अशृणुम प्रयोग सिद्ध होता है।

अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
अशृणवम्	अशृण्व–अशृणुव	अशृणुम

विधि लिड्. लकार का प्रयोग चाहिए अर्थ में किया जाता है यथा – रमेशं : कथां शृणुयात् (रमेश को कथा सुनना चाहिए) अतः यहॉ पर विधि लिड्. लकार का प्रयोग किया गया ।

विशेष नियम :— यह लकार सार्वधातुक है सार्वधातुक होने से श्रु के स्थान में शृ तथा श्नु प्रत्यय होत है इकार का लोप तथा उत्तम पुरुष में सकार का लोप भी होता है और यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च से यासुट् आगम,यहॉ पर अतो येय : सूत्र से यास को इय् नही होता है क्यो कि यहॉ अदन्त अड्. नही है यास में सका का लोप होता है। इस विशेष नियम को ध्यान पूवर्क पढकर रूप को सिद्ध करे ।

शृणुयात् —श्रु धातु से लिड्. लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर श्रु+ति बना। अतः सार्वधातुक होने से शप् को बाधकर श्नु प्रत्यय तथा श्रु के स्थान में शृनु+ति बना। यासुट् का आगम होकर शृनु+यास् +ति बना। अब यहॉ पर नु में उकार से परे यास् है इसलिए यास् को इय् नही होगा । इकार का लोप तथा सकार का लोप होकर शृनुयात् बना। नकार को णकार होकर शृणुयात् प्रयोग सिद्ध होता है अब इसी प्रकार सभी प्रयोग बनेंगे । केवल प्रत्ययका अन्तर हेगा।

शृणुयाताम् :—शृणुया+तस् बना।तस् को ताम होकर शृणुयातम् प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुयुः — शृणुया +झि ,झि के स्थान में उस् शृणुया+उस् उस्य पदान्तात् से पररूप होकर , शृणुयुस् बना। सकार को विसर्ग होकर शृणुयुः प्रयोग सिद्ध हेता है ।

शृणुयाः— प्रथम पुरूष एक वचन प्रक्रिया के अनुसार शृणुया+सिप् बना। इकार पकार का लोप तथा सकार को विसर्ग होकर शृणुयाः प्रयोग सिद्ध होता है

शृणुयातम्–शृणुया+थस्, थस् को तम्, आदेश होकर शृणुयातम् प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुयात–शृणुया+थ, थ को त होकर शृणुयात् प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुयाम्–शृणुया+ मिप् , मिप् को अम्, सवर्ण दीर्घ शृणुयाम् प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुयाव–शृणुया+वस् , वस् में सकार का लोप होकर शृणुयाव प्रयोग सिद्ध होता है।

शृणुयाम–शृणुया+मस्, मस् में सकार का लोप होकर शृणुयाम प्रयोग सिद्ध होता है।

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुचन**
प्रथम पुरुष	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
मध्यम पुरुष	शृणयाः	शृणुयाताम्	शृणयात
उतम पुरुष	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

ध्यान रहे कि इन रुपों को संक्षपे में सिद्ध किया गया है विशेष ज्ञान के लिए प्रथम पुरुष के रूपों को देखे। केवल प्रत्यय मात्र जोड़कर रूप सिद्ध किया गया है।

लट् लकार

गम् (जाना)

गम्लृ गतौ (जाना धातु जाने अर्थ में प्रयोग किया जाता है यथा – रामः गच्छति)(राम जाता है।)

सामान्य नियमः— गम्लृ (गम्) धातु का अन्त्य लृकार अनुनासिक होने से उपदेशे नुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा होकर गम् मात्र बचता है लृकार की इत्संज्ञा होने का

फल आगे बताया गया है अब जिस प्रकार भू धातु से भवति बना है उसी प्रकार यहॉ पर भी् गम् धातु से लट् लकार में तिप् , शप्, अनुबन्ध लोप होकर गम् +अ+ति बना। इगन्त अंग न होने से गुण , अयादेश नही होता है। इसके बाद गम् के मकार को छकार तथा तुक् का आगम होकर गच्छति प्रयोग बनता है । अब आगे सूत्रों के माध्यम से रूपों को सिद्ध करते है।

गच्छति–गम् धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर गम्+तिप् बना पकार की इत्संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर गम्+तिप् बना। शकार पकार की इत्संज्ञा होकर गम्+अ+ति बना। अब आगे अगला सूत्र प्रवृत्त होता है–

इषु–गमि–यमां छः 7/3/77//एषां छः स्याच्छिति । गच्छति । जगाम ।

अर्थः– इषु – (चाहना),गम् (जाना), यम् (रोकना) इन तीनों धातुओं शित् परे होने पर टकार आदेश होता है।गम्+अ+ति यहॅा पर शप् का अकार शित् परे है। शित् अर्थात सार्वधातुक। सार्वधातुक चार लकार होते है लट् , लोट् लङ् विधि लिङ्.। यह पहले बताया गया है। इन चारो लकारों में गम् के मकार को छकार आदेश होता है। गम् के मकार को छकार आदेश होकर गछ् +अ+ ति बना। अब छे च' सूत्र से तुक का आगम ह़ोकर ग+तुक् अ+ति बना। ककार उकार की इत्संज्ञा होकर ग+त्+छ+अ+ति बना। स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से श्चुत्व तकार को चकार होकर ग+च +छ्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर गच्छति प्रयोग सिद्ध होता है ।

नोट– ध्यान रहे कि गम् धातु से गच्छ चारों सार्वधातुक लकारों, सभी पुरुषों तथा सभी बचनों में ये होंगे केवल प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में रूप सिद्ध किये जा रहे हैं–

गच्छतः – गम्धातु से प्रथम पुरुष द्विवचन में तस् प्रत्यय होकर गम् + तस् बना। गम् के स्थान में गच्छ होकर तथा स् को रुत्व विसर्ग होकर गच्छतः प्रयोग सिद्व होता है ।

गच्छन्तिः – गम् धातु से झि प्रत्यय होकर गम् + झि,बना। गम् के स्थान में गच्छ आदेश तथा झि के स्थान में अन्ति होकर गच्छ+अन्ति बना। अतो गुणे से पररूप होकर गच्छन्ति प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छसि – गम् धातु से मध्यम पुरुष में सिप् होकर , तथा गम् के स्थान में गच्छ+ सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर गच्छसि प्रयोग सिद्ध होता है ।

गच्छथः – गम् धातु से थस् प्रत्यय तथा गम् के स्थान में गच्छ होकर गच्छथस् स को रुत्व विसर्ग होकर गच्छथः प्रयोग बनता है

गच्छथ– गम धातु से थ प्रत्यय तथा गम् के स्थानमें गच्छथ प्रयोग सिद्ध होता है

गच्छामि– गम् धातु से मिप् तथा गम् के स्थान में गच्छ+मिप् तथा
दीर्घ होकर गच्छामि प्रयोग बनता है।

गच्छावः – गम् धातु से मिप् तथा गम् तथा गम् के स्थान में गच्छ+ वस् बना। दीर्घ होकर गच्छावस् तथा स् को विसर्ग होकर गच्छावः प्रयोग सिद्ध होता है

गच्छामः – गम् धातु से मस् प्रत्यय तथा गम् के स्थान में गच्छ होकर गच्छ+मस् बना। दीर्घ तथा'स्' को रुत्व विसर्ग होकर गच्छामः प्रयोग सिद्ध होता है।

लृट् लकार

सामान्य नियम– लृट् लकार का भविष्यत् काल में प्रयोग किया जाता है यथा रमेशः गृहं गमिष्यति (रमेश धर जायेगा) भू धातु मे सम्यग् रुप से इसका वर्णन किया गया है।

गमिष्यति – गम् धातु से लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर गम्+तिप् बना। पकार की इत्संज्ञा तथा शप् को बाधकर स्यतासिलृलुटोः सूत्र से स्य होकर गम्+स्य+ति बना। 'स्य' बलादि आर्धधातुक है । आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड् वलोदेः इस सूत्र से इड् का आगम प्राप्त है उसको एकाच उपदेशे

ऽनुदात्तात् इस सूत्र से इड् का निषेध प्राप्त हो जाता है उसको रोककर अगले सूत्र द्वारा इट् के निषेध को बाधकर इट् होता है।

गमेरिट् पर स्मैपदेषु 7/2/58//

गमेः– परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु।

गमेः– परस्य सा देरार्धधातुकस्येट् स्यात् पर स्मै पदेषु। गमिष्यति।

अर्थः– गम् धातु से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् का आगम हो जाता है परस्मैपद प्रत्यय हो तो। गम्+स्य+ति यहाँ पर गम से परे 'स्य' सकारादि आर्ध – धातुक विद्यमान है इससे परे 'ति' यह परस्मैपद प्रत्यय भी विद्यमान है। अत इस सूत्र से 'स्य' को इट् का आगम होकर गम्+इ+स्य+ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर गमिष्यति प्रयोग सिद्ध होता है।

नोट–ध्यान यह देना है कि यहाँ पर केवल प्रत्यय में अन्तर आते है सभी पुरूषों तथा बचनों में प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध किया जाता है ।

गमिष्यतः– गम धातु लृट् तस्,स्य,इट, गमिष्यतस् स को रूत्व विसर्ग होकर गमिष्यतः प्रयोग सिद्ध होता है।

गमिष्यन्ति :– गम् धातु लृट् , झि , स्य , इट् अन्ति , पररूप होकर गमिष्यन्ति

गमिष्यसि :– गम् धातु , लृट्, सिप्, स्य , इट् गमिष्य थस् सकार को रूत्व विसर्ग होकर गमिष्यथः प्रयोग सिद्ध होता है

गमिष्यथ– गम् धातु, लृट्, थ, स्य , इट् गमिष्यथ रुप सिद्ध होता है

गमिष्यामि– गम् धातु , लृट्, मिप् , स्य , इट् दीर्घ गमिष्यामि रूप सिद्ध होता है।

गमिष्यावः – गम धातु, लृट्, वस्, स्य, इट्, दीर्घ होकर गमिष्यावस् सकार को रुत्व विसर्ग होकर गमिष्यावःरुप सिद्ध होता है

गमिष्यामः – गम् धातु ,लृट्,मस्,स्य ,इट् 'स' को विसर्ग गमिष्यामः रूप सिद्ध होता है

लोट् लकार

सामान्य नियम :– लोट् लकार का प्रयोग आज्ञा और विधि आदि अर्थों में होता है यथा – त्वं गृहं गच्छ (तुम घर जाओं) अतः यहाँ पर लोट् लकार का प्रयोग किया गया।

गच्छतु–गम् धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर गम्+तिप् बना पकार की इत्संज्ञा तथा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर गम्+तिप् बना। शकार पकार की इत्संज्ञा होकर गम्+अ+ति बना। इषु–गमि–यमां छः इस सूत्र से गम् के मकार को छकार आदेश होकर गछ् +अ+ ति बना। अब छे च' सूत्र से तुक का आगम होकर ग+तुक्+छ्+अ+ति बना। ककार उकार की इत्संज्ञा होकर ग+त्+छ्+अ+ति बना। स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से श्चुत्व तकार को चकार होकर ग+च्+छति बना। वर्ण सम्मेलन होकर गच्छति प्रयोग बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर गच्छतु और तु को विकल्प से तातङ्. होकर भवतात् रूप सिद्ध होता है।

गच्छताम् – गम् धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय तथा पूर्व प्रक्रिया के अनुसार गम् के स्थान में गच्छ आदेश होकर गच्छ+तस् बना। तस् को ताम् होकर गच्छताम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

गच्छन्तु :–गम् धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय तथा पूर्व प्रक्रिया के अनुसार गम् के स्थान में गच्छ आदेश होकर गच्छ+झि बना। झि के स्थान में अन्ति तथा इकार को उकार होकर गच्छन्तु प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छ गच्छतात्– गम् धातु , सिप् , शप्, गम् .. गच्छ , सि हि , हि का विकल्प से लोप होकर गच्छ लोपाभाव पक्षे तातङ्, होकर गच्छतात् रूप सिद्ध होता है।

गच्छतम्–गम् धातु थस्, शप्, गम्.. गच्छ , थस तम्, गच्छतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छत– गम् धातु, थ , गम्.. गच्छ, थ त, गच्छत प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छानि – गम् धातु से लोट् मिप् शप्, गम, गच्छ, मि को नि, आट्, आनि, गच्छानि प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छाव – गम् धातु लोट् वस् शप्, गम् ॅ = गच्छ , आट् का आगम गच्छावस् 'स' को लोप होकर गच्छाव प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छाम – गम धातु, लोट्, मस् शप्, गम् = गच्छ , आट् का आगम, गच्छामस्, स् को लोप होकर गच्छाम प्रयोग सिद्ध होता है।

विशेष – ज्ञान के लिए सामान्य नियम को ध्यान से पढ़ें।

लङ्लकार

सामान्य नियम –लड़. लकार को प्रयोग भूत काल में होता है यथा रमेशः विधालय म् अगच्छत् (रमेश विधालय गया) अतः यह भूत काल है। लड़. लकार में चार कार्य अनिवार्य है। इकार का लोप , उत्तम पुरुष में स का लोप अट् का आगम , तस् थस् आदि के स्थान में ताम् – तम् आदि का आदेश । यहॉ पर लट् लकार के समान सम्पूर्ण रूप वनेंगे । किन्तु यह चार कार्य अनिवार्य रूप से होंगे । रूप सिद्ध करे–

अगच्छत् – गम धातु से लड़. लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय गम्+तिप् बना। शप् प्रत्यय मकार को छकार तथा तुक् का अगम अनुबन्ध लोप , त् को च तथा,श्चुत्व होकर गच्छ+ति बना। अट् का आगम होकर तथा इकार का लोप होकर अगच्छत् प्रयोग सिद्ध होता है।

अगच्छताम् – गम् धातु , लड़. तस्, शप्, अट का आगम गम्– गच्छ , तस् को ताम् अगच्छताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

अगच्छन्.. गम् धातु, लङ् झि , अट् का आगम , गच्छ, झि = अन्ति इकार का लोप तकार का संयोगान्त लोप अगच्छन् रूप सिद्ध होता है।

अगच्छः– गम् धातु , लङ्, सिप् ,शप् , अट् का आगम गम् =गच्छ, इकार का लोप सकार को विसर्ग अगच्छः प्रयोग सिद्ध होता है।

अगच्छतम् –गम् धातु लङ् थस् ,शप् अट्,गम्..गच्छ,थस् ॅ=तम् अगच्छतम् प्रयोग सिद्ध होता है

अगच्छत्... गम् धातु,लङ् लकार थ प्रत्यय शप्,अट्,गम् =गच्छ,थ–त अगच्छत प्रयोग सिद्ध होता है।

अगच्छम् –गम् धातु ,लङ् मिप्,शप् ,अट्,गम–गच्छ,मिप्–अम् पररूप अगच्छम्

अगच्छाव – गम धातु , लड़. , वस् , शप्, अट्, का आगम, गम् – गच्छ दीर्घ, अगच्छावस् , 'स' का लोप अगच्छाव प्रयोग सिद्ध होता है।

अगच्छाम– गम धातु,लड़. मस्,शप् ,अट का आगम गम्...गच्छ दीर्घ अगच्छामस् स् का लोप अगच्छाम प्रयोग सिद्ध होता है।

विधि लिङ्

विधि लिङ् लकार का चाहिए अर्थ में प्रयोग करते है। यथा –सुरेशं विद्यालयं गच्छेत् (सुरेश को विलय जाना चाहिए) अतः यहॉ विधि लिड़. लकार का प्रयोग हुआ ।

सामान्य नियम –यह लकार ङित् है ङित् होने से तीन कार्य अनिवार्य है इतश्च से इकार का लोप नित्यं ङितः से उत्तम पुरुष में सकार का लोप 3–तस् . थस् थ मिपां तां दृ ताम् से तस्.. ताम् , थस्... तम्, थ त् , मिप् .. अम् । यह लकार सार्वधातुक है। सार्वधातुक होने से कर्तरि शप् से यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च से यासुट का आगम , अनुबन्ध लोप होने के बाद यास् के ङिच्च में इय् होता है। यह विधि सभी पुरुषों तथा वचनों में होगा । रूप को सिद्ध करें –

गच्छेत् – गम् धातु से विधि लिड़. लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय् तथा कर्तरि शप् से शप् प्रत्यय होकर गम्+ शप्+ति बना। शकार पकार की इत्संज्ञा

तथा लोप होकर गम्+अ+ति बना। सार्वधातुक होने से गम् में मकार के स्थान में इषुगमिय मां छः सूत्र से छकार होकर ग छ्+ अ+ ति बना। छे च सूत्र से तुक का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर 'त'तथा तकार को श्चुत्व चकार होकर गच्छ + ति बना।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च सूत्र से यासुट् का आगम , अनुबन्ध लोप होकर गच्छ+यास्+ति बना। इकार का लोप तथा अतो येयः सूत्र से यास् के इय् होकर गच्छ+ इय्+ त् बना। आद गुणः सूत्र से गुण होकर गच्छेय्+त् बना। लोपो व्योर्वलि सूत्र से यकार का लोप होकर तथा वर्ण सम्लेलन होकर गच्छेत् प्रयोग सिद्ध होता है।
इसी प्रकार सभी प्रयोग सिद्ध होगें । जिस प्रकार गम् से आपने गच्छेय् बना लिया । उसके बाद वलादि है तो यकार का लोप होगा, यदि वलादि नही है तो यकार का लोप नही होगा । विशेष ज्ञान के लिए भू धातु के विधि लिङ् लकार के प्रयोग को देखिये। अब प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में रूप सिद्ध किये जाते है।

गच्छेताम् – गम् धातु , लिङ् तस् , शप्, गम् – गच्छ + तस्+ ।तस् बना। तस्– ताम् यासुट् , इय्, गुण गच्छेय्+ ताम् बना। यकार का लोप होकर गच्छेताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छेयुः –गम् धातु, झि ,शप् ,गम् –गच्छ , झि – उस् , यास् = इय् , गुण , गच्छेयुस् 'स' को विसर्ग गच्छेयुः प्रयोग सिद्ध होता है

गच्छेः –गम् धातु , लिङ् सिप् , शप् , गम् = गच्छ ,गच्छ + वस् यास् –इय् , गुण , गच्छेय्+स् ,यकार का लोप , 'स' को विसर्ग गच्छेः प्रयोग ' सिद्ध होता है।

गच्छेतम्– गम् = धातु , लिङ् , थस् , शप्, गम् = गच्छ, थस् = तम् यास् , इय् , गच्छेय्+तम्, यकार का लोप होकर गच्छेतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छेत– गम् धातु ,लिङ्, थ , शप् , गम्.. गच्छ , यास् , इय थ – त, गुण , यकार का लोप , गच्छेत प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छेयम् – गम् धातु , लिङ् मिप्, शप्, गम् =गच्छ , यास् , इय्, गुण , मिप् = अम् गच्छेयम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

गच्छेव– गम् धातु , लिङ् ,वस्, शप् ,गम् = गच्छ ,यास् , इय् , गुण , यकार का लोप , 'स' का लोप , व प्रयोग सिद्ध होता है।

गच्छेम – गम् धातु , लिङ् मस्, शप् , गम् = गच्छ, यास् , इय्, गुण यकार सकार लोप गच्छेम प्रयोग सिद्ध होता है।

सामान्य नियम :– अभी तक आपने परस्मैपद के रूपों सिद्ध किया अब आत्मने पद प्रत्यय सि करेंगे । हम पॉच लकारों में रूपों को सिद्ध करना है। लट् , 2 = लृट् , 3 = लोट् 4–लड्. 5– विधिलिड्. । इन पॉच लकारों में से लट्, लृट् , लोट् ये तीन लकारों में तकार की इत्संज्ञा हुई है। इस लिए ये तित् है तित् होने से तित् आत्मने पदानां टेरे इस सूत्र से आत्मने पद प्रत्यय जो टि है उसको एकार होता है।
टि संज्ञा करने वाला सूत्र है अचोऽन्त्यादिटि । यह अन्त्य अच् की इत्संज्ञा तथा वह अच् है जिसके आदि में उस शब्द समुदाय की टि संज्ञा होती है। आत्मने पद नव प्रत्यय है उनकी संज्ञा होती है इसका फल है कि टि को एत्व अर्थात एकार करना है यथा –

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	त = .ते	आताम् ताम् = ते ,	झ = अन्ते,
मध्यम पुरुष	थास् =से	आथाम्=थे	ध्वम् ध्वे
उतम पुरुष	इट्=ए	वहि=वहे	महिड्.=महे

प्रथम पुरुष एकवचन में त में जो अकार है उसकी टि संज्ञा होती है और उस टि को एकार होता है अर्थात् 'त' में जो अकार है उसको एकार हो कर के ते बनता है यह अन्त्य अच् का उदाहरण है।
और वह अच है जिसके आदि में उस शब्द समुदाय की ति संज्ञा होती है यथा आताम्

में आम्। यहॉ पर अच् है मकार के आदि में आ । इस लिए आकार सहित मकार अर्थात 'आय्' की टि संज्ञा हुई । ति संज्ञा करने करे का फल है टि संज्ञक 'आम्' की टि संज्ञा हुई । टि संज्ञा करने का फल है ति संज्ञक आम के स्थान में एकार । होकर आत्+ए बना। वर्ण सम्मेलन होकर आते बना। इसी प्रकार सभी प्रत्ययों में समझना चाहिए ।

लट् लकार

आत्मेन पद एध् वृद्धौ धातु

अब आत्मनेपद धातुओं का अध्ययन करेंगे।

एध् धातु का बढ़ने अर्थ में प्रयोग होता है अनुनासिक तथा अनुदात है। अकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर एध् मात्र बचा। अनुघतेत होने से एध् धातु से अनुदान्तङि.त आत्मने पदम् सूत्र से आत्मने पद त, आताम् , झ' आदि नव प्रत्यय होते है।

आत्मने पद नव प्रत्यय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	त	आताम्	झ
उतम पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
मध्यम पुरुष	इट्	वहि	महिङ्.

लट् लकार

एधेत : – एध् धातु से लृट् लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में त प्रत्यय होकर एध् + त बना। तिङ्. शित् सार्वधातुक से सार्वधातुक संज्ञा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर एध् + शप् + त बना। शकार पकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर एध् + अ + त बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है।

टित् आत्मने पदानां टेरे 3/4/79//

टित् आत्मने पदानां टेरेत्वम्। एधते

अर्थ :– टित् लकार के स्थान पर आदेश होने वाले आत्मने पद प्रत्ययों की टि को एकार आदेश होता है ।

टित् का अर्थ होता है जिस लकार में टकार की इत्संज्ञा हुई है इन पॉच लकारो में लट् लृट् लोट ये तीन लकार टित् है टित् होने से प्रत्यय का टि उसको एकार हो जाता है।

आत्मने पद

एध्+अ+त यहॉ पर प्रत्यय का टि है 'त' में अकार उसको एकार होकर एध् + अ+त् + ए बना । वर्ण सम्मेलन एधते प्रयोग सिद्ध होता है

एधेतः– :– एध् धातु से लृट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में आत्मने प्रत्यय आताम् होकर एध् + आताम् बना। सार्वधातुक संज्ञा कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर एध्+अ+आताम् बना इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है।

आतो ङ्.तः 7/2/81//

अतः– परस्य ङिताम् आकारस्य इय् स्यात्। एधेते । एधन्ते ।

अर्थः– अदन्त अंग से परे ङि.तों के आकार के स्थान पर इय् आदेश होता है।

एध्+अ+आताम् में 'ध' में अकार मिलकर एध + आताम् बना। अब यहॉ अदन्त अंग है एध, इससे परे आताम् सार्वधा तुकमपित से ङि.त है अतः इस सूत्र से आताम् में 'आ' को इय् आदेश होकर एध+ इय्+ ताम् बना। लोपो व्योर्वलि सूत्र से यू का लोप होकर तथा आद् गुणः से गुण होकर एधेताम् बना। टित् आत्मने पदानां तेरे सूत्र से एधेताम् में तिआम् को एकार होकर एधेत्+ए बना। वर्ण सम्मेलन होकर एधेते प्रयोग सिद्व होता हे।

एधन्ते :– एध् धातु से आत्मने पद बहुवचन विवक्षा में झ प्रत्यय होकर एध्+झ बना। सार्वधातुक संज्ञा कर्तरिशप् सूत्र से शप् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर एध्+अ+झ बना। झोडन्तः सूत्र से झा के स्थान में अन्त आदेश होकर तथा अन्त का जो टि अकार है उसको एकार होकर एध् + अ+ अन्ते बना। अतो गुणे सूत्र से पररुप होकर एधन्ते

प्रयोग सिद्ध होता है

एधसे–एध् धातु मध्यम पुरुष एकवचन विवक्षा में आत्मेनपद प्रत्यय थास् होकर एध्+ थास् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रतयय तथा अनुबन्ध लोप होकर एध् + अतः थास् बना। उसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

थासःसे 3/4/80//

टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे , एधेथे एधध्वे। अतो गुणे एधे, एधावहे, एधामहे।।

अर्थः– टित् लकार के स्थान पर हुए थास् को 'से' आदेश होता है।

एध्+अ+थास् यहॉ पर टित् लकार लट् के स्थान पर थास् आदेश हुआ है अतः इस सूत्र सूत्र से थास् को 'स' आदेश करने पर एध्+अ+से बना। वर्ण सम्मेलन करने पर एधसे प्रयोग सिद्व होता है।

एधेथे– एध् धातु लट् लकार आत्मने पद मध्यम पुरुष द्विवचन विवक्षा में आथाम् प्रत्यय होकर , तथा शप् अनुबन्ध लोप होकर एध्+अ+आथाम् बना। इसके बाद सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से आथाम् को डि.त् होने के कारण आतो डि.तः से आगम के आ को इय् आदेश होकर एध् इय् + थाम् बना। आद् गुणः से गुण होकर एधेय् + थास् यकार का लोप तथा टि. थाम् में आम् को 'ए' होकर एधेथे प्रयोग सिद्व होता है।

एधध्वे :– एध धातु लट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन विवक्षा में आत्मने पद प्रत्यय ध्वम् होकर , तथा शप् अनुबन्ध लोप होकर एध्+ध्वम् बना। ध्वम् में अम् हि को एकार होकर एधध्वे प्रयोग सिद्व होता ।

एधे :– एध धातु से लट् लकार आत्मने पद प्रत्यय उतम पुरुष एक– वचन विवक्षा में इड् प्रत्यय होकर तथा शप् अनुबनध टित् आत्मेन पदानां टेरे इस सूत्र से इ के स्थान में एकार होकर एध् + ए बना। वृद्वि को प्रयोग सिद्व होता है।

एधावहेः– एध् धातु लट् लकार आत्मने पद उतम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वहि प्रत्यय होकर तथा शप् अनुबन्ध लोप एध्+ वहि बना। अतो दीर्धा यगि से दीर्ध तथा ति संज्ञक 'इ' को एकार होकर एधावहे प्रयोग सिद्व होता है।

एधामहेः– एध् धातु लट् लकार आत्मने पद उतम पुरुष बहुवचन विवक्षा में महिड्. प्रत्यय तथा ड.कार की इत्संज्ञा शप् प्रत्यय अनुबन्ध लोप होकर एध्+महि बना।
अतो दीर्धो मनि से दीर्ध तथा इ की एकार होकर एधामहे प्रयोग सिद्व होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	एधते	एधेते	एधेन्ते
मध्यम पुरुष	एधसे	एधेथे	एधेध्वे
उतम पुरुष	एधे	एधावहे	एधामहे

लृट् लकार

यह धातु आर्धधातुक है आर्धधा तु क होने के होने से एध् धातु से यहॉ पर स्यतासीलृ लतो. सूत्र से स्य , आर्धधातुक स्यड् बलादे : से इट् का आगम अनिवार्य है और यह लकार टित् है तित् होने तित् आत्मेनपदानां तेरे इस सूत्रसे एत्व होता है।

एधिष्येत :– एध् धातु से लृट् लकार आत्मेन पद प्रथम पुरुष एकवचन विवक्षा में प्रत्यय होकर एध्+त बना। कर्तरि शप् प्रत्यय प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासिलृलुटोः सूत्र से स्य प्रत्यय होकर एध्+स्य+त बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र से इट् का आगम होकर एध्+इ+स्य+त बना। तित् आत्मेनपदानां टेरे सूत्र से एत्व होकर एध् + इ+स्य+ ते बना। वर्ण सम्मेलन होर एधिष्यते प्रयोग सिद्ध होता है।

इस प्रयोग को ध्यान पूर्वक पढें। इसी प्रकार अन्य सभी रुप संक्षेप में सिद्ध किया जा रहर है।

एधिष्येते –एध् धातु लृट् , आत्मने पद प्रथम पुरुष द्विवचन विवक्षा में आताम् प्रत्यय होकर एध्+आताम् बना। स्य प्रत्यय , इट् आगम स्=ष् होकर एधिष्य+ आताम् बना। आतो डि.तः सूत्र से आताम् में आ को इय् , एधिष्य इय् ताम् गुण तथा यकार का लोप

होकर एधिष्येताम् बना। टी को ए होकर एधिष्येते प्रयोग सिद्व होता है।

एधिष्यन्ते :– एध् धातु लृट उतम पुरुष बहुवचन में ध्वम, स्य , इट् , एधिष्य+ध्वम् बना। ध्वम् मे अम के स्थान पर एकार होकर एधिष्यध्वे प्रयोग सिद्व होता है।

एधिष्येः– एध् धातु लृट उतम पुरुष एकवचन में इट् प्रत्यय , स्य,इट् एधिष्य+ इ=ए, षररुप होकर एधिष्ये प्रयोग सिद्व होता है।

एधिष्यावहे :– एध धातु लृट् , उतम पुरुष द्विवचन में वहि , स्य इट् दीर्ध, सकार होकर एधिष्यावहे प्रयोग सिद्व होता है

एधिषामहेः– एध् धातु लृट् उतम पुरुष बहुवचन में महिङ्.प्रत्यय स्य , इट् दीर्ध , इकार को एकार एधिष्यामहे प्रयोग सिद्ध होता है।

लोट् लकार

सामान्य नियम :– यह लकार तित् है तथा सार्वधातुक है । टित् – होने से टि को एकार तथा सार्वधातुक होने से शप् होता है अतः ये दोनों कार्य अनिवार्य है। अब आगे सूत्रों के द्वारा रुपों को सिद्व करते है।

एधताम्ः– एध् धातु से लोट् लकार में जिस प्रकार लट् लकार प्रथम पुरुष : एकवचन में एधेत बनाहै। उसी प्रकार यहॉ भी एधेते बना है । इसके बाद अमला सूत्र प्रवृत हो रहा है–

आमेतः 3/4/90 लोट् एकारस्य आम् स्यात् । एधेताम्, एधेताम्, एधन्ताम् ।

अर्थः– लोट् लकार के एकार के स्थान पर आम् आदेश होता है। एधेत यहॉ पर लोट् लकार का एकार है एधेते में 'ते' में 'ए' उसको आम् आदेश होकर एधत्+ आम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर एधताम प्रयोग सिद्व होता है।

एधेताम :– जिस प्रकार लट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में एधेते बना है। उसी प्रकार यहॉ लोट् लकार में पहले एधेते बना। है इसके बाद आमेत : सूत्र से ऐधेते ते मे जो एकार है उसको आम् आदेश होकर एधेत्+ आम् बना वर्ण सम्मेलन होकर एधेताम् प्रयोग सिद्व होता है

एधन्ताम :– जिस प्रकार लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में एधन्ते बना है। उसी प्रकार यहॉ भी लोट् लकार में पहले एधन्ते बना। इसके बाद आमेतः सूत्र से एधन्ते में एकार के स्थान में आम् आदेश होकर एधन्ताम् प्रयोग सिद्व होता है।

एधस्व :– जिस प्रकारमध्यम पुरुष एकवचन एधसे बना है उसी प्रकार यहा लोट् लकार मध्यम पुरुष मे एधसे बनने के बाद आमेतः सूत्र के द्वारा एकार को आम् आदेश प्राप्त है। इसका बाधक अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है–

सवाम्यां वाऽमौ 3/4/91//सवाम्यां परस्य लोडेतः कमाद् वामौ स्तः। एधस्व, एधेथाम्। एधध्वम्।

अर्थः– स् और व् से परे लोट् के एकार को क्रमशः व और अम् आदेश हो जाते है।

एधसे यहॉ पर स से लोट् लकार का एकार है एधेसे का स् के बाद एकार है एधसे का स् के बाद एकार । इस एकार वकार आदेश होकर एधस्व प्रयोग सिद्व होता है।

एधेथाम्– जिस प्रकार लट् लकार के मध्यम पुरुष द्विवचन में एधेथे प्रयोग बना। उसी प्रकार यहॉ भी लोट् लकार के मध्यम के मध्यम पुरुष द्विवचन में एधेथे बनने के बाद आमेतः सूत्र से लोट् लकार के एधेथे में थे में जो एकार है उसको आम् आदेश होकर एधेथ् + आम बना। वर्ण सम्मेलन होकर एधेथाम् प्रयोग सिद्व होता है।

एधध्वमः– जिस प्रकार लट् लकार के मध्यम पुरुष बहुवचन में एधध्वे बना। है। उसी प्रकार यहॉ भी लोट् लकार में एधध्वे बनने के बाद सवाम्यां वाऽमौ सूत्र से ध्वें में जो एकार है बनने के बाद सवाम्यां वाऽमौ सूत्र से ध्वें में जो एकार है उासको अम् आदेश होकर एध्ध्व्+अम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर एधध्वम् प्रयोग सिद्व होता है।

एधै– एध धातु लोट् लकार उतम पुरुष एकवचन विवक्षा में इट् प्रत्यय , शप् प्रत्यय तथा टि को एत्व होकर एध+ए बना। उसके बाद अगला सूत्र प्रत्वत हो रहा है–

एत ऐ 3/4/93// लोड्ु तमस्य एतऐ स्यात् । एधै , एधावहै , एधामहै,
अर्थ :– लोट् लकार के उतम पुरुष के एकार को ऐकार आदेश होत है।
एध्+ए यहा पर उतम पुरुष एकार को ऐकार आदेश होकर एध+ऐ बना। आडुतमस्य पिच्च सूत्र से आट् का आगम होकर एध+ आ +ऐ बना। आटश्च सूत्र से आ+ऐ के स्थान पर वृद्वि ' ऐ' आदेश होकर सूत्र से आ+ऐ+के स्थान पर वृद्वि 'ए' आदेश होकर एध+ऐ बना। वृद्वि रेचित से वृद्वि एकादेश होकर एधै प्रयोग सिद्व होता है ।
एधावहै – एध् धातु लोट् उतम पुरुष द्विवचन में वहि प्रत्यय , शप् होकर एध+वहि बना। टि को एत्व् एत ऐ सूत्र से एकार को ऐकार होकर तथा आट् का आगम होकर एध+आ +वहै सवर्ण दीर्घ करने पर एधावहै प्रयोग सिद्ध होता है।
एधामहै– एध् धातु लोट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में महिड्. प्रत्यय , शप् तथा टि को एकार होकर एध+महे एकार को ऐकार तथा आट का आगम सर्वण दीर्घ करने पर एधामहै प्रयोग सिद्ध होता है इस लकार को सम्यग् रुप से ज्ञान करने के लिए लट् लकार के रूपों को ध्यान पूर्वक अध्ययन करें।

लड्. लकार

सामान्य नियम– यह लकार ङित है ङित होने से अब टित् आत्मने पदानां टेरे सूत्र से एत्व नही होगा ।एक बात का और ध्यान देना है यह धातु अजादि है अजादि होने से लुङ् लङ् .लृङ् क्ष्वडुदात्तः सूत्र से अट् का आग नही होगा आडजादीनाम् सूत्र से आट का आगम तथा आटश्च सूत्र से वृद्धि करके रुप सिद्ध किये जाते है।
ऐधत :– एध् धातु , लड्. लकार प्रथम पुरुष एकवचन में त प्रत्यय तथा शप् प्रत्यय होकर एध्+त बना। अब यहॉ आडजादीनाम् सूत्र से आ+ एध् का एकार , इन दोनों के स्थान पर ऐकार होकर ऐध+त बना। वर्ण सम्मेलन होकर ऐधत प्रयोग सिद्ध होता है।
ऐधताम् :– एध् धातु लड्. लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में आम् प्रत्यय तथा शप् होकर एध+ आताम् बना। अब आतो ङितः सूत्र से आ को इय् गुण होकर ऐधेय् + ताम् बना। यकार का लोप होकर ऐधेताम् प्रयोग सिद्ध होता है यहा पर टि को एकार नही है।
ऐधन्त :– एध् धातु लड्,, प्रथम पुरुष बहुवचन में झ प्रत्यय तथा शप् होकर एध+झ बना। आट का आगम तथा आटश्च से वृद्धि होकर ऐध+ झ बना। झ के स्थान पर अन्त आदेश पररुप होकर ऐधन्त प्रयोग सिद्ध होता है ।
ऐधथाः एध् धातु लड्. लकार मध्यम पुरुष एकवचन में थास् प्रत्यय , शप् होकर एध+ थास् बना। आट् का आगम वृद्धि होकर ऐधथा : प्रयोग सिद्ध होता है।
ऐधेथाम् :– एध् धातु से लड्. लकार मध्यम पुरुष द्विवचन में आथाम् प्रत्यय , शप् होकर एध्+ आथाम् बना । आट् का आगम वृद्धि होकर ऐध + आथाम बना। आथाम में आ को इय ऐधेथाम् प्रयोग सिद्ध होता है
ऐधध्वम् :– एध् धातु से लड्. लकार मध्यम पुरुष बहुवचन ध्वम् प्रत्यय तथा शप् होकर एध+ध्वम् बना। आट् का आगम तथा वृद्धि होकर ऐधध्वम् प्रयोग सिद्ध होता है।
ऐधे :– एध् धातु उतम पुरुष एकवचन विवक्षा में इट प्रत्यय तथा शप् प्रत्यय होकर एध+इ+बना। आट् का आगम तथा वृद्धि होकर ऐध + इ बना। गुण होकर ऐधे प्रयोग सिद्ध होता है।
ऐधावहि :– एध् धातु से लड्. लकार उतम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वहि प्रत्यय तथा शप् होकर एध+वहि बना। आट का आगम तथा वृद्धि होकर ऐध्+ वहि बना। अतो दीर्धो यञि सूत्र से दीर्घ होकर ऐधावहि प्रयोग सिद्ध होता है।
ऐधामहि :– एध् धातु से लड्. लकार उतम पुरुष बहुवचन विवक्षा में महिड्. प्रत्यय तथा शप् प्रत्यय होकर एध्+महि बना। आट् का आगम तथा वृद्धि होकर ऐध+ महि बना। अतो दीर्घो यञि सूत्र से दीर्घ होकर ऐधामहि प्रयोग सिद्ध होता है।

विधिलिड्. लकार

सामान्य नियमः– यह धातु सार्वधातु है सार्वधातुक होने से शप् होता है ।
एधेतः– एध् धातु से विधि आदि अर्थो में लिङ् लकार , प्रथम पुरुष एकवचन में त

आदेश , कर्तरि शप् से तथा अनुबन्ध लोप होकर एध+अ+त बना। 'ध' में अकार मिलकर एध+त बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत होता है ।

सीयुडागम विधायक विधि सूत्र

लिङः सीयुट 3/4/102//

अर्थः – लिङ् लकार को सीयुट का आगम होता है

सीयुट् में टकार की हलन्त्य से तथा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा तथा दोंनो का तस्य लोपः से लोप होकर सीय् मात्र बचता है। टित् होने के कारण 'त' के आदि में बैठता है। परस्मैपद में सीयुट को बाधकर यासुट् का आगम होता है।

एध्+त यहॉ पर सीयुट का आगम अनुबन्ध लोप , एध्+सीय्+त बना। सीय में सकार का लिङः सलोपो ऽनत्यस्य से लसप होकर एध+ईय+त बना। आद गुण : से गुण होकर एधेत प्रयोग सिद्ध होता है

इस प्रयोग को सम्यग् रुप से अध्ययन करें । इसी प्रकार अन्य रुप सिद्ध होता होगें जो संक्षेप में सि किया जा रहा है

एधेयाताम् एध् धातु लिङ् प्रथम पुरुष द्विवचन में आताम् शप् होकर एध+आताम् बना। सीयुट् का आगम, अनुबन्ध लोप , एध्+सीय्+त बना। सीय में सकार का लिङः सलसोपो ऽनन्त्यस्य से लोप होकर एध्+ईय्+त बना । यकार का लोपो व्योर्वलि सूत्र से लोप होकर एध+ई+त बना। आद गुण : से गुण होकर एधेत प्रयोग सिद्ध होता है

इस प्रयोग को सम्यग् रुप से अध्ययन करें । इसी प्रकार अन्यरुप सिद्ध होंगे जो संक्षेप में सिद्व किया जा रहा है

एधेयाताम् :– एध् धातु लिड्. , प्रथम पुरुष द्विवचन में आताम् शप् होकर एध+ आताम बना। सीयुट का आगम , अनुबन्ध लोप होकर एध+सीय्+आताम् बना। सकार का लोप आगुणः से गुण होकर एधेय्+आताम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर एधेयाताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

एधेरन :– एध् धातु ,लिड् प्रथम पुरुष बहुवचन प्रत्यय , शप् , सीयुट् , अनुबन्ध लोप होकर , एध+सीय्+झ बना। सू का लोप , गुण , यकार का लोप होकर एधे+ झ बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

रनादेश विधायक विध सूत्र

झस्यरन 3/4/105//लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथाः , एधेयाथाम्। एधेध्वम्।

अर्थ :– लिड्. लकार के स्थान पर रन् आदेश होता है। एध्रन्+झ्यहॉ पर लिड्. लकार के स्थान पर रन होकर एधेरन् प्रयोग सिद्ध होता है।

एधेथाः एध् धातु लिड्. , मध्यम पुरुष एकवचन में थास् प्रत्यय , शप् एध+थास्, सकार का लोप ,गुण यकार का लोप एधेथास् बना। सकार को विसर्ग होकर एधेथाः प्रयोग सिद्व होता है ।

एधेयाथाम्:– एध्धातु , लिड्. मध्यम पुरुष द्विवचन में आथाम् प्रत्यय शप् , सीय् सकार का लोप गुण होकर एधेयाथाम् प्रयोग सिद्व होता है ।

एधेयाथाम्:– एध् धातु , लिड्. मध्यम पुरुष द्विवचन में आथाम् प्रत्यय शप्, सीय् सकार का लोप गुण होकर एधेयाथाम् प्रयोग सिद्व होता है।

एधेध्वम्:– एध् धातु, लिड्. मध्यम पुरुष बहुवचन मे ध्वम् प्रत्यय शप्, सीय्, सकार का लोप ,गुण , यकार का लोप होकर एधेध्वम् प्रयोग सिद्व होता है।

एधेय :– एध् धातु लिड्, उतम पुरुष एकवचन में इट् प्रत्यय शप्, सीय्, सकार का लोप हाकरएध+ईय्+ इ बना। गुण होकर एधेय्+इ बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है– **अतः आदेश विधायक विधि सूत्र** –

इटोऽत 3/4/106/लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात्। एधेय। एधेवहि। एधेमहि

अर्थः– लिड्. के स्थान पर आदेश हुए इट् के स्थान पर अत् अर्थात् हस्व अकार आदेश

होता है। एधेय्+इ,यहॉ लिड्. स्मन्धी इट् है। इस इ के स्थान पर अकार होकर एधेय् +अ वना। वर्ण सम्मेलन होकर एधेय प्रयोग सिद्व होता है।

एधेवहि :– एध् धातु , लिड्. , उत्तम पुरुष द्विवचन विवक्षा में वहि प्रत्यय शप्, सीय, सकार का लोप , गुण , यकार का लोप होकर एधेवहि प्रयोग सिद्ध होता है।

एधेमहिः– एध्धातु , लिड्. लकार उतम पुरुष बहुवचन विवक्षा में महिड्. प्रत्यय , शप् , सीय्, सकार का लोप , गुण, यकार का लोप होकर एधेमहि प्रयोग सिद्व होता है।

अभ्यास प्रश्न

लघु– उत्तरीय प्रश्न

1–प्रश्न–इस इकाइ में कितने इकाइ पढे गये है

2–प्रश्न–इस इकाइ में कौन कौन धातु पढे गये है

3–प्रश्न–श्रु धातु का अर्थ क्या होगा

4–प्रश्न गम् धातु का अर्थ क्या होगा

5–प्रश्न – एध् धातु का अर्थ क्या होगा

बहुल्पीय प्रश्न

1– लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क) – भवति (ख) – भवतः

(ग)– भवन्ति (घ)– श्रृणोसि

2. लृट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रूप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) –गमिष्यामि

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

3. लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) –गच्छानि

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

4. लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) – एधै

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

4. लिङ् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) – एधेय

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़न के पश्चात् आप जान चुके है कि धातु रुप की सद्दि किस पकार हाती है इसकी आवश्यकता संस्कृत में अनुबाद बनाने के लिए किया गया है। इस इकाई मे पाच लकारो में भ् धातु की रुप सिद्दि गई है। 1–लट् लकार 2–लृटृ 3–लोट् , विधि लिड्. । लकार तो श होते है। लेकिन सामान्य ज्ञान के लिए इन्ही पॉच लकारों का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। इस इकाई में आत्मने पदी , परस्मैपदी तथा उमय पदी धातु कौन से होते है। इन सबका वर्णन सूत्रों के माध्यम से किया पुरुष भी तीन प्रकार के होते है प्रथम पुरुष , मध्यम पुरुष तथा उतम पुरुष । इन तीनों पुरुषों का सम्यग् रुप से वार्णन किया गया है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
गच्छति	जाता है।	गच्छतु	जावे
गच्छसि	जाते हो	गच्छ	जाओ
गच्छामि	जाता हूॅ।	गच्छानि	जाउ
गमिष्यति	जायेगा	अगच्छत्	गया
गमिष्यसि	जाओगे	गच्छेत्	जाना चाहिए

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु– उत्तरीय प्रश्न

1–उत्तर– इस इकाइ में तीन इकाइ पढे गये है

2–उत्तर –इस इकाइ मे श्रु गम् एध् धातु पढे गये है

3–उत्तर–श्रु धातु का अर्थ सुनना होगा

4–उत्तर– गम् धातु का अर्थ जाना होगा

5–उत्तर – एध् धातु का अर्थ बढना होगा

बहुल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1– (घ)– श्रृणोसि

2.– (ख) –गमिष्यामि

3–(ख) –गच्छानि

4–(ख) – एधै

5–(ख) – एधेय

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उप ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
लघु सिद्वान्त कौमुदी	वरदसजा चार्य	चौखम्मा संस्कृत भारति वाराणसी
2– वैयाकरण सिद्वान्त कौमुदी	नागेश भटट्	
3– व्याकरण महाभाष्य	पतंजलि	

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1– लघुसिद्वान्त कौमुदी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1– गच्छति रूप को सिद्ध करें

इकाई. 3 व्याकरण नी (णीञ्) पच्, भज् ,यज्, इन चार धातुओं की सूत्र ,वृत्ति ,अर्थ ,व्याख्या सहित रूप सिद्धि

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नी,पच् धातुओं का लट्,लृट्, लोट्, लङ्, विधिलङ् इन पांच लकारों में सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित रूप सिद्ध।
3.4 भज्, यज् धातुओं का लट्, लृट्, लोट्, लङ् विधिलङ् इन पांच लकारों में सूत्र, वृत्ति, अर्थ, व्याख्या सहित रूप सिद्ध।
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 उपयोगी पुस्तकें
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1. प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि कितने धातुओं का वर्णन किया गया? इन चार धातुओं का अर्थ क्या है? इन सबका वर्णन किया गया है।

इन धातुओं का सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित स्मयग् रूप से वर्णन किया गया है। इन धातुओं का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इनको विशेष रूप से ज्ञान के लिए नियमों को समझते हुए विशेष प्रकार का जो नियम बताया गया है। उसका भी आप अध्ययन करेंगे। इन धातुओं को सिद्ध करते हुए इन रूपों का भी सम्यग् रूप से ज्ञान कर सकेंगे। इन रूपों को ज्ञान करते हुए संस्कृत भाषा में आप लिखने, पढ़ने, बोलने में समर्थ होंगे।

इस इकाई के अध्ययन से आप व्याकरण शास्त्र के महत्त्व को जानते हुए उनके विषयों का भी ज्ञान कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाणिनिरा व्याकरण शास्त्र के अनेक महत्त्व पूर्ण धातुओं को सिद्ध करेंगे।

- इस इकाई में चार धातुओं का वर्णन किया गया है इसके लिए विषय में परिचित होंगे।
- नी (णीञ्) धातु का रूप सिद्धि करेंगे।
- पच् धातु का रूप सिद्धि करेंगे।
- भज् धातु का रूप सिद्धि करेंगे।
- यज् धातु का रूप सिद्धि करेगें।
- उभय पद धातु कौन होते है? इसके विषय में परिचित होंगे।

3.3. नी धातु लट् लकार परस्मैपद

लट्, लृट्, लोट्, लङ् विधिलिङ् इन लकारों में णीञ् प्रापणे, पच् (डुपचष्) पाके, भज्–सेवायाम्, यज् देव पूजा सङतिकरणदानेषु इन धातुओं का सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित रूप सिद्धि

भ्वादिगण उभय पद

अभी तक आपने प्रथम इकाई में परत्मैपद भू धातु पढ़ा। दूसरी इकाई में परस्मैपद श्रु धातु, गम् धातु तथा आत्मने पद एध् धातु पढ़ा अर्थात् दोनों इकाईयों में परस्मैपद तथा आत्मने पद दोनों पढ़ा गया है। अब कुछ धातु ऐसे होते है जो दोनों में सिद्ध होते हैं। स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले इस सूत्र में उभय पदी धातु कौन होते है? इसका सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है।

विशेष ध्यान यह देना है कि जो रूप सिद्ध किये जायेंगे। ये सभी रूप संक्षेप में सिद्ध होंगे। इन रूपों को ज्ञान करने के लिए पहली तथा दूसरी इकाई का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। अब हम क्रमशः इस इकाई में दिये गये रूपों को सिद्ध करते है

णीञ् प्रापणे (ले जाना) अर्थ प्रयुक्त होती है :–

णीञ् में ञकार ही हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर णी मात्र बचता है। इसके बाद णो नः सूत्र से णकार को नेकार होकर ''नी'' धातु बन जाती है। ञकार की इत्संज्ञा होने का फल यह धातु उभय पदी हो जाती है। अर्थात् आत्मने पद तथा परस्मैपद, दोनों में रूप सिद्ध किये जायेंगे।

नी धातु लट् लकार परस्मैपद

नयति –नी धातु से लट् लकार परस्मैपद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर नी + ति बना। कर्तरि शप् से शप् प्रत्यय होकर नी+शप्+ति बना। शकार पकार की इत्संज्ञा होकर नी+अ+ति बना। सार्वधातुक संज्ञा, सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र में नी में ईकार को गुण एकार होकर ने + अ + ति बना। एचोऽपवायावः सूत्र से ''ए'' को

अय् आदेश होकर न् + अय् + अ + ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर नयति रूप सिद्ध होता है।ध्यान यह देना है कि ये सभी रूप भू धातु के अनुसार सिद्ध होंगे। अन्तर इतना होगा कि वहां पर ऊकार को गुण ओकर तथा अव् आदेश होगा। यहां पर ईकार को गुण एकार तथा अय् आदेश होकर रूप सिद्ध होते है। अब प्रत्यय जोड़कर संक्षेप रूप सिद्ध करते है –

नयतः नी+तस्, शप् होकर नी + अ + तस्, गुण अयादेश होकर नयतस् सकार को रूत्व विसर्ग होकर नयतः रूप सिद्ध होता है।

नयन्ति नी+झि, शप् अनुबन्ध लोप, नी + अ + झि, गुण अयादेश नय + झि, झि = अन्ति, अतो गुणे पररूप होकर नयन्ति रूप सिद्ध होता है।

नयसि नी+सिप्, शप्, नी+अ+सि, गुण, अयादेश नयसि रूप सिद्ध होता है।

नयथः नी+थस्, शप्, नी+अ+थस्, गुण, अयादेश, नयथस्, सकार को विसर्ग होकर नयथः रूप सिद्ध होता है।

नयथ नी+थ, शप् होकर नी+ अ+थ, गुण अयादेश नयथ रूप सिद्ध होता है।

नयामि नी+मिप्, शप्, नी+अ+मि, गुण अयादेश, नय+मि, दीर्घ होकर नयामि रूप सिद्ध होता है।

नयावः नी+वस्, शप्, नी+अ+वस्, गुण अयादेश, दीर्घ, नयावस् ''स'' को विसर्ग होकर नयावः रूप सिद्ध होता है।

नयामः नी+मस्, शप्, नी+अ+मस्, गुण अयादेश, दीर्घ, नयामस् ''स'' को विसर्ग होकर नयामः रूप सिद्ध होता है।

नी धातु लट् लकार आत्मने पद :–आत्मने पद में एधते के समान सभी रूप सिद्ध होंगे।

आत्मने पद प्रत्यय को आप देंखे

त = ते	आताम = एते	झ = अन्ते
थास् = से	आथाम = एथे	ध्वम् = ध्वे
इट् = ए	वहि = वहे	महिङ् = महे

नी के स्थान में शप्, गुण अयादेश होकर नय बना। उसके बाद क्रमशः संक्षेप में प्रत्यय को जोड़कर रूप सिद्ध करते है –

नयते– नी = नय, त = ते,नयते, **नयेते**– नी =नय, आताम् =एते, नयेते

नयन्ते–नी = नय, झ = अन्ते, नयन्ते, **नयेथे** नी = नय, आथाम् = एथे, नयेथे

नयध्वे–नी = नय, ध्वम् = ध्वे, नयध्वे, **नये** – नी = नय, इट् = ए, नये

नयावहे नी = नय, वहि = वहे, दीर्घ, नयावहे

नयामहे– नी = नय, महिङ = महे, दीर्घ, नयामह

विशेष– ज्ञान के लिए एध् धातु के रूप को देंखे।

नी धातु लृट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम :–लट् लकार में 'स्य' और 'इट्' सर्वत्र होता है। किन्तु इस धातु में डट् का निषेध हो जाता है। केवल गुण होकर तथा प्रत्यय जोड़कर रूप सद्ध किये जाते है।

नेष्यति –नी, ति, स्य, नी+स्य+ति, नी धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष एक वचनविवक्षा तिप् प्रत्यय,तथा शप्को बांधकर स्य प्रत्यय होकर नी+स्य+ति बना।

सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से गुण होकर ने+स्य+ति बना। मूर्धन्यादेश होकर नेष्यति प्रयोग सिद्ध होता है। अब केवल संक्षेप में प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध किये जा सकते हैं।

प्रत्ययः–प्रथम पुरूष	**तिप् = ति**	**तस् = तः**	**झि = अन्ति**
मध्यम पुरूष	**सिप् = सि**	**थस् = थः**	**थ = थ**
उत्तम पुरूष	**मिप् = मि**	**वस् = वः**	**मस् = मः**

नेष्यतः नी+तस्,स्य,नी+स्य+तस् गुण तथा सकार को विसर्ग होकर नेष्यतः होता है।

नेष्यन्ति नी+झि, स्य, नी+स्य+झि, झि=अन्ति, गुण, पररूप होकर नेष्यन्ति सिद्ध होता है।

नेष्यसि नी+सिप्, स्य, नी+स्य+सि, गुण होकर नेष्यसि प्रयोग सिद्ध होता है।

नेष्यथः नी + थस्, स्य, नी+स्य+थस्, गुण तथा ''स'' को विसर्ग होकर नेष्यथः सिद्ध होता है।

नेष्यथ –नी+थ, स्य, नी+स्य+थ, गुण होकर नेष्यथ सिद्ध होता है।

नेष्यामि –नी+मिप्, स्य, नी+स्य+मि, गुण तथा दीर्घ होकर नेष्यामि सिद्ध होता है।

नेष्यावः–नी + वस, स्य, नी+स्य+वस, गुण, दीर्घ तथा ''स'' को विसर्ग होकर नेष्यावः सिद्ध होता है।

नेष्यामः नी+मस्, स्य, नी+स्य+मस् गुण् दीर्घ, ''स'' को विसर्ग होकर नेष्यामः सिद्ध होता है।

नी धातु लृट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम अब आत्मने पद में नी धातु से लृट् लकार में स्य प्रत्यय तथा गुण होकर नेष्य बना लिया। उसके बाद आत्मने पद प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में रूप सिद्ध किये जाते है। एध् धातु के लृट् लकार के समान रूप सिद्ध करें –

नेष्यते–नी धातु से लृट् लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में ''त'' प्रत्यय जोड़कर नी+त बना। स्यतासीलृलुटोः सूत्र से स्य प्रत्यय होकर नी+स्य+त बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः सूत्र से गुण होकर नेष्य+त बना। टित् आत्मने पदानां टेरे' इस सूत्र से त में अकार को एकार होकर नेष्य+ते बना। वर्ण सम्मेलन होकर नेष्यते प्रयोग सिद्ध होता है।

नेष्येते नी+आताम्, स्य, गुण नेष्य+आताम्, आताम्=एते,पररूप, नेष्येते सिद्ध होता है।

नेष्यन्ते नी+झ, स्य, गुण, नेष्य+झ, झ = अन्ते, पररूप नेष्यन्ते प्रयोग सिद्ध होता है।

नेष्यसे नी+थास्, स्य, गुण, नेष्य+थास्, वना। थास्=से होकर नेष्यसे सिद्ध होता है।

नेष्येथे नी+आथाम्, स्य, गुण,नेष्य+आथाम्, आथाम्=एथे,पररूप नेष्येथे सिद्ध होता है।

नेष्यध्वे नी+स्य+ध्वम्, गुण टिको एत्व होकर नेष्यध्वे सिद्ध होता है।

नेष्ये नी+स्य+इट्, गुण, टिको एत्व होकर नेष्ये सिद्ध होता है।

नेष्यावहे नी+स्य+वहि गुण, टि को एत्व, दीर्घ होकर नेष्यावहे सिद्ध होता है।

नेष्यामहे नी+स्य+महिङ, गुण, टि को एत्व, दीर्घ होकर नेष्यामहे सिद्ध होता है।

नी धातु लोट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम – जिस प्रकार भू धातु से लोट् लकार में भवतु आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं उसी प्रकार यहाँ भी नी धातु से लोट् लकार में नयतु आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं। केवल अन्तर इतना होता है कि भू धातु से शप् गुण् अवादेश होकर भव बना है। यहाँ नी धातु से शप्, गुण, अयादेश होकर नया बना। उसके बाद प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध किये जाते है। अब संक्षेप में रूप सिद्ध कर रहे हैं।

नयतु– नी+शप्+ति, नी+अ+ति, गुण अयादेश होकर नयति बना। ति=तु, नयतु सिद्ध होता है।

नयताम्–नी + अ + तस् बना। गुण अयादेश होकर नय+तस् बना। तस् = ताम् नयताम सिद्ध होता हैं।

नयन्तु – नी+अ+झि, गुण अयादेश, नय + झि बना। झि =अन्तु, पररूप होकर नियन्तु सिद्ध होता हैं।

नय नी+अ+सिप्, गुण, अयादेश, सि को हि, हि को लुक होकर नय सिद्ध होता है।

नयतम् नी+अ+थस्, गुण, अयादेश, नय + थस्, थस् = तम्, नयतम् सिद्ध होता है।

नयत नी+अ+थ, गुण,अयादेश, नय+थ,थ =त्, नयत सिद्ध होता है।

नयानि नी+अ+मिप्,गुण,अयादेश,नय+मि=नि होकर तथा दीर्घ,नयानि सिद्ध होता हैं।

नयाव नी+अ+वस्, गुण, अयादेश,नय+वस् अतो दीर्घो यञि से दीर्घ होकर नयावस् बना। नित्यं ङितः से स् का लोप होकर नयाव सिद्ध होता है।

नयाम नी+अ+मस् बना। गुण अयादेश होकर नय+मस् बना। अतो दीर्घो यञि सूत्र से दीर्घ होकर नयामस् बना। सकार का लोप होकर नयाम सिद्ध होता है।

नोट– ध्यान दे विशेष ज्ञान के लिए भू धातु के लोट् लकार के रूपों को देंखे।

नी धातु लोट् लकार (आत्मने पद)

नी धातु से लोट् लकार में शप्, गुण, अय् आदेश होने के बाद नय बन जाता है। उसके बाद जिस प्रकार एध् धातु से लोट् लकार में प्रत्यय जोड़कर एधताम् आदि प्रयोग सिद्ध होते है। उसी प्रकार यहाँ भी प्रत्यय जोड़कर नियताम् आदि रूप सिद्ध किये जायेंगे।

लोट् लकार में प्रत्यय

त = ताम्	आताम् = एताम्	झ = अन्ताम्
थास् = स्व	आथाम् = एथाम्	ध्वम् = ध्वम्
इट् = ऐ	वहि = आवहै	महिङ् = आमहै

इन प्रत्ययों को समझने के लिए आप एध धातु के लोट् लकार के रूपों को देंखे। अब प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में रूप सिद्ध किये जा रहे है।

नयताम् नी धातु, लोट् लकार आत्मने पद एक वचन विवक्षा में ''त'' प्रत्यय तथा शप् होकर नी + अ + त बना। गुण अयादेश होकर नय + त बना। त में अकार को टित् आत्मने पदानां टेरे सूत्र से ए होकर नयते बना। आमेतः सूत्र से ए = आम् होकर नयताम् रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य संक्षेप में सिद्ध करें।

नयेताम् नी+आताम्, शप्, गुण, अयादेश होकर नय + आताम् बना। आ = इय् गुण, यकार का लोप टि को ए = ते, नयेते बना। ए को आम् होकर नयेताम् रूप सिद्ध होता है।नयन्ताम् नी + झ, शप्, गुण, अयादेश, नय + झ, झ = अन्त, अन्ते = अन्ते, अन्ते = अन्ताम् होकर नयन्ताम् प्रयोग सिद्ध होता है।

नयस्व नी + थास्, शप्, गुण, अयादेश होकर नय = थास् बना। थास = से, से = स्व होकर नयवस्व रूप सिद्ध होता है।

नयेथाम् नि + आथाम्, शप्, गुण, अयादेश होकर नय + आथाम् बना। आथाम = एथे, एथे = एथाम्, पर रूप होकर नयेथाम् रूप सिद्ध होता है।

नयध्वम् नी+ध्वम्, शप्, गुण, अयादेश होकर नय : ध्वम् बना। ध्वम्=ध्वे, ध्वे = ध्वम् होकर नयध्वम् रूप सिद्ध होता है।

नयै नी+इट्,शप गुण अयादेश होकर नय्+इट् बना। इ=ए, ए=ऐ होकर नयै रूप सिद्ध होता है।

नयावहै नी+वहि, शप्, गुण अयादेश होकर नय+वहि, टि को ए आट् ,नय+आ+वहे, ए=ऐ होकर नयावहै रूप सिद्ध होता है।

नयामहै नी+महिङ्, शप्, गुण, अयादेश, नय+महि, आट्, एत्व, ऐत्व होकर नयामहे रूप सिद्ध होता है।

विशेष – ध्यान के लिए एध् धातु के लोट् लकार के रूपों को देंखे।

नी धातु लङ् लकार परस्मैपद

समान्य नियम –

जिस प्रकार भू धातु से लङ् लकार में अभवत् रूप सिद्ध हुआ है। उसी प्रकार यहाँ भी लङ् लकार में नी धातु से अनयत् प्रयोग सिद्ध होगा। अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ भू धातु से गुण, अवादेश होता है। यहाँ पर नी को गुण होकर ने बना।तथा अयादेश होकर नय बनता है। जिसका रूप संक्षेप में सिद्ध हो रहा है –

अनयत् नी धातु से लङ् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय तथा पकार की इत्संज्ञा होकर नी+ति बना। कर्तरि शप् से शप् प्रत्यय होकर नी +अ + ति बना। लुङ्लङ्लृङक्ष्वडुदात्तः सूत्र से अट् का आगम होकर अनी+अ+ति बना। गुण, अयादेश होकर अनय+ति बना। ति में इकार का लोपहोकर अनयत् रूप सिद्ध होता है।

अनयताम् नी+तस्, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + तस् बना। तस् के स्थान में ताम् होकर अनयताम् रूप सिद्ध होता है।

अनयन् नी + झि, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + झि बना। झि = अन्ति, इकार तकार का लोप होकर अनयन् रूप सिद्ध होता है।

अनयः नी + सिप्, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + सि बना। इकार का लोप तथा सरकार को विसर्ग होकर अनयः रूप सिद्ध होता है।

अनयतम् नी + थस्, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + थस् बना। थस् = तम् होकर अनयतम् रूप सिद्ध होता है।

अनयत नी + थ, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + थ बना। थ = त होकर अनयत रूप सिद्ध होता है।

अनयम् नी + मिप्, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + मिप् बना। मिप् = अम् होकर अनयम् रूप सिद्ध होता है।

अनयाव नी + वस्, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय + वस बना। दीर्ध, तथा सरकार का लोप होकर अनयाव रूप सिद्ध होता है।

अनयाम् नी + मस्, अ्, शप्, गुण, अयादेश होकर, अनय + मस् बना। दीर्घ तथा सकार का लोप होकर अनयाम् रूप सिद्ध होता है। विशेष ज्ञान के लिए भू धातु के लङ्लकार के रूपों को देंखे।

नी धातु लङ् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम–

जिस प्रकार एध् धातु से लङ्लकार आत्मने पद में ऐधत रूप बना है। उसी प्रकार यहाँ भी नी से नय बनाकर तथा आत्मने पद प्रत्यय जोड़कर अनयत् आदि रूप बनते है। अन्तर इतना होता है कि वहाँ पर अजादि होने से आट् का आगम होता है यहाँ पर आट् का आगम नहीं होता हैं क्योंकि यहाँ पर हलादि धातु है और सब प्रक्रिया उसी के समान होती है।

अनयत – नी धातु से लङ्लकार, आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तप्रत्यय होकर नी + त बना। अट् का आगम्, शप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर अ नी +अ+ त बना। गुण, अयादेश होकर अनयत रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य रूप, प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में सिद्ध करें।

अनयेताम् नी + आताम्, अट्, शप्, गुण, अयादेश, आ को इय्, पकार का लोप होकर अनयेताम् रूप सिद्ध होता है।

अनयन्त नी + झ, अट्, शप्, गुण, अयादेश, झ = अन्त होकर अनयन्त रूप सिद्ध होता है।

अनयथाः नी + थास्, अट्, शप्, गुण, अयादेश, अनयथास् । स को विसर्ग होकर **अनयथाः** रूप सिद्ध होता है।

अनयेथाम् नी + आथाम्, अट्, शप्, गुण, अयादेश, आ को इय् ''य'' का लोप अनयेथाम् रूप सिद्ध होता है।

अनयध्वम् नी + ध्वम्, अट्, शप्, गुण, अयादेश, अनयध्वम् रूप सिद्ध होता है।

अनये नी + इट्, अट्, शप्, अयादेश होकर अनय + इ बन। गुण होकर अनये रूप सिद्ध होता है।

अनयावहि नी+वहि, अट्, शप्, गुण, अयादेश होकर अनय+वहि बना। अतो दीर्घो यञि से दीर्घ होकर अनयावहि रूप सिद्ध होता है।

अनयामहि नी + महिङ्, अट्, शप, गुण, अयादेश होकर अनय +महि बना। अतो दीर्घो यञि से दीर्घ होकर अनयामहि रूप सिद्ध होता है।

नोट–ध्यान देना यहाँ केवल नी से अनय बनाकर और प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध किये गये हैं।

नी धातु विधिलिङ् परस्मैपद

नियम –विधिलिङ् में जिस प्रकार भू धातु से भवेत् बना है।उसी प्रकार यहाँ भी नी धातु से विधि लिङ् में नयेत् बनेगा। केवल अन्तर इतना होग

कि वहाँ भू धातु उकार होने से गुण ओ होकर भो तथा अव् आदेश होकर भव् बनता है यहाँ धातु इकारान्त होने से इ का गुण एकार होकर ''ने'' तथा अय् आदेश होकर नय्

बनता है, शप् आने से। और शेष प्रक्रिया उसी के समान होकर रूप सिद्ध होता है। संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

नयेत ् –नी धातु से विधिलिङ् प्रथम पुरूष परस्मैपद एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय तथा शप् प्रत्यय एवं अनुबन्धलोप होकर नी + अ + ति बना। गुण होकर ने + अ+ ति बना। अय् आदेश होकर नय + ति बना। ''यासुट् परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च'' इस सूत्र से यासुट का आगम होकर नय + यासुट् + ति बना। अनुबन्ध लोप होकर नय + यास् + अतो येयः सूत्र से यास् को इय् होकर नय + इय् + त् बना। आद् गुणःसे गुण तथा पकार का लोप होकर नयेत् रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार केवल प्रत्यय जोड़कर सभी रूप संक्षेप में सिद्ध किये जायेंगे।

नयेताम् नी + तस्, शप्, गुण, अयादेश, नय् + तस् बना। यासुट्, इय्, गुण, यकार का लोप, तस् = ताय्, नयेताम् रूप सिद्ध होता है।

नयेयुः नी + झि, शप्, गुण अयादेश नय + झि बना। यासुट्, इय्, गुण, झि = उस् नयेयुस् बना। ''स'' को विसर्ग होकर नयेयुः प्रयोग सिद्ध होता है।

नयेः नी + सिप्, शप्, गुण, अयादेश नय + सि बना। यासुट्, इय् गुण यकार का लोप इकार का लोप ''स'' को विसर्ग होकर नयेः प्रयोग सिद्ध होता है।

नयेतम् नी + थस्, शप्, गुण, अयादेश, नय + थस्, यासुट्, इय् यकार का लोप, थस् के स्था में तम् होकर नयेतम् प्रयोग सिद्ध होता हैं।

नयेत नी + थ, शप्, गुण, अयादेश नय + थ बना। यासुट्, इय्, गुण ''य'' का लोप य के स्थान में त होकर नयेत रूप सिद्ध होता है।

नयेयम् नी + मिप्, शप्, गुण, अयादेश होकर नय + मि बना। यासुट्, इय्, गुण, मि=अम् होकर नयेयम् रूप सिद्ध होता हैं।

नयेव नी + वस्, शप्, गुण अयादेश नय + वस् बना। यासूट्, इय्, गुण, यकार का लोप होकर तथा सकार का लोप होकर नयेव रूप सिद्ध होता है।

नयेय नी + मस्, शप्, गुण, अयादेश नय + मस् बना। यासुट्, इय्, गुण, यकार का लोप तथा स्, का लोप होकर नयेय रूप सिद्ध होता है।

विशेष ज्ञान के लिए इसके नियम को पढ़े।

सामान्य नियम–

नी धातु विधिलिङ् आत्मने पद यह लकार सार्वधातुक है। सार्वधातुक होने से शप्, गुण अय् आदेश होकर नय बनेगा ही। उसके बाद आत्मने पद प्रत्यय जोड़कर जिस प्रकार एध् धातु से लिङ्लकार में रूप बना है। उसी प्रकार यहां भी रूप बनेगा। **विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु को देंखे।** अब संक्षेप में रूप में सिद्ध होता है।

नयेत नी + धातु से लिङ्लकार आत्मने पद एक वचन में त प्रत्यय तथा शप् होकर नी + अ + त बना। इसके बाद गुण अयादेश होकर नय + त बना। सीयुट् का आगम, को ईय, गुण तथा यकार का लोप होकर नयेत रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार प्रत्यय जोड़कर सभी रूप बनेंगे।

नयेयाताम् नी + आताम् शप् गुण, अयादेश, सीयुट्, अनुबन्ध लोप सकार का लोप होकरनयेय् + आताम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर नयेयाताम् प्रयोग सिद्ध होता हैं।

नयेरन् नी + झ्, शप्, गुण, अयादेश नय + झ, सीयुट्, अनुबन्ध लोप, ''स'' का लोप गुण, झ = रन्, यकार का लोप होकर नयेरन् रूप सिद्ध होता हैं।

नयेथाः नी + थास्, शप् गुण, अयादेश, नय+थास् बना।सीयुट् अनुबन्ध, स् का लोप, गुण, यकार का लोप,सरकार को विसर्ग होकर नयेथाः रूप सिद्ध होता है।

नयेयाथाम् नी + आथाम्, शप्, गुण, अय्, नय + आथाम् बना। सीयुट् =सीय्, स लोप,ईय्, गुण, नयेयाथाम् रूप सिद्ध होता है।

नयेध्वम् नी + ध्वम्, शप्, गुण, अयादेश, नय + ध्वम् बना। सीयुट् = सीय, सकार का लोप गुण होकर नयेध्वम् रूप सिद्ध होता है।

नयेय नी + इट्, शप्, गुण, अयादेश नय + इट् बना। इट् = अ, सीयुट् = सीय् ''स'' का लोप, गुण होकर नयेय रूप सिद्ध होता हैं।

नयेवहि नी + वहि, शप्, गुण, अयादेश, नय + वहि बना। सीयुट् =सीय्, ''स'' का लोप यकार का लोप, गुण होकर नयेवहि रूप सिद्ध होता है।

नयेमहि नी + महिङ्, शप्, गुण, अयादेश नय + महि बना। सीयुट् = सीप्, ''स''् का लोप यकार का लोप, तथा गुण होकर नयेमहि रूप सिद्ध होता है।

उभय पदी पच् धातु

अब हम पच् (पकाना) धातु का रूप सिद्ध करेंगे। यह धातु भी उभय पदी है। अर्थात् इसका रूप परस्पैपद तथा आत्मने पद, दोनों पक्षों में रूप सिद्ध होते हैं। सबसे पहले हम पच् धातु से परस्मैपद का रूप सिद्ध है :–

सामान्य नियम :– जिस प्रकार भू धातु से लट् लकार में भवति रूप सिद्ध होता है, उसी प्रकार यहाँ भी पच् धातु से शप् प्रत्यय होकर तथा प्रत्यय जोड़कर पचति रूप सिद्ध होता है। अन्तर केवल इतना होता है कि भू धातु से में गुण अब् आदेश होता हैं यहाँ पर इगन्त अंग न होने से गुण नहीं होता है। अब संक्षेप में रूप सिद्ध होता है।

पचति पच् धातु से लट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर तथा शप् अनुबन्ध लोप होकर पच् + अ + ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर पचति रूप सिद्ध होता हैं।

पचतः पच् + तस्, शप्, पच् + अ + तस् बना। वर्ण सम्मेलन ''स्'' को विसर्ग होकर पचतः रूप सिद्ध होता है।

पचन्ति पच् + झि, शप्, झि = अन्ति, पररूप होकर पचन्ति रूप सिद्ध होता है।पचसि पच् + सिप्, शप्, पचसि रूप सिद्ध होता है।

पचथः पच् + थस्, शप्, सकार को विसर्ग होकर पचथः रूप सिद्ध होता हैं।

पचथ पच् + थ, शप्, पचथ रूप सिद्ध होता हैं।

पचामि पच् + मिप्, शप्, दीर्घ होकर पचामि रूप सिद्ध होता है।

पचावः पच् + वस्, शप्, दीर्घ, सकार के विसर्ग होकर पचावः रूप सिद्ध होता हैं।

पचामः पच् + मस्, शप्, दीर्घ सकार को विसर्ग होकर पचामः रूप सिद्ध होता हैं।

पच् धातु लट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार एध् धातु से लट् लकार में रूप सिद्ध हुआ है। उसी प्रकार यहाँ भी पच् धातु से लट् लकार आत्मने पद में रूप सिद्ध होता है। अब हम संक्षेप में रूप सिद्ध करते है :–

पचते पच् + त्, शप्, टिको एत्व होकर पचते रूप सिद्ध होता हैं।

पचेते पच् + आताम्, शप्, आ को इय्, गुण ''य'' का लोप, एत्व होकर पचेते रूप सिद्ध होता है।

पचन्ते पच् + झ, शप्, झ = अन्त, टि को एत्व, पररूप होकर पचन्ते रूप सिद्ध होता है।

पचसे पच् + थास्, शप्, थास = से होकर पचसे रूप सिद्ध होता है।

पचेथे पच् + आथाम्, शप्, आ को इय्, गुण, यकार का लोप, एत्व होकर पचेथे रूप सिद्ध होता हैं।

पचध्वे पच् + ध्वम् शप्, टि को एत्व होकर पचध्वे रूप सिद्ध होता है।

पचे पच् + इट्, शप् टि को एत्व पररूप होकर पचे रूप सिद्ध होता है।

पचावहे पच् + वहि, शप्, दीर्घ, टि को एत्व होकर पचावहे रूप सिद्ध होता है।

पचामहे पच् + महिङ्, शप्, दीर्घ, एत्व होकर पचामहे रूप सिद्ध होता है।

पच् धातु लृट लकार परस्मैपद

सामान्य नियम–जिस प्रकार भू धातु से भविष्यति बना है। उसी प्रकार यहाँ भी रूप बनेगा। अन्तर केवल इतना होगा कि पच् धातु से तिप् और स्य प्रत्यय करने के बाद पच् + स्य + ति बना। इसके बाद चोः कुः सूत्र से ''च्'' के स्थान में ''क'' होकर पक् + स्य + ति बना। कवर्ग से परे स्य के सकार को आदेश प्रत्ययोंः सूत्र से मूर्धन्यषकार होकर पक् + ष्य + ति बना। क् + ष् = क्ष् होकर प + क्ष + यति बना। वर्ण

सम्मेलन होकर पक्ष्यति रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार प्रत्यय जोड़कर रूप संक्षेप में सिद्ध करें –

पक्ष्यति पच् + तिप्, स्य, च् = क्, स=ष्, क + ष् = क्ष, पक्ष्यति रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यतः पच् + तस्, स्य, च् = क्, स् = ष्, क् +ष् =क्ष्, पक्ष्यतः रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यन्ति पच् + झि, स्य, पक्ष्य + अन्ति, अतोगुणे से पररूप होकर पक्ष्यन्ति रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यसि पच् + सिप्, स्य, पक्ष्य + सि, पक्ष्यसि रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यथः पच् +थस्, स्य, पक्ष्य=थस्, स को विसर्ग होकर पक्ष्यथः रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यथ पच् + थ, स्य, पक्ष्य + थे, पक्ष्यथ रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यामि पच् + मिप्, स्य, पक्ष्य + मि दीर्घ होकर पक्ष्यामि रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यावः पच्, + वस्, स्य, पक्ष्य + वस् दीर्घ, स् को विसर्ग होकर पक्ष्यावः रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यामः पच् + मस्, स्य, पक्ष्य + मस्, दीर्घ तथा स को विसर्ग होकर पक्ष्यामः रूप सिद्ध होता हैं।

पच् धातु लृट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार एध् धातु से लृट् लकार में एधिष्यते रूप बना है उसी प्रकार यहाँ भी लृट् लकार आत्मने पद में पच् से पक्ष्य बनाकर प्रत्यय जोड़कर पक्ष्यते आदि रूप सिद्ध होते है। संक्षेप में रूप सिद्ध हो रहे है :–

पक्ष्यते पच् + त, स्य, पक्ष्य + त, एत्व होकर पक्ष्यते रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्येते पच् + आताम्, स्य, पक्ष्य + आताम्, आ=इय, गुण, ''य'' का लोप, एत्व, पक्ष्येते रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यन्ते पच् +स, स्य, पक्ष्य +अन्त, पररूप एत्व होकर पक्ष्यन्ते रूप सिद्ध हो रहा हैं।

पक्ष्यसे पच्+थास्, स्य, पक्ष्य + थास्, थास् = से होकर पक्ष्यसे रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्येथे पच्+आथाम्, स्य, आ=इय्, गुण, यकार का लोप, एत्व होकर पक्ष्येवे रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यध्वे पच् +ध्वम्, स्य, पक्ष्य + ध्वम्, एत्व होकर पक्ष्यध्वे रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्ये पच् + इट्, स्य, एत्व, पक्ष्ये रूप सिद्ध होता है।

पक्ष्यावहे पच् + वहि, स्य, पक्ष्य+वहि, दीर्घ, एत्व होकर पक्ष्यावहे रूप सिद्ध होता हैं।

पक्ष्यामहे पच्, महिङ्, स्य, पक्ष्य+महि, दीर्घ, एत्व होकर पक्ष्यामहे रूप सिद्ध होता है।

विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु के लृट् लकार के रूपों को देंखे।

पच् धातु लोट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से लोट् लकार में भवतु आदि प्रयोग बने हैं। उसी प्रकार यहाँ भी पच् धातु लोट् लकार में रूप सिद्ध होंगे। केवल अन्तर इतना ही होगा कि वहाँ पर इगन्त होने से गुण अवादेश हुआ है। यहाँ पर इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।

पचतु पच् + ति, शप्, पचति, इकार को उकार होकर पचतु प्रयोग सिद्ध होता है।

पचताम् पच् + तस्, शप्, तस = ताय्, होकर पचताम् रूप सिद्ध होता है।

पचन्तु पच् + झि, शप्,झि =अन्ति,पररूप, इकार से उकार होकर पचन्तु प्रयोग सिद्ध होता है।पच पच् + सिप्, शप्, सि= हि, हि का लोप होकर पच प्रयोग सिद्ध होता है।

पच पच् + सि शप्, सि =हि, का लोप होकर पच प्रयोग सिद्ध होता है।

पचतम् पच् + थस्, शप्, थस् =तम् होकर पचतम् प्रयोग सिद्ध होता है।

पचानि पच् + मिप्, शप्, आट्, मि=निदीर्घ होकर पचानि प्रयोग सिद्ध होता है।

पचाव पच्+वस्, शप्, आट्, दीर्घ,सकार का लोप होकर पचाव प्रयोग सिद्ध होता है।

पचाम पच् + मस्, शप्, आट्, दीर्घ सकार का लोप होकर पचाम प्रयोग सिद्ध होता है।पच् धातु लोट्लकार आत्मने पद

सामान्य नियम –

जिस प्रकार एध् धातु से लोट् लकार में एधताम् आदि प्रयोग बनते है। उसी प्रकार यहां पच् धातु से लोट् लकार में रूप सिद्ध होंगे। संक्षेप में रूप सिद्ध करते है। अब आप विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु के लोट् लकार के रूपों को देंखे।

पचताम् पच् + त, शप्, त=ते, ते = ताम् होकर पचताम् रूप सिद्ध होता है।

पचेताम् पच् + आताम्, शप्, आ=इय्, गुण, 'य्' का लोप ताम =ते, ते =ताम् होकर पचेताम रूप सिद्ध होता है।

पचन्ताम्पच् + झ,शप्, झ=अन्त, अन्ते=अन्ताम् पररूप होकर पचन्ताम् रूप सिद्ध होता है।

पचस्व पच् + थाम्, शप्, थास् = से, से= स्व होकर पचस्व रूप सिद्ध होता है।

पचेथाम् पच् + आथाम्, शप्, आथाम् = एथे, एथे = एथाम् होकर पचेथाम् रूप सिद्ध होता है।

पचध्वम् पच् + ध्वम्, शप, ध्वम = ध्वे, ध्वे=धवम् होकर पचध्वम् रूप सिद्ध होता है।

पचै पच् + इट्, शप्, इट् = ए, ए=ऐ, वृद्धि होकर पचै रूप सिद्ध होता है।

पचावहै पच् + वहि, शप्, आट्, दीर्घ ''ए'' ए = ऐ होक एधावहै = पचावहै रूप सिद्ध होता है।

पचामहै पच् +महिङ्, शप्, आट्, दीर्घ, एत्व, ए = ऐ होकर पचामहै रूप सिद्ध होताहै।

विशेष ज्ञान के लिए नियम को अध्ययन करें।

पच् धातु लङ्लकार परस्मैपद

सामान्य नियम – जिस प्रकार भू धातु से लङ्लकार में अभवत् आदि रूप बने है,उसी प्रकार यहाँ भी पच् धातु से लङ्लकार में अपचत् आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश होता है। यहाँ पच् धातु इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

अपचत्–पच् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय, तथा शप् अनुबन्ध लोप होकर पच् + अ + ति बना। लुङ्लङ्लृक्ष्वडुदात्तः इस सूत्रसे अट् का आगम तथा टकार की इत्संज्ञा होकर अपचति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अपचत् रूप सिद्ध होता है।इसी प्रकार प्रत्यय जोड़कर अन्य रूपों को सिद्ध करें।

अपचताम् पच् + तस्, शप्, अट्, तस् के स्थान में ताम होकर अपचताम् रूप सिद्ध होता है।

अपचन् पच् + झि, शप्, अट्, झि = अन्ति, इकार का लोप, टकार का लोप होकर अपचन् रूप सिद्ध होता है।

अपचःपच् + सिप्, शप्, अट्, इकार का लोप, स् को विसर्ग होकर अपचः रूप सिद्ध होता है।

अपचतम् पच् + थस्, शप्, अट्, थस= तम् होकर अपचतम् रूप सिद्ध होता है।

अपचत पच् + थ, शप्, अट्, थ =त होकर अपचत रूप सिद्ध होता है।

अपचम् पच् + मिप्, शप्, अट्, मि =अम् होकर अपचम् रूप सिद्ध होता है।

अपचाव पच्+वस्, शप्,अट्,दीर्घ, सकार का लोप होकर अपचाव रूप सिद्ध होता है।

अपचाम पच्मस्, शप्, अट्, दीर्घ सकार का लोप हाकर अपचाम् रूप सिद्ध होता है।

विशेष ज्ञान के लिए नियम को पढ़ते हुए भू धातु के लङ्लकार के रूपों का अध्ययन करें।

पच् धातु लङ्लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार एध् धातु लङ्लकार में ऐधत आदि रूप बने है।उसी प्रकार यहाँ भी पच् धातु लङ्लकार आत्मने पद में अपचत् आदि रूप बनेंगे।एध् धातु अजादि होने से आट् का आगम तथा वृद्धि होकर ऐधत आदि रूप बने है। किन्तु यहाँ पर पच् धातु अजादि न होने से आट् का आगम न होकर अट् का आगम होता है।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

अपचत्– पच् धातु लङ्लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय

होकर पच् + त बना। शप्,अट् का आगम होकर अपचत् रूप सिद्ध होता है।
अपचेताम् पच् + आताम्, शप्, आ= इय्, गुण, यकार का लोप होकर अपचेताम् रूप सिद्ध होता है।
अपचन्त पच् + झ, शप्, अट्, झ =अन्त, पररूप होकर अपचन्त रूप सिद्ध होता है।
अपचथाः पच्+थास्, शप्, अट्, सकार को विसर्ग होकर अपचथाः रूप सिद्ध होता है।
अपचेथाम् पच् + आथाम्, शप्, अट्, आ=इय्, गुण, यकार का लोप होकर अपचेथाम् रूप सिद्ध होता है।
अपचध्वम् पच् + ध्वम्, शप्, अट् होकर अपचध्वम् रूप सिद्ध होता है।
अपचे पच् + इट्, शप्, अट्, गुण अपचे रूप सिद्ध होता है।
अपचावहि पच् + वहि, शप्, अट्, दीर्घ होकर अपचावहि रूप सिद्ध होता है।
अपचामहि पच् + महिङ्, शप्, अट्, दीर्घ होकर अपचामहि रूप सिद्ध होता है।
विशेष ज्ञान के लिए नियम को पढ़ते हुए एध् धातु के लङ्लकार के रूपों का अध्ययन करें।

पच् धातु विधिलिङ् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम – जिस प्रकार भू धातु से विधिलिङ् में भवेत् आदि रूप बना है उसी प्रकार यहाँ भी लोट् लकार परस्मैपद मे ंपचेत् आदि रूप बनेंगे। भू धातु इगन्त होने से वहाँ पर गुण अवादेश हुआ है। यहाँ इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।
पचेत् पच्+तिप्,शप्,यासुट्, यास् =इय्, गुण, इकार का लोप यकार का लोप होकर पचेत रूप सिद्ध होता है।
पचेताम् पच्+तस्, शप्, यास्, इय्, गुण, यकार का लोप, तस् के स्थान में ताम् होकर पचेताम् रूप सिद्ध होता है।
पचेयुः पच् + झि, शप्, यास्, इय्, गुण, झि=उस्, ''स'' को विसर्ग होकर पचेयुः रूप सिद्ध होता है।
पचेः पच्, सिप्, शप्, यास्, इय्, गुण, इकार का लोप, स् को विसर्ग होकर पचेःरूप सिद्ध होता है।
पचेतम् पच + थस्, शप्, यास्, इय्, गुण, यकार का लोप, थस्=तम् होकर पचेतम् रूप सिद्ध होता है।
पचेत पच्+थ्,शप्,यास्,इय्,गुण,यकार का लोप,थ=त होकर पचेत रूप सिद्ध होता है।
पचेयम्– पच्+मिप्,शप्,यास्, इय्, गुण, सकार का लोप होकर पचेव रूप सिद्ध होता है।
पचेव पच्+वस्,शप्,यास्, इय्, गुण, सकार का लोप होकर पचेव रूप सिद्ध होता है।
पचेम पच्+मस्, शप्, यास्,इय्,गुण, यकार का लोप होकर पचेम रूप सिद्ध होता है।

पच् धातु विधिलिङ्लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार एध् धातु से विधिलिङ्लकार में ऐधत् आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहाँ भी विधिलिङ् लकार आत्मने पद में पचत आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ पर अजादि होने से आट् का आगम हुआ है यहाँ पर आट् का आगम नहीं होगा।
संक्षेप में रूप सिद्ध करें।
पचेत पच् + त्, शप्, सीयुट्=इय्, टित्, लकार न होने से एत्व नहीं होगा, पचेत रूप सिद्ध होता है।
पचेयाताम् पच् + आताम्, सीयुट्=ईय्, गुण, होकर पचेयाताम् रूप सिद्ध होता है।
पचेरन् पच् + झ, शप्, सीयुट्, ईय्, झ=रन होकर परेचन रूप सिद्ध होता है।
पचेथाः –पच्, थास्, शप्, सीयुट् =ईय्, विसर्ग होकर पचेथाः रूप सिद्ध होता है।
पचेयाथाम्– पच् +आथाम्,शप्,सीयुट=ईय, गुण होकर पचेयाथाम् रूप सिद्ध होता है।
पचेध्वम् –पच् + ध्वम्, शप्, सीयुट्= ईय्, गुण होकर पचेध्वम् रूप सिद्ध होता है।
पचेय–पच् + इट्, शप्, सीयुट् = ईय्, इट् = अ, पचेय रूप सिद्ध होता है।
पचेवहि पच् + वहि, शप्, सीयुट् = ईय्, गुण पचेवहि रूप सिद्ध होता है।

पचेमहि पच् + महिङ्, शप्, सीयुट् = ईय् गुण पचेमहि रूप सिद्ध होता है।
इस प्रकार पच् धातु का रूप पाँचों लकारों में सिद्ध किया गया। विशेष ज्ञान के लिए इनके नियमों को अध्ययन करें।

3.4 भज्, यज् धातुओं का लट्, लृट्, लोट्, लङ् विधिलङ् इन पांच लकारों में सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या सहित रूप सिद्धि।

भज्–सेवायाम् अर्थ :– भज (भज्) सेवा करने अर्थ में प्रयोग होता है।यह धातु स्वरितेत् अर्थात्, भज में अकार की इत्संज्ञा होने से स्वरितेत है। स्वरितेत् होने से उभय पदी है अर्थात् परस्मैपद तथा आत्मने पद, दोनों में रूप चलता है।

सामान्य नियम – जिस प्रकार लट् लकार में भू धातु से भवति आदि रूप सिद्ध होता है उसी प्रकार यहाँ भज धातु से लट् लकार में भजति आदि रूप सिद्ध होंगे। अन्तर इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण, अव् आदेश होता है। यहाँ इगन्त न होने से गुण, अव् आदेश नहीं होगा।

भजति भज् + तिप्, शप्, अनुबन्ध लोप होने से भजति रूप सिद्ध होता है।
भजतः भज् + तस्, शप्, सकार को विसर्ग होकर भजतः रूप सिद्ध होता है।
भजन्ति भज् + झि, शप्, झि = अन्ति, पररूप होकर भजन्ति रूप सिद्ध होता है।
भजसि भज्+सिप्, शप्, भजसि रूप सिद्ध होता है।
भजथः भज्+थस् शप्, सकार को विसर्ग होकर भजथः रूप सिद्ध होता है।
भजथ भज्+थ, शप्, अनुबन्ध लोप होने से भजथ रूप सिद्ध होता है।
भजामि भज्+मिप्, शप्, दीर्घ होकर भजाति रूप सिद्ध होता है।
भजावः भज्+वस्+शप्, दीर्घ, सकार को विसर्ग होकर भजावः रूप सिद्ध होता है।
भजामः भज् + मस्, शप्, दीर्घ, सकार को विसर्ग होकर भजामः रूप सिद्ध होता है।

भज् धातु लट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम–जिस प्रकार एध् धातु से लट् लकार आत्मने पद में एधते आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहाँ भी भज् धातु से लट् लकार आत्मने पद में भजते आदि रूप सिद्ध होंगे।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

भजते. भज् धातु से लट् लकार आत्मने पद एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय होकर भज् + त बना। कर्तरिशप् सूत्र से शप् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर भज्+अ+त बना। टित् आत्मने पदानां टेरे सूत्र से टि को एत्व होकर भजते रूप सिद्ध होता है।
इसी प्रकार अन्य रूप प्रत्यय जोड़कर सिद्ध किये जायेंगे।

भजेते . भज्+आताम्, शप्, आताम् = एते, पररूप होकर भजेते रूप सिद्ध होता है।
भजन्ते . भज्+झ, शप्, झ =अन्त, अन्त = अन्ते होकर भजन्ते रूप सिद्ध होता है।
भजसे भज्+ थास्, शप्, थास= 'से' होकर भजसे रूप सिद्ध होता है।
भजेथे भज्+ आथाम्, शप्, आथाम् =एथे होकर भजेथे रूप सिद्ध होता है।
भजध्वे भज+ध्वम्, शप्, ध्वम्= ध्वे होकर भजध्वे रूप सिद्ध होता है।
भजे भज्+इट्, शप्, इट= ए, पररूप होकर भजे रूप सिद्ध होता है।
भजावहे भज्+वहि, शप्, वहि = वहे तथा दीर्घ होकर भजावहे रूप सिद्ध होता है।
भजामहे भज्+महिङ्, शप्, दीर्घ तथा एत्व होकर भजामहे रूप सिद्ध होता है। सूत्र सहित ज्ञान के लिए एध् धालु लट् लकार के रूपों को देंखे।

भज् धातु लृट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम :– जिस प्रकार भू धातु से लृट् लकार में भविष्यति आदि बने है।उसी प्रकार यहाँ भी लृट् लकार परस्मैपद में भजिष्यति आदि रूप बनेंगे। भू धातु इगन्त होने

से वहाँ पर गुण अव् आदेश होता है। यहाँ पर भज् धातु इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें

भक्ष्यति भज् धातु से लृट् लकार परस्मैपद प्रथम पुरूष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर, भज्+तिप् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त था उसको बांधकर स्यतासींलृलुटो सूत्र से स्य होकर भज्+स्य+ति बना। चोः कुः से ज् = ग् खरि च सूत्र से चर्त्व ग=क् भक्ष्यति रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यतः भज्+तस्,स्य,भक्ष्य+तस्, सकार को विसर्ग होकर भक्ष्यतः रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यन्ति भज्+झि, स्य, भक्ष्य, झि = अन्ति, पररूप होकर भक्ष्यन्ति रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यसि भज् + सिप्, स्य, भक्ष्य, होकर भक्ष्यसि रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यथः भज् + थस्, स्य, भक्ष्य, सकार की विसर्ग होकर भक्ष्यथः रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यथ भज् + थ, स्य, भक्ष्य, होकर भक्ष्यथ रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यामि भज् + मिप्, स्य, भक्ष्य, दीर्घ होकर भक्ष्यामि रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यावः भज् + वस्, स्य, भक्ष्य, स्=ष्, दीर्घ होकर भक्षयावः रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यामः भज् + मस्, स्य, भक्ष्य, दीर्घ होकर भक्ष्यामः रूप सिद्ध होता है।

भज् धातु लृट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम–जिस प्रकार एध् धातु से लृट् लकार में एधिष्यतेआदि प्रयोग बना है। उसी प्रकार यहां भी भज् धातु से भक्ष्यते आदि रूप बनेंगे। संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

भक्ष्यते भज् धातु लृट् लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एकवचन विवक्षा में त प्रत्यय होकर भज + त बना। स्यतासीलृलुटोः सूत्र से स्य प्रत्यय होकर भज् + स्य + त बना। भक्ष्य् + त् बना। टिको एत्व होकर भक्ष्यते रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्येते भज् + आताम्, स्य, भक्ष्य, आ = इय्, गुण, यकार का लोप टिको एत्व होकर भक्ष्येते रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यन्ते भज् + झ स्य, भक्ष्य, झ=अन्ते होकर भक्ष्यन्ते रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यसे भज् + थास्, स्य, भक्ष्य, थास्= से, होकर भक्ष्यसे रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्येथे भज् + आथाम्, स्य, भक्ष्य, आथाम् = एथे होकर भक्ष्येथे रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यध्वे भज् + ध्वम्, स्य, भक्ष्य, ध्वम्=ध्वे होकर भक्ष्यध्वे रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्ये भज् + इट्, स्य, भक्ष्य, इ=ए होकर भक्ष्ये रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यावहे भज् + वहि, स्य, भक्ष्य, वहि= वहे होकर तथा दीर्घ होकर भक्ष्यावहे रूप सिद्ध होता है।

भक्ष्यामहे भज् + महिङ्, स्य, भक्ष्य, महि= महे, दीर्घ होकर भक्ष्यामहे रूप सिद्ध होता है।विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु के लृट् लकार के रूपों को देंखे।

भज् धातु लोट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम – जिस प्रकार भू धातु से भवतु आदि रूप बने हैं उसी प्रकार यहाँ भज् धातु से लोट् लकार में भजतु आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ पर भू धातु को इगन्त होने से गुण अवादेश होता है। यहाँ पर भज् धातु इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

भजतु .भज् धातु से लोट् लकार प्रथमें पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप प्रत्यय होकर भज +ति बना। कर्टरि–शप् सूत्र से प्रत्यय होकर भज् + अ +ति बना। एरुः सूत्र

से इनकार को उकार होकर भजतु रूप सिद्ध होता है।

भजताम् भज् + तस्, शप्, अनुबन्ध लोप, तस=ताम होकर भजताम् रूप सिद्ध होता है।

भजन्तु भज् + झि, शप्, अनुबन्ध लोप, झि + अन्ति, इ=उ होकर भजन्तु रूप सिद्ध होता है।

भज भज् + सिप्, शप्, सि=हि, हि=लुक होकर भज रूप सिद्ध होता है।

भजतम् भज् + थस्, शप्, स् के स्थान में तम् होकर भजतम् रूप सिद्ध होता है।

भजत भज् + च, शप्, थ = त होकर भजत् रूप सिद्ध होता है।

भजानि भज् + मिप्, शप् आट् का आगम, मि=नि होकर भजानि रूप सिद्ध होता है।

भजाव भज् + वस्, शप्, आट्, दीर्घ, स्, का लोप होकर भजाव रूप सिद्ध होता है।

भजाम् भज् + मस्, शप्, आट्, दीर्घ, स् का लोप होकर भजाम् रूप सिद्ध होता है।

भज् धातु लोट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार एध् धातु से लोट् लकार आत्मने पद में एधताम् आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहाँ भी लोट् लकार आत्मने पद में भजताम् आदि रूप बनेंगे। संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

भजताम् भज् धातु लोट् लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय होकर भज् + त बना। कर्तरिशप् इस सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भज् + अ +त बना। त को एत्व होकर भजते बना। उसके बाद आमेतः सूत्र से ए के स्थान में आम् प्रत्यय होकर भजताम् रूप सिद्ध होता है।

भजेताम् भज् + आताम्, शप्, आ =इय्, गुण, यकार का लोप टि को एत्व, एत्व में आम् होकर भजेताम् रूप सिद्ध होता है।

भजन्ताम् भज् + झ् , शप्, झ = अन्ते, अन्ते = आम् होकर भजन्ताम् रूप सिद्ध होता है।

भजस्व भज्+थास्, शप्, थास् = से, से = स्व होकर भजस्व रूप सिद्ध होता है।

भजेथाम् भज् + आथाम्, शप् आ= इय्, गुण, यकार का लोप, थाम् = थे, थे = थाम् होकर भजेथाम् रूप सिद्ध होता है।

भजध्वम् भज् + ध्वम्, शप्, ध्वम् = ध्वे, ध्वे = ध्वम् होकर भजध्वम् रूप सिद्ध होता है।

भजै भज्+इट्, शप्, एत्व, भजे बना। एत ऐ से ए=ऐ होकर भजै रूप सिद्ध होता है।

भजावहै भज् + वहि, शप्, एत्व, दीर्घ, ए=ऐ होकर भजावहै रूप सिद्ध होता है।

भजामहै भज् + महिङ्, शप्, एत्व, दीर्घ, ए=ऐ होकर भजामहै रूप सिद्ध होता है।

भज् धातु लङ् लकार पदस्मैपद

सामान्य नियम —जिस प्रकार भू धातु से लङ् लकार में अभवत् आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहाँ भी भज् धातु से लोट् लकार में अभजत् आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश नहीं होगा।संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

अभजत् भज् धातु लङ्लकार परस्मैपद एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर भज्+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर भज्+अ+ति बना। लुङ्लङ्लृङक्ष्वडुदान्तः सूत्र से अट् का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर तथा इकार का लोप होकर अभजत् रूप सिद्ध होता है। **इसी प्रकार प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में रूप सिद्ध करें।**

अभजताम् भज्+तस्, शप्, अट् का आगम होकर तथा तस् के स्थान में ताम् होकर अभजताम् रूप सिद्ध होता है।

अभजन् भज्+झि, शप्, अट्, झि=अन्ति, इकार तथा तकार का लोप होकर अभजन् रूप सिद्ध होता है।

अभजः भज् + सिप्, शप्, अट्, इकार का लोप, स को विसर्ग होकर अभजः रूप सिद्ध होता है।

अभजतम् भज् + थस्, शप्, अट्, इकार का लोप, स को विसर्ग होकर अभजः रूप सिद्ध होता है।

अभजत भज् + थ्, शप्, अट्, थ=त होकर अभजत रूप सिद्ध होता है।

अभजम् भज् + मिप्, शप्, अट्, मिप् =अम् होकर अभजम् रूप सिद्ध होता है।

अभजाव भज् + वस् शप्, अट्, दीर्घ, स का लोप होकर अभजाव रूप सिद्ध होता है।

अभजाम् भज् + मस्, शप्, अट्, दीर्घ, सकार का लोप होकर अभजाम् रूप सिद्ध होता है।

भज् धातु लङ्लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार लङ्लकार में एध् धातु से ऐधत् आदि रूप बने हैं।उसी प्रकार यहाँ भी भज् धातु से लङ्लकार आत्मने पद में अभजत् आदि रूप बनेंगे। यहाँ केवल अन्तर इतना होगा कि एध् धातु अजादि होने से आट् का आगमन होता है। यहाँ पर भज् धातु हलादि होने से आट् का आगम होकर न होकर अट का आगम होकर रूप सिद्ध होंगे।

अभजत् भज् धातु लङ्लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय् तथा शप् होकर भज् + अ + त बना। अट् का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर अभजत् रूप सिद्ध होता है।

अभजेताम् भज् + आताम्, शप्, अट्, आ को इय्, गुण, यकार का लोप होकर अभजेताम् रूप सिद्ध होता है।

अभयन्त भज् + झ, शप्, अट्, झ = अन्त होकर अभजन्त रूप सिद्ध होता है।

अभजथाः भज्+थास्, शप्, अट्, स्, को विसर्ग होकर अभजथाः रूप सिद्ध होता है।

अभजेथाम् भज् + आथाम्, शप्, अट्, आ कोझ्य, गुण, यकार का लोप होकर अभजेथाम् रूप सिद्ध होता है।

अभजध्वम् भज् + ध्वम्, शप्, अट्, होकर अभजध्वम् रूप सिद्ध होता है।

अभजे भज् + इट्, शप्, अट्, एत्व होकर अभये रूप सिद्ध होता है।

अभजावहि भज् + वहि, शप्, अट्, दीर्घ होकर अभजावहि रूप सिद्ध होता है।

अभजामहि भज् + महिङ्, शप्, अट्, दीर्घ होकर अभजामहि रूप सिद्ध होता है।

विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु के लङ्लकार के रूपों को देंखे।

भज् धातु विधिलिङ्लकार परस्मैपद

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से विधिलिङ्लकार में भवेत् आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहाँ भज् धातु से विधिलिङ्लकार में भजेत् आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश हुआ है। यहाँ पर इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।

भजेत् भज् धातु विधिलिङ् लकार परस्मैपद एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय, शप्, प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर भज + ति बना। यासुट् परस्मैपदेषु दात्तोङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम तथा अनुबन्धलोप होकर तथा यास् को इय्, गुण, यकार का लोप होकर भजेत् रूप सिद्ध होता है।

भजेताम् भज्+तस्, शप्, यास=इय्, गुण, यकार का लोप तस=ताम होकर भजेताम् रूप सिद्ध होता है।

भजेयुः भज्+झि, शप्, यास्=इय्, गुण, झि=उस् सकार को विसर्ग होकर भवेयुः रूप सिद्ध होता है।

भजेः भज्+सिप्, शप्, यास् =इय्, गुण यकार का लोप स को विसर्ग होकर भजेः रूप सिद्ध होता है।

भजेतम् भज् + थस्, शप्, यास=इय्, गुण, यकार का लोप, थस=तम होकर भजेतम् रूप सिद्ध होता है।

भजेत भज्+थ्,शप्, यास्=इय्,गुण,य का लोप,थ=त होकर भजेत रूप सिद्ध होता है।

भजेयम् भज् + मिप् शप्, यास=इय्, गुण मिप् को अम् होकर भजेयम् रूप सिद्ध होता है।

भजेव भज्+वस्, शप्, यास=इय्, गुण, यकार का लोप, स का लोप होकर भजेव रूप सिद्ध होता है।

भजेम भज्+मस्, शप्, यास=इय्, गुण, यकार का लोप, स का लोप होकर भजेम रूप सिद्ध होता है।

भज् धातु विधिलिङ्लकार आत्मने पद

सामान्य नियम—जिस प्रकार एध् धातु से विधिलिङ् लकार में एधेत् आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहाँ भी विधिलिङ्लकार में भजेत आदि रूप सिद्ध होंगे।संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

भजेत भज् धातु विधिलिङ्लकार प्रथम रूपष एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय तथा शप् प्रत्यय अनुबन्ध लोप होकर भज् + अ + त बना। यासुट् का आगम तथा यास् को इय्, गुण, यकार का लोप होकर भजेत रूप सिद्ध होता है।

भजेतायाम् भज् + आताम्, शप्, यास्=इय्, गुण भजेयाताम् रूप सिद्ध होता है।

भजेरन भज् + झ, शप्, यास् = इय्, गुण, झ=रन, यकार का लोप होकर अभजेरन रूप सिद्ध होता है।

भजेथाः भज्+थास्, शप्, यास्=इय्, गुण, यकार का लोप स् को विसर्ग होकर भजेथाः रूप सिद्ध होता है।

भजेयाथाम् भज् + आथाम्, शप्, यास् = इय्, गुण, भजेयाथाम् रूप सिद्ध होता है।

भजेध्वम् भज्+ध्वम्, शप्, यास=इय्, गुण ''य'' का लोप भजेध्वम् रूप सिद्ध होता है।

भजेय भज् + इट्, शप्,यास्=इय्, गुण, इ=अ होकर भजे'य' का लोप होकर भजेवहि रूप सिद्ध होता है।

भजेवहि भज्+वहि,शप्,यास्=इय्,गुण,'य''का लोप होकर भजेवहिः रूप सिद्ध होता है।

भजेमहि भज्+महिङ्, शप्, यास्=इय्, गुण, यकार का लोप होकर भजेमहि रूप सिद्ध होता है।

यज् देव पूजा संगतिकरणयो :—यज् देवपूजा — संङग्तिकरण—दानेषु

अर्थ—यज (यज्) धातु देवताओं की पूजा करना, संगति करना तथा देना इन तीनों अर्थो में प्रयोग होती है। यज् धातु से यज्ञ, यजमान यज्वन आदि शब्द बनते है।यज् धातु भी स्वरितेत् होने से उभय पदी है। अर्थात् इसका रूप परस्मैपद तथा आत्मने पद दोनों में चलते हैं।

यज् धातु लट्लकार परस्मैपद

सामान्य नियम —जिस प्रकार भू धातु से लट् लकार में भवति आदि रूप बने है।उसी प्रकार यहाँ भी लट् लकार में यज् धातु से यजति आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश होता है। यहाँ पर यज् धातु इगन्त न ,होने से गुण अवादेश नहीं होता है। **संक्षेप में रूप सिद्ध करें ।**

यजति यज् + ति, शप्, अनुबन्ध, लोप होकर के यजति रूप सिद्ध होता है।

यजतः यज्, तस्, शप्, सकार की विसर्ग होकर यजतः रूप सिद्ध होता है।

यजन्ति यज् + झि, शप्, झि=अन्ति, पररूप होकर यजन्ति रूप सिद्ध होता है।

यजसि यज् + सिप्, शप्, पकार की इत्संज्ञा होकर यजसि रूप सिद्ध होता है।

यजथः यज् + थस्, शप्, सकार को विसर्ग होकर यजथः रूप सिद्ध होता है।
यजथ यज् + थ, शप्, शप = अ होकर यजथ रूप सिद्ध होता है।
यजामि यज् + मिप्, शप्, दीर्घ होकर यजामि रूप सिद्ध होता है।
यजावः यज् + वस्, शप्, दीर्घ सकार को विसर्ग होकर याजवः रूप सिद्ध होता है।
यजामः यज् + मस्, शप्, दीर्घ सकार को विसर्ग होकर यजामः रूप सिद्ध होता है।

यज् धातु, लट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार एध् धातु से लट् लकार आत्मने पद में एधते आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहाँ भी यज् धातु से लट् लकार आत्मने पद में यजते् आदि रूप बनेंगे।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

यजते यज् + त्, शप्, टिको एत्व होकर यजते रूप सिद्ध होता है।
यजेते यज् + आताम्, शप्, आ=इय्, गुण, यकार का लोप, टिको एत्व होकर यजेते रूप सिद्ध होता है।
यजेन्ते यज् + झ्, शप्, झ= अन्ते होकर यजन्ते रूप सिद्ध होता है।
यजसे यज् + थास्, शप्, थास्= से होकर यजसे रूप सिद्ध होता है।
यजेथे यज् + आथाम्, शप्, आ= इय्, गुण, ''य'' का लोप टिको एत्व होकर यजेथे रूप सिद्ध होता है।
यजध्वे यज् + ध्वज, शप्, टिको एत्व होकर यजध्वे रूप सिद्ध होता है। यजे यज् + इट्, शप्, टि को एत्व होकर यजे रूप सिद्ध होता है।
यजावहे यज् + वहि्, शप्, दीर्घ, टि को एत्व होकर यजावहे रूप सिद्ध होता है।
यजामहे यज् + महिङ्, शप्, दीर्घ, टि को एत्व होकर यजामहे रूप सिद्ध होता है।
विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु के रूपों को देंखे।

यज् धातु लृट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से लृट् लकार में भविष्यति आदि रूप बने है।उसी प्रकार यहाँ भी लृट् लकार में यज् धातु से यक्ष्यति रूप सिद्ध होंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ पर भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश तथा इट् का आगम हुआ है। यहाँ पर न इट् का आगम होगा न गुण अवादेश होगा, यहाँ पर यज् में ज् के स्थान में ष् तथा ष् =क, स=ष् होकर यक्ष्य रूप बनाकर तिप् आदि प्रत्यय होड़कर यक्ष्यति आदि रूप बनते है।संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

यक्ष्यति यज् धातु लृट्लकार परस्मैपद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय तथा स्य होकर यज् + स्य +ति बना। व्रश्चभ्रस्जसृज सूत्र से यज् के जकार के स्थान में षकार होकर यष् + स्य +ति बना। उसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

षढोःकःसि 8। 2। 41। यक्ष्यति, यक्ष्यते।

अर्थ :– सकार परे हो तो षकार और ढकार को ककार, आदेश होता है। यष्+स्य+ति यहाँ पर पर में सकार है। स्य का सकार, इससे पूर्व में है। यष् का षकार। अतः षकार को ककार होकर यक्+स्य+ति बना। उसके बाद आदेश प्रत्यययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर यक्+स्य+ति बना। क्+ष्=''क्ष्'' होकर यक्ष्यति रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य रूप प्रत्यय जोड़कर संक्षेप में सिद्ध करें।

यक्ष्यतः यज् +तस् ,स्य,ज=ष्,ष्=क्,स्=ष्, क–ष=क्ष होकर यक्ष्यतः रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यन्ति यज्+झि, स्य, यक्ष्य+अन्ति, पररूप होकर यक्ष्यन्ति रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यसि यज्+सिप, स्य, यक्ष्यसि रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यथः यज्+थस्,स्य,यक्ष्य+थस्,सकार को विसर्ग होकर यक्ष्यथः रूप सिद्ध होता है।

यक्ष्यथ यज्+थ, स्य, यक्ष्य+थ होकर यक्ष्यथ रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यामि यज्+मिप्, स्य, यक्ष्य+मि, दीर्घ होकर यक्ष्यामि रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यावः यज्+वस्, स्य, यक्ष्य+वस्, दीर्घ, विसर्ग होकर यक्ष्यावः रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यामः यज्+मस्, स्य, यक्ष्य+मस्, दीर्घ, विसर्ग होकर यक्ष्यामः रूप सिद्ध होता है।

यज् धातु लृट्लकार आत्मने पद

सामान्य नियम – जिस प्रकार लृट् लकार में एध् धातु से एधिष्यते आदि रूप बने हैं।उसी प्रकार यहाँ भी यज् धातु से लृट् लकार में यक्ष्यते आदि रूप बनेंगे। यहाँ केवल इतना अन्तर होगा कि एध धातु से इट् का आगम हुआ है। यहाँ पर इट् का आगम नहीं होगा और परस्मैपद के समान यज् से यक्ष्य बनाकर तथा आत्मने पद प्रत्यय जोड़कर रूप सिद्ध होंगे।

यक्ष्यते यज् धातु से लृट् लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय तथा स्य होकर यज् स्य त बना।यज् में ज् को ष् तथा ष् को क, स्य के सकार को षकार होकर यक् ष्य त ना।क ष् क्ष होकर यक्ष्य त बना। टि को एत्व होकर यक्ष्यते रूप सिद्ध होता है।

यक्ष्येते यज्+आताम्,स्य,यक्ष्य+आताम्, आताम्=एते होकर यक्ष्येते रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यन्ते यज्+झ, स्य, यक्ष्य+झ, झ=अन्ते होकर यक्ष्यन्ते रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यसे यज्+थास्, स्य, यक्ष्य्+थास्, थास् =से होकर यक्ष्यसे रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्येथे यज्+आथाम्, स्य, यक्ष्य+आथाम्, आथाम्=एथे, यक्ष्यसे रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यध्वे यज्+ध्वम्, स्य, यक्ष्य+ध्वम्, ध्वम्=ध्वे होकर यक्ष्यध्वे रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्ये यज्+इट्, स्य, यक्ष्य+ए, पररूप होकर यक्ष्ये रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यावाहे यज्+वहि,स्य,यक्ष्य+वहि,दीर्घ तथा एत्व होकर यक्ष्यावहे रूप सिद्ध होता है।
यक्ष्यामहे यज्+महिङ्, स्य, यक्ष्य+वहि, दीर्घ तथा एत्व होकर यक्ष्यामहे रूप सिद्ध होता है।

यज् धातु लोट् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से भवतु आदि प्रयोग बने है। उसी प्रकार यहाँ भी लोट् लकार यज् धातु से परस्मैपद में यजतु आदि रूप बनेंगे। केवल इन्तर इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश होता है। यहाँ पर यज् धातु इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होता है।

रूपों को संक्षेप में सिद्ध करें ।

यजतु यज् धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन विवक्षा में टिप् प्रत्यय तथा शप् होकर यज्+अ+ति बना। वर्ण सम्मेलन तथा इकार को उकार होकर यजत् रूप सिद्ध होता है। यजताम् यज्+तस्+शप्, तस् के स्थान में ताम् होकर यजताम् रूप सिद्ध होता है।

यजन्तु यज्+झि, शप्, झि= अन्तु, पररूप होकर यजन्तु रूप सिद्ध होता है।
यज् यज् + सिप्, शप्, सि=हि, हि=लुक् होकर यज रूप सिद्ध होता है।
यजतम् यज् + थस्, शप्, थस् के स्थान में तम् होकर यजतम् रूप सिद्ध होता है।
यजत यज्+थ्, शप्, थ के स्थान में त होकर यजत रूप सिद्ध होता है।
यजानि यज्+मिप्, शप्, आट्, मि=नि, सवर्णदीर्घ होकर याजानि रूप सिद्ध होता है।
यजाव यज्+वस्, शप्, आट्, सवर्णदीर्घ, सकार का लोप होकर यजाव रूप सिद्ध होता है।
यजाम यज्+मस्, शप्, आट्, सवर्ण दीर्घ, सकार का लोप होकर यजाम रूप सिद्ध होता है।

यज् धातु लोट् लकार आत्मने पद

सामान्य नियम– जिस प्रकार एध् धातु से लोट् लकार एधताम् आदि रूप बने है। उसी

प्रकार यहाँ भी यजताम् आदि रूप बनेंगे। संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

यजताम् यज् धातु लोट् लकार आत्मने पद एक वचन विवक्षा में ''त'' प्रत्यय तथा शप् अनुबन्ध लोप होकर यज् + अ + त बना। टि को एत्व होकर यजते बना। उसके बाद आमेतः सूत्र से ए को आम् होकर यजताम् रूप सिद्ध होता है।

यजेताम् यज् + आताम्, शप्, आ=इय्, टिको एत्व, ''य'' का लोप होकर यजेताम् रूप सिद्ध होता है।

यजन्ताम् यज् + झ, शप् , झ=अन्ते, अन्ते =अन्ताम्, पररूपप होकर यजन्ताम् रूप सिद्ध होता है।

यजस्व यज्+थास्, शप्, थास् = से, से=स्व होकर यजस्व रूप सिद्ध होता है।

यजेथाम् यज्+आथाम्, शप्, आथाम् =एथाम् होकर यजेथाम् रूप सिद्ध होता है।

यजध्वम् यज्+ध्वम्, शप्, ध्वम्=ध्वे,ध्वे=ध्वम् होकर, यजध्वम् रूप सिद्ध होता है।

यजै यज्+इट्, शप्, इट् =ए, ए=ऐ होकर यजै रूप सिद्ध होता है।

यजावहै यज्+वहि, शप्, वहि = वहे, वहे= वह तथा दीर्घ होकर यजाव है रूप सिद्ध होता है।

यजामहै यज्+महिङ्, शप्,महि = महे,महै तथा दीर्घ होकर यजाम है रूप सिद्ध होता है।विशेष ज्ञान के लिए एध् धातु के लोट् लकार के रूपों को देंखे।

यज् धातु लङ् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम—जिस प्रकार भू धातु से लङ्लकार परस्मैपद में अभवत् आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहाँ भी लङ्लकार परस्मैपद में अयजत् आदि रूप बनेंगे। केवल अन्तर इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश होता है। यहाँ पर यज् धातु इगन्त होने से गुण अवादेश होता है। यहाँ पर यज् धातु इगन्त न होने से गुण अवादेश नहीं होगा।

अयजत्–यज् धातु लङ्लकार परस्मैपद प्रथम पुरूष एकवचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय, तथा शप् होकर यज्+अ+ति बना। अट् का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर अयज् +अ+ति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अयजत् रूप सिद्ध होता है।इसी प्रकार प्रत्यय जोड़कर अन्य रूप संक्षेप में सिद्ध करें।

अयजताम् यज्+तस्, शप्, अट्, तस् के स्थान में ताम् होकर अयजताम् रूप सिद्ध होता है।

अयजन् यज्+झि, शप्, अट्, झि=अन्ति, इकार का लोप, तथा तकार का लोप होकर अजयन् रूप सिद्ध होता है।

अयजः यज्+सिप्, शप्, अट्, इकार का लोप ''स्'' को विसर्ग होकर अयजः रूप सिद्ध हाता है।

अयजतम् यज्+थस्, शप्, अट्, थस् = तम् होकर अयजतम् रूप सिद्ध होता है।

अयजत यज्+थ, शप्, अट्, थ= त होकर अयजत् रूप सिद्ध होता है।

अयजम् यज्+मिप्, शप्, अट्, मिप = अम होकर अयजम रूप सिद्ध होता है।

अयजाव यज्+वस्, शप्,अट्,दीर्घ सकार का लोप होकर अयजाव रूप सिद्ध होता है।

अयजाम् यज्+मस्, शप्, अट्, दीर्घ, सकार का लोप होकर अयजाम रूप सिद्ध होता है।

यज् धातु लङ्लकार आत्मने पद

सामान्य निय – जिस प्रकार एध् धातु से लङ्कार में ऐधत आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहाँ भी यज् धातु से अयजत आदि रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि एध धातु अजादि होने के कारण आट् का आगम तथा वृद्धि आदि होती है। यहाँ पर यज् धातु यजादि न होने के कारण केवल अट् का आगम होगा।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

अयजत यज् धातु लङ्लकार आत्मने पद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय जोड़कर तथा शप्, अट् का आगम होकर अजयत रूप सिद्ध होता है।

अयजेताम् यज्+आताम्, शप्, अट्, इय्, गुण, यकार का लोप होकर अयजेताम् रूप

सिद्ध होता है।

अयजन्त यज्+झ्, शप्, अट्, झ=अन्त होकर अयजन्त रूप सिद्ध होता है।

अयजथाः यज्+थास्,शप्,अट्, सकार को विसर्ग होकर अयजथाः रूप सिद्ध होता है।

अयजेथाम् यज्+आथाम्, शप्, अट्, इय्, गुण यकार का लोप होकर, अयजेथाम् रूप सिद्ध होता है।

अयजध्वम् यज्+ध्वम्, शप्, अट् का आगम होकर अयजध्वम् रूप सिद्ध होता है।

अयजे यज्+इट्, शप्, अट्, गुण होकर अयजे रूप सिद्ध होता है।

अयजावहि यज्+वहि, शप्, अट्, दीर्घ होकर अयजावहि रूप सिद्ध होता है।

अयजामहि यज्+महिङ्, शप्, अट्, दीर्घ होकर अयजामहि रूप सिद्ध होता है।

यज् धातु विधिलिङ् लकार परस्मैपद

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लिङ्लकार में भवेत् आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहाँ भी यज् धातु से विधि लिङ्लकार में यजेत् आदि रूप बनेंगे। केवल अन्तर इतना होगा कि भू धातु इगन्त होने से गुण अवादेश हुआ है यहाँ पर यज् धातु इगन्त न होने से गुण आवदेश नही होगा।

यजेत् यज् धातु विधिलिङ लकार परस्मैपद प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय तथा शप्, अनुबन्ध लोप होकर यज्+अ+ति बना। यासुट परस्मैपदेषुदात्तोङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर यास बचा। यास के स्थान में इय् होकर यज्+अ+ति बना। गुण तथा इकार का लोप होकर यजेय् त् बना। यकार का लोपोव्योर्वलि सूत्र से लोप होकर यजेत् रूप सिद्ध होता है।इसी प्रकार प्रत्यय जोड़कर अन्य रूप संक्षेप में सिद्ध करें।

यजेताम् यज्+तस्, शप्, यास्=इय्, गुण, यकार का लोप, तस=ताम् होकर यजेताम् रूप सिद्ध होता है।

यजेयुः यज्+झि, शप्, यास्=इस्,गुण, झि=उस् होकर यजेयुः रूप सिद्ध हाता है।

यजेः यज्+सिप्, शप्, यास्=इय्, गुण, यकार का लोप् इकार का लोप सकार को विसर्ग होकर यजेः रूप सिद्ध होता है।

यजेतम् यज्+थस्, शप्, यास=इय्, गुण, यकार का लोप, थस् =तम् होकर यजेतम् रूप सिद्ध होता है।

यजेत यज्+थ, शप् यास्=इय्, गुण यकार का लोप, थस् = थ होकर यजेत रूप सिद्ध होता है।

यजेयम् यज्+मिप्, शप्, यास्=इय्, गुण, मि=अम् होकर यजेयम् रूप सिद्ध होता है।

यजेव यज्+वस्, शप्, यास्=इय्, गुण, यकार का लोप तथा सकार का लोप होकर यजेव रूप सिद्ध होता है।

यजेम यज्+मस्, शप्, यास=इय्, गुण यकार का लोप तथा सकार का लोप होकर यजेम रूप सिद्ध होता है।

विशेष रूप से ज्ञान के लिए नियम को पढ़ते हुए भू धातु के विधि लिङ्लकार के रूपों को देंखे।

यज् धातु विधिलिङ् लकार आत्मने पद

जिस प्रकार एध् धातु से विधिलिङ लकार में एधेत् आदि रूप बना है। उसी प्रकार यहाँ भी यज् धातु से विधिलिङ् लकार आत्मने पद में यजेत् आदि रूप बनेंगे।

संक्षेप में रूप सिद्ध करें।

यजेत् यज् धातु से विधिलिङ् लकार आत्मने पद एक वचन विवक्षा में त प्रत्यय तथा शप् होकर यज्+अ+त बना। लिङ सीयुट सूत्र से सीयुट् का आगम, अनुबन्ध लोप होकर यज्+सीय्+त बना। सकार का लोप, गुण, यकार का लोप होकर यजेत रूप सिद्ध होता है।

यजेयाताम् यज्+आताम्, शप्, सीयुट् =इय्, गुण यजेयाताम् रूप सिद्ध होता है।

यजेरन् यज्+झ्, शप्, सीय्=ईय्, गुण, झ=रन् होकर यजेरन् रूप सिद्ध होता है।

यजेथाः यज्+थास्, शप्, सीय् =ईय्, गुण, यकार का लोप, स को विसर्ग होकर यजेथाः

रूप सिद्ध होता है।

यजेयाथाम् यज्+आथाम्, शप, ्सीय्=ईय, गुण, होकर यजेयाथाम् रूप सिद्ध होता है।

यजेध्वम्यज्+ध्वम्, शप्, सीय्, ईय्, गुण, यकार का लोप होकर, यजेध्वम् रूप सिद्ध होता है।

यजेय यज् + इट्, शप्, सीय्=ईय्, गुण, इ=अ होकर यजेय रूप सिद्ध होता है।

यजेवहि यज् + वहि, शप्, सीय्=इय्, गुण, यकार का लोप होकर, यजेवहि रूप सिद्ध होता है।

यजेमहि यज्+महिङ्, शप्, सीय्=ईय्, गुण, यकार का लोप होकर, यजेमहि रूप सिद्ध होता है।

अभ्यास प्रश्न,

1. इस इकाई में कितने धातु सिद्ध किये गये है?
2. नयतः किस धातु का रूप है ?
3. नी धातु का अर्थ क्या होता है?
4. नेष्यति किस पुरूष का रूप है ?
5. पच् धातु का अर्थ क्या होता है?
6. पक्ष्यति किस धातु का रूप है?
7. भक्ष्यति में कौन सा धातु है?
8. पढ़ोः कः सि सूत्र क्या करता है?
9. पक्ष्यन्ति किस वचन का रूप है?
10. पच् धातु के लोट् लकार एकवचन में रूप है?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. भज् धातु का अर्थ होता है :–
   (क) सेवा (ख) चोरी
   (ग) हसना (घ) जाना
2. यज् धातु के लृट लकार मध्यम पुरूष एक वचन का रूप है :–
   (क) यक्ष्यसि (ख) यक्ष्यामि
   (ग) यक्ष्यन्ति (घ) यक्ष्यति
3. भज् धातु आत्मनेपद एक वचन का रूप है :–
   (क) भजेते (ख) भजन्ते
   (ग) भजे (घ) भजते
4. पचै रूप होता है :–
   (क) लट् लकार (ख) लोट् लकार
   (ग) लङ् लकार (घ) लृङ् लकार
5. यजस्व रूप होता है :–
   (क) प्रथम पुरूष (ख) उत्तम पुरूष
   (ग) मध्यम पुरूष (घ) प्रथम पुरूष, उत्तमपुरूष

3.5. सारांश

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि इसमें कितने धातुओं का वर्णन किया गया हैं। इन धातुओं का अर्थ क्या होता है। इनका भी वर्णन इस इकाई में किया गया है। इनमें चार धातुओं का वर्णन किया गया हैं। (1) नी (णीञ्), (2) पच्, (3) भज्, (4) यज्। ये चारों धातु उभय पदी है। अर्थात् इन चारों धातुओं के रूप सिद्ध परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों में किया गया है, क्योंकि ये धातु स्वरितेत अर्थात् स्वर की इत्संज्ञा हुई है इसलिए उभयपदी है। इन धातुओं के रूप सिद्धि पांच लकारों में की गई है।(1) लट् (2) लृट् (3) लोट् (4) लङ् (5) विधिलिङ्

3.6 शब्दावली

शब्द	अर्थ

पचति	पकाता है।
पचतः	दो पकाते है।
पचन्ति	वे पकाते है।
पचसि	तुम पकाते हो।
पचथः	तुम दोनों पकाते हो।
पचथ	तुब सब पकाते हो।
पचामि	मैं पकता हूँ।
पचावः	हम दोनों पकाते है।
पचामः	हम सब पकाते है।
नेष्यति	ले जाएगा।
नेष्यतः	दो ले जायेगें।
नेष्यन्ति	वे सब ले जायेंगे।
नेष्यसि	तुम ले जावोंगे।
नेष्यथः	तुम दोनों ले जावोंगे।
नेष्यथ	तुम सब ले जावोंगे।
नेष्यामि	मैं ले जाऊगा।
नेष्यावः	हम दोनों ले जायेंगे।
नेष्यामः	हम सब ले जायेंगे।
अभजत्	वह सेवा किया।
अभजताम्	वह दोनों सेवा किये।
अभजन	वे सब सेवा किये।
अभजः	तुम सेवा किये।
अभजतम्	तुम दोनों सेवा किये।
अभजत्	तुम सब सेंवा किये।
अभम्	मैंने सेवा किया।
अभाव	हम दोंनो सेवा किये।
अभजाम	हम सब सेवा किये।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चार
2. नी
3. ले जाना
4 प्रथम पुरूष
5.पकाना
6. पच् धातु का
7. भज्
8. ढ् और ष् को क्
9. बहुवचन
10.पचतु

बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1(क) सेवा
2(क) यक्ष्यसि
3(घ) भजते
4(ख) लोट् लकार
5.(ग) मध्यम पुरूष

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उप ग्रन्थ लेखक प्रकाशक

लघु सिद्वान्त कौमुदी वरदसजा चार्य चौखम्मा संस्कृत भारति वाराणसी
2– वैयाकरण सिद्वान्त कौमुदी नागेश भटट्
3– व्याकरण महाभाष्य पतज्जलि
1–8 उपयोगी पुस्तकें
1– लघुसिद्वान्त कौमुदी

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अत्ति रूप को सिद्ध करे

इकाई .4 सूत्र ,वृति ,अर्थ ,व्याख्या ,अद् तथा यु धातु की रूप सिद्वि

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सूत्र, वृति ,अर्थ, व्याख्या ,सहित, अद् ,तथा यु धातु की रूप सिद्वि

4.4 सांराश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तके

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि व्याकरण शास्त्र में अद् धातु का अर्थ क्या है ? इसमे अद् धातु के अर्थ के विषय में सम्यग् रुप से वर्णन किया गया है ।

व्याकरण शास्त्र के महत्व को जानते हुए इस इकाई में जानेंगे कि अद् तथा यु धातु की रुप सिद्धि किस प्रकार हूई है तथा अद् तथा यु धातु आत्मने पदी है कि परस्मैपदी है ? इसका वर्णन सूत्रो के माध्यम से सम्यग् रुप से वर्णन किया गया है ।

इस इकाई के अध्ययन से आप धातु रुपों को सिद्व करते हुए उनको वाक्यों में प्रयोग का सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप धातु रूपों को जानते हुए उनको संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करेंगे –

- अद् धातु का सिद्धि होगा इसके विषय में परिचित होगे ।
- यु धातु का सिद्धि होगा इसके विषय में परिचित होगे ।
- अद् धातु का अर्थ क्या होगा इसके विषय में परिचित होगे ।
- यु धातु का अर्थ क्या होगा इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र के विषय में आप परिचित होंगे।

4.3 सूत्र वृति अर्थ व्याख्या सहित अद् तथा यु धातु की रूप सिद्धि

1.लट् लकार

सामान्य नियम – जिस प्रकार भू धातु लट् लकार में भवति आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहा भी अद् धातु से अत्ति आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है।

अत्ति– अद् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अद्+तिप् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+तिप् बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

अदिप्रभृतिभ्यः शपः 2/4/72/

लुक् स्यात् । अत्ति अत्तः अदन्ति । अत्सि अत्थः अत्थ। अद्मि अद्वः अद्मः।

अर्थ–अदादि गण की धातुओं से परे शप् का लुक् अर्थात् लोप होता है। अद्+शप्+ति यहा अदादि गण धातु है अद्। इससे परे शप् का लुक् होकर अद्+ति बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्ति रूप सिद्ध होता है।

अत्तः–अद् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अद्+तस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः परे शप् का लुक् होकर अद्+तस् बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्तस् तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर अत्तः रूप सिद्ध होता है।

अदन्ति–अद् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अद्+झि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+झि बना। इसके बाद झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर +अद्+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर अदन्ति रूप सिद्ध होता है।

अत्सि– अद् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अद्+सि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+सि बना। इसके बाद

अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद्+सि बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्सि रूप सिद्ध होता है।

अत्थः– अद् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अद्+थस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः परे शप् का लुक् होकर अद्+थस् बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्थस् तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर अत्थः रूप सिद्ध होता है।

अत्थ– अद् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष बहु वचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अद्+थ बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः परे शप् का लुक् होकर अद्+थ बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्थ रूप सिद्ध होता है।

अद्मि– अद् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अद्+मि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+मि बना। इसके बाद अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद्+मि बना। इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर अद्मि रूप सिद्ध होता है।

अद्वः– अद् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अद्+वस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः परे शप् का लुक् होकर अद्+वस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग होकर अद्वः रूप सिद्ध होता है।

अद्मः– अद् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अद्+मस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः परे शप् का लुक् होकर अद्+मस् बना। इसके बाद सकार को रुत्व विसर्ग होकर अद्मः रूप सिद्ध होता है।

2–लृट् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लृट् लकार में भविष्यति आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लृट् लकार में अद् धातु से अत्स्यति आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

अत्स्यति–अद् धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अद्+तिप् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+ति बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+ति बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्स्यति रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यतः–अद् धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अद्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+तस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+तस् बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर अत्स्यतः रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यन्ति–अद् धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अद्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+झि बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+झि बना। इसके बाद झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर अद्+स्य+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन तथा अतो गुणे से पररूप होकर अत्स्यन्ति रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यसि–अद् धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अद्+सिप् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+सि बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+सि बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्स्यसि रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यथः–अद् धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अद्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+थस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+थस् बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर अत्स्यथः रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यथ–अद् धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अद्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+थ बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+थ बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्स्यथ रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यामि–अद् धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अद्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+मि बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+मि बना। इसके बाद खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्स्य+मि बना। बना।अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ होकर अत्स्यामि रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यावः–अद् धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अद्+थ्वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+वस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+वस् बना। बना।अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ तथा खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्स्यावस् तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर अत्स्यावः रूप सिद्ध होता है।

अत्स्यामः–अद् धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अद्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर अद्+स्य+मस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम प्राप्त है। इसको बाधकर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इट् का निषेध होकर अद्+स्य+मस् बना। बना। अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ तथा खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्स्यामस् तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर अत्स्यामः रूप सिद्ध होता है।

3–लोट् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लोट् लकार में भवतु आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लोट् लकार में अद् धातु से अत्तु आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है–

अत्तु– अद् धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अद्+तिप् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+तिप् बना।

अदिप्रभृतिभ्यः शपः इससे परे शप् का लुक् होकर अद्+ति बना।एरुः सूत्र से इकार को उकार तथा खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्तु रूप सिद्ध होता है।

आत्ताम्– अद् धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अद्+तस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+तस् बना।तस् के स्थान में ताम् होकर अद्+ताम् बना। खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्ताम् रूप सिद्ध होता है।

अदन्तु– अद् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अद्+झि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र आदन से शप् लुक् होकर अद्+झि बना।झोऽन्तःसूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर अद्+अन्ति बना।एरुः सूत्र से इकार को उकार तथा वर्ण सम्मेलन होकर अदन्तु रूप सिद्ध होता है।

अद्धि– अद् धातु लोट् लकार मघ्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अद्+सि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+सि बना। इसके बाद अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद्+सि बना। इसके बाद सेर्ह्यपिच्च सूत्र से सि के स्थान में हि होकर अद्+हि बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

हु–झल्भ्यो हेर्धिः 6/4/101/

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि ।

अर्थ–हु (हवन करना खाना)तथा झलन्त धातुओं से परे हि को धि आदेश होता है।

अद्+हि यहा पर झलन्त धातु है अद् । इस अद् से परे हि को धि आदेश होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्धि रूप सिद्ध होता है।

अत्तम्– अद् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अद्+थस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर अद्+तम् बना। खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर अत्तम् रूप सिद्ध होता है।

अत्त –अद् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अद्+थ बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+थ बना। इसके बाद थ के स्थान में त होकर अद्+त बना। खरि च सूत्र से दकार चर्त्व तकार होकर अत्त रूप सिद्ध होता है।

अदानि–अद् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अद्+मिप् बना। पकार का लोप होकर अद्+मि बना। मेर्निः सूत्र से मि के स्थान में नि अदेश होकर अद्+नि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+नि बना। अदिप्रभृतिभ्यःशपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद्+नि बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर अद्+आ+नि बना। अद्+आ+नि बना। वर्ण सम्मेलन होकर अदानि रूप सिद्ध होता है।

अदाव–अद् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अद्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद्+वस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर अद्+आ+मस् बना। सकार का लोप तथा वर्ण सम्मेलन होकर अदाव रूप सिद्ध होता है।

अदाम–अद् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अद्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+मस् बना।

अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद् +मस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर अद्+आ+मस् बना। सकार का लोप तथा वर्ण सम्मेलन होकर अदाम रूप सिद्ध होता है।

4–लङ् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु लङ् लकार में अभवत् आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहा भी अद् धातु से आदत् आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है।

आदत्– धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष एकचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अद्+तिप् बना।पकार इत्संज्ञा होकर अद्+ति बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+ति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अद्+शप्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+त् बना। अद इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+त् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+त् बना। उसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है

अदः सर्वेषाम् 7/3/100/

अदः परस्य अपृक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात् सर्वमतेन आदत्। आत्ताम्। आदन्। आदः। आत्तम्। आत्त।आदम्। तिप बना।पकर आद्व। आद्म।

अर्थ– अद् धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक को अट् का आगम होता है सभी आचायों के मत में।

आ+अद्+त् यहाँ अद् धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक है त्। इस त् को अट् का अगम होकर आ+अद्+अट्+त् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+अ+त् बना। आटश्च सूत्र से वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आदत् रूप सिद्ध होता है।

आत्ताम्– अद् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अद्+तस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+तस् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+तस् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+तस् बना। उसके बाद अदः सर्वेषाम् इस सूत्र से अद धातु अपृक्त सार्वधातुक न होने के कारण अट् का आगम न होकर आ+अद्+तस् बना।तस् के स्थान में ताम् होकर आ+अद्+ताम् बना। खरि च सूत्र से दकार को चर्त्व तकार तथा आटश्च सूत्र वृद्धि होकर आत्ताम् रूप सिद्ध होता है।

आदन्– अद् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अद्+झि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र आदन से शप् लुक् होकर अद्+झि बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+तस् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+झि बना। उसके बाद : अद सर्वेषाम् इस सूत्र से अद धातु अपृक्त सार्वधातुक न होने के कारण अट् का आगम न होकर आ+अद्+झि बना।झोऽन्तःसूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर आ+अद्+अन्ति बना। इकार तथा तकार का लोप होकर आ+अद्+अन् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आदन् रूप सिद्ध होता है।

आदः –अद् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अद्+सि बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+सि बना।इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अद्+स् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+स् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+स् बना। इसके बाद अदः सर्वेषाम् इस सूत्र से अद् धातु से अपृक्त सार्वधातुक स् होने के कारण अट् का आगम होकर आ+अद्+अट्+ स् बना।टकार का लोप होकर आ+अद्+अ+स् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर आदः रूप सिद्ध होता है।

आत्तम्– अद् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अद्+थस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+थस् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+थस् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+थस् बना। उसके बाद अदः सर्वेषाम् इस सूत्र से अद धातु अपृक्त सार्वधातुक न होने के कारण अट् का आगम न होकर आ+अद्+थस् बना।थस् के स्थान में तम् होकर आ+अद्+तम् बना। खरि च सूत्र से दकार चर्त्व तकार तथा आटश्च सूत्र वृद्धि होकर आत्तम् रूप सिद्ध होता है।

आत्त – अद् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अद्+थ बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+थ बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+थ बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+थ बना। उसके बाद अदः सर्वेषाम् इस सूत्र से अद धातु से अपृक्त सार्वधातुक न होने के कारण अट् का आगम न होकर आ+अद्+थ बना। थ के स्थान में त होकर आ+अद्+त बना। खरि च सूत्र से दकार चर्त्व तकार तथा आटश्च सूत्र वृद्धि होकर आत्त रूप सिद्ध होता है।

आदम्– अद् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अद्+मिप् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+मि बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+मि बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+मि बना। मिप् के स्थान में अम् होकर आ+अद्+अम् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आदम् रूप सिद्ध होता है।

आद्व– अद् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अद्+वस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+वस् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+वस् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+वस् बना। आटश्च सूत्र से वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आद्वस् बना। सकार का लोप होकर आद्व रूप सिद्ध होता है।

आद्म–अद् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अद्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अद्+मस् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अद्+मस् बना। टकार का लोप होकर आ+अद्+मस् बना। आटश्च सूत्र से वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आद्मस् बना। सकार का लोप होकर आद्म रूप सिद्ध होता है।

5–विधि लिङ् लकार

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से विधि लिङ् लकार में भवेत् आदि रूप बने है उसी प्रकार यहा भी अद् धातु से विधि लिङ् लकार में अद्यात् आदि रूप बनेंगे कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

अद्यात्– अद् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अद्+तिप् बना। इकार पकार का लोप होकर अद्+त् बना।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ त् बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+त् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+त् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+त् बना। वर्ण सम्मेलन होकर अद्यात् रूप सिद्ध होता है।

अद्याताम्– अद् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अद्+तस् बना। ।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम

होकर अद्+यासुट्+ तस् बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+तस् बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+तस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+तस् बना।तस् के स्थान ताम् होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्याताम् रूप सिद्ध होता है।

अद्युः – ् अद् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अद्+झि बना। ।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ झि बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+झि बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+ झि बना।झेर्जुस् सूत्र से झि के स्थान में जुस् तथा जकार का लोप होकर अद्+यास्+उस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+उस् बना। उस्यपदान्तात् इस सूत्र से पररूप अद्+युस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्युः रूप सिद्ध होता है।

अद्याः – ् अद् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सि प्रत्यय होकर अद्+सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अद्+स् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ स् बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+स् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+स् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+स् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+स् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्याः रूप सिद्ध होता है।

अद्यातम् – ् अद् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अद्+थस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ थस् बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+थस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर अद्+या+तम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर अद्यातम् रूप सिद्ध होता है।

अद्यात– ् अद् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अद्+थ बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ थ बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+थ बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+थ बना। थ के स्थान में त होकर अद्+या+त बना। वर्ण सम्मेलन होकर अद्यात रूप सिद्ध होता है।

अद्याम्– ् अद् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अद्+मि बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ मि बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+मि बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+मि बना। मिप् के स्थान में अम् होकर अद्+या+अम् बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्याम् रूप सिद्ध होता है।

अद्याव– ् अद् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अद्+वस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर

अद्+यासुट्+ वस् बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+वस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+वस् बना। वस् के सकार का लोप होकर अद्+या+व बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्याव रूप सिद्ध होता है।

अद्याम– अद् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अद्+मस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अद्+यासुट्+ मस् बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अद्+शप्+यास्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अद्+यास्+मस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+मस् बना। मस् के सकार का लोप होकर अद्+या+म बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर अद्याम रूप सिद्ध होता है।

1–लट् लकार

यु मिश्रणामिश्रणयोः

अर्थ–यु धातु मिलाना या अलग करना अर्थों में प्रयुक्त होती है।

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लट् लकार में भवति आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लट् लकार में यु धातु से यौति आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

यौति–यु धातु लट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर यु+तिप् बना। पकार का लोप होकर यु+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+ति बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+ति बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

उतो वृद्धिर्लुकि हलि 7/3/89/

लग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य। यौति। युतः। युवन्ति। यौषि।युथः। युथ। यौमि। युवः। युमः।

अर्थ–लुक् के विषय में उदन्त अंग को वृद्धि हो हलादि पिति सार्वधातुक परे हो तो । परन्तु अभ्यस्त को वृद्धि नही होती है।

यु+ति यहा पर शप् का लुक् हो चुका है अतः यहा लुक् का विषय है। यु यह उकारान्त अंग है। इससे परे सि यह हलादि पित् सार्वधातुक विद्यमान है। अतः उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को वृद्धि औकार होकर यौति रूप सिद्ध होता है।

युतः–यु धातु लट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर यु+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+तस् बना। इससे परे तस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+तस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर युतः रूप सिद्ध होता है।

युवन्ति –यु धातु लट् लकार प्रथम पुरूष बहु वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर यु+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+झि बना। इससे परे तस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर यु+अन्ति बना। अचि श्नु0 इस सूत्र से यु के उकार को उवङ् आदेश तथा अकार ङकार का लोप होकर य्+उव्+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर युवन्ति रूप सिद्ध होता है।

यौषि–यु धातु लट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर यु+सिप् बना। पकार का लोप होकर यु+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर

युु+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+सि बना। यहा पर शप् का लुक् हो चुका है अतः यहा लुक् का विषय है। यु यह उकारान्त अंग है।इससे परे सि यह हलादि पित् सार्वधातुक विद्यमान है। अतः उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को वृद्धि औकार होकर यौ+सि बना।आदेशप्रत्यययोः इस सुत्र से सि सकार के स्थान में मूर्धन्य षकार होकर यौ+ षि बना। वर्ण सम्मेलन होकर यौषि रूप सिद्ध होता है।

युथः—यु धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर यु+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+थस् बना। इस धातु से परे थस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+थस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर युथः रूप सिद्ध होता है।

युथ—यु धातु लट् लकार मध्यम पुरूष बहु वचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर यु+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+थ बना। इस धातु से परे थ पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+थ बना। वर्ण सम्मेलन होकर युथ रूप सिद्ध होता है।

यौमि—यु धातु लट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर यु+मिप् बना। पकार का लोप होकर यु+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+मि बना। यहा पर प् का लुक् हो चुका है अतः यहा लुक् का विषय है। यु यह उकारान्त अंग है।इससे परे मि यह हलादि पित् सार्वधातुक विद्यमान है। अतः उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को वृद्धि औकार होकर यौ+मि बना। वर्ण सम्मेलन होकर यौमि रूप सिद्ध होता है।

युवः—यु धातु लट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर यु+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+वस् बना। यु धातु से परे वस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+वस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर युवः रूप सिद्ध होता है।

युमः—यु धातु लट् लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर यु+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+मस् बना। यु धातु से परे मस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+मस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर युमः रूप सिद्ध होता है।

2—लृट् लकार

सामान्य नियम— जिस प्रकार भू धातु से लृट् लकार में भविष्यति आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लृट् लकार में यु धातु से यविष्यति आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

यविष्यति—यु धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर यु+तिप् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+ति बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+ति बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+ति बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+ति बना। आदेशप्रत्यययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर यविष्यति रूप सिद्ध होता है।

यविष्यतः–यु धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस्प्रत्यय होकर यु+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+तस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+तस् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+तस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+तस् बना। आदेशप्रत्ययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+तस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर यविष्यतः रूप सिद्ध होता है।

यविष्यन्ति–यु धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा मे झि प्रत्यय होकर यु+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+झि बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+इ+स्य+झि बना। झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर यु+इ+स्य+अन्ति बना सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+अन्ति बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+अन्ति बना। आदेशप्रत्ययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+तस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा अतो गुणे से पररूप होकर यविष्यन्ति रूप सिद्ध होता है।

यविष्यसि–यु धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर यु+सिप् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+सि बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+सि बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+सि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+सि बना। आदेशप्रत्ययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर यविष्यसि रूप सिद्ध होता है।

यविष्यथः–यु धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस्प्रत्यय होकर यु+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+थस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+थस् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+थस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+थस् बना। आदेशप्रत्ययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+थस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर यविष्यथः रूप सिद्ध होता है।

यविष्यथ–यु धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर यु+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+थ बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+थ बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+थ बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+थ बना। आदेशप्रत्ययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+थ बना। वर्ण सम्मेलन होकर यविष्यथ रूप सिद्ध होता है।

यविष्यामि–यु धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर यु+मिप् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+मि बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+मि बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+मि बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को

अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+मि बना। आदेशप्रत्यययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+मि बना।अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर यविष्यामि रूप सिद्ध होता है।

यविष्यावः–यु धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर यु+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+वस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+वस् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+वस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+वस् बना। आदेशप्रत्यययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+वस् बना।अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर यविष्यावस् बना।सकार को रूत्व विसर्ग होकर यविष्यावः रूप सिद्ध होता है।

यविष्यामः–यु धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर यु+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्राप्त है उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर यु+स्य+मस् बना। आर्धधातुकस्येड् वलादेः इस सूत्र से इट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+स्य+मस् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से उकार को गुण ओकार होकर यो+इ+स्य+मस् बना। एचोऽयवायावः सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर य्+अव्+इ+स्य+मस् बना। आदेशप्रत्यययोः इस सूत्र से स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर य्+अव्+इ+ष्य+मस् बना।अतो दीर्घो यञि इस सूत्र से दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर यविष्यामस् बना।सकार को रूत्व विसर्ग होकर यविष्यामः रूप सिद्ध होता है।

3–लोट् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लोट् लकार में भवतु आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लोट् लकार में यु धातु से यौतु आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

यौतु–यु धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर यु+तिप् बना। पकार का लोप होकर यु+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+ति बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का है। लुक् होकर यु+ति बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को वृद्धि औकार होकर यौ+ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर यौतु रूप सिद्ध होता

युताम् –यु धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर यु+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+तस् बना। इससे परे तस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+तस् बना।तस् के स्थान में ताम् होकर यु+ताम्बन। वर्ण सम्मेलन होकर युताम् रूप सिद्ध होता है।

युवन्तु –यु धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष बहु वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर यु+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+झि बना। इससे परे तस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर यु+अन्ति बना। अचि श्नु0 इस सूत्र से यु के उकार को उवङ् आदेश तथा अकार ङकार का लोप होकर य्+उव्+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर युवन्ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर युवन्तु रूप सिद्ध होता है।

युहि–यु धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर यु+सिप् बना। पकार का लोप होकर यु+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर

यु+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+सि बना। यहा पर सेर्ह्यपिच्च सूत्र से सि के स्थान में हि होकर सु+हि बना। वर्ण सम्मेलन होकर युहि रूप सिद्ध होता है।

युतम् –यु धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर यु+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+थस् बना। इस धातु से परे थस् पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+थस् बना।थस् के स्थान में तम् तथा वर्ण सम्मेलन होकर युतम् रूप सिद्ध होता है।

युत –यु धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष बहु वचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर यु+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+थ बना। इस धातु से परे थ पित् न होने के कारण यु यह उकारान्त अंग को वृद्धि औकार न होकर यु+थ बना।थ के स्थान में त तथा वर्ण सम्मेलन होकर युत रूप सिद्ध होता है।

यवानि–यु धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर यु+मिप् बना। पकार का लोप होकर यु+मि बना।मेर्निः सूत्र से मि के स्थान में नि अदेश होकर यु+नि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+नि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+नि बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+आ+नि बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से गुण ओकार तथा एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर य्+अव्+आ+नि बना। वर्ण सम्मेलन होकर यवानि रूप सिद्ध होता है।

यवाव–यु धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर यु+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+वस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+आ+वस् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से गुण ओकार तथा एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर य्+अव्+आ+वस् बना। सकार का लोप तथा वर्ण सम्मेलन होकर यवाव रूप सिद्ध होता है।

यवाम–यु धातु लोट् लकार उत्तम पुरुष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर यु+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर यु+मस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर यु+आ+मस् बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से गुण ओकार तथा एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर य्+अव्+आ+मस् बना। सकार का लोप तथा वर्ण सम्मेलन होकर यवाम रूप सिद्ध होता है।

4–लङ् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु लङ् लकार में अभवत् आदि रूपबने हैं। उसी प्रकार यहा भी यु धातु से अयौत् आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

अयौत् – यु धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष एकचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर यु+तिप् बना।पकार इत्संज्ञा होकर यु+ति बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+ति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर यु+शप्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+त् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +त् बना। टकार का लोप होकर अ+यु +त् बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को वृद्धि औकार होकर अयौ+त् बना। तथा बर्ण सम्मेलन होकर अयौत् रूप सिद्ध होता है।

अयुताम् – यु धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष द्वि विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर यु+तस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+तस् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +तस् बना। टकार का लोप होकर अ+यु +तस् बना।

उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+तस् बना। तस् के स्थान में ताम् तथा बर्ण सम्मेलन होकर अयुताम् रूप सिद्ध होता

अयुवन्– यु धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर यु+झि बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+झि बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +झि बना। टकार का लोप होकर अ+यु +झि बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+झि बना। झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर अ+यु+अन्ति बना। इकार तकार का लोप तथा बर्ण सम्मेलन होकर अयुवन् रूप सिद्ध

अयौः– यु धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष एकवचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर यु+सिप् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+सि बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +सि बना। टकार का लोप होकर अ+यु +सि बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति होने के कारण वृद्धि औकार होकर अ+यौ +सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप सकार का रुत्व विसर्ग होकर अयौः रूप सिद्ध होता

अयुतम् – यु धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर यु+थस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+थस् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +थस् बना। टकार का लोप होकर अ+यु +थस् बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+थस् बना। थस् के स्थान में तम् तथा बर्ण सम्मेलन होकर अयुतम् रूप सिद्ध होता

अयुत– यु धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर यु+थ बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+थ बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +थ बना। टकार का लोप होकर अ+यु +थ बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+थ बना। थ के स्थान में त तथा बर्ण सम्मेलन होकर अयुत रूप सिद्ध।

अयवम्– यु धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर यु+मिप् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+मि बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +मि बना। टकार का लोप होकर अ+यु +मि बना।मिप् के स्थान में अम् आदेश अ+यु+अम् बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को हलादि न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+अम् बना। गुण अवादेश तथा बर्ण सम्मेलन होकर अयवम् रूप सिद्ध होता

अयुव– यु धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर यु+वस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+वस् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+यु +वस् बना। टकार का लोप होकर अ+यु +वस् बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+वस् बना। वस् के सकार का लोप तथा वर्ण सम्मेलन होकर अयुव रूप सिद्ध होता

अयुम– यु धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर यु+मस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+मस् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से

अट् का आगम होकर अट्+यु +मस् बना। टकार का लोप होकर अ+यु +मस् बना। उतो वृद्धिर्लुकि हलि इस सूत्र से यु में उकार को पिति न होने के कारण वृद्धि औकार न होकर अ+यु+मस् बना। मस् के सकार का लोप तथा वर्ण सम्मेलन होकर अयुम रूप सिद्ध होता

5–विधि लिङ् लकार

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से विधि लिङ् लकार में भवेत् आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहा भी यु धातु से विधि लिङ् लकार में युयात् आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

विशेष–यह लकार ङित् होने के कारण पित् की वृद्धि नही होती है।

युयात्–यु धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर यु+तिप् बना। इकार पकार का लोप होकर अद्+त् बना।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ त् बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+त् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+त् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+त् बना। वर्ण सम्मेलन होकर युयात् रूप सिद्ध होता है।

युयाताम्–यु धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर यु+तस् बना। ।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ तस् बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+तस् बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+तस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+तस् बना।तस् के स्थान में ताम् होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर युयाताम् रूप सिद्ध होता है।

युयुः –यु धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर यु+झि बना। ।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ झि बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+झि बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+झि बना।झेर्जुस् सूत्र से झि के स्थान में जुस् तथा जकार का लोप होकर अद्+यास्+उस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर अद्+या+उस् बना। उस्यपदान्तात् इस सूत्र से पररूप यु+युस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर युयुः रूप सिद्ध होता है।

युयाः –यु धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर यु+सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर यु+स् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ स् बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+स् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+स् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+स् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+स् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर युयाः रूप सिद्ध होता है।

युयातम् –यु धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर यु+थस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ थस् बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+थस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर यु+या+तम् बना।वर्ण सम्मेलन होकर युयातम् रूप सिद्ध होता है।

युयात–यु धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर यु+थ बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ थ बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+थ बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+थ बना। थ के स्थान में त होकर यु+या+त बना।वर्ण सम्मेलन होकर युयात रूप सिद्ध होता है।

युयाम्–यु धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर यु+मि बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ मि बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+मि बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+मि बना। मिप् के स्थान में अम् होकर यु+या+अम् बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर युयाम् रूप सिद्ध होता है।

युयाव– यु धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर यु+वस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ वस् बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+वस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+वस् बना। वस् के सकार का लोप होकर यु+या+व बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर युयाव रूप सिद्ध होता है।

युयाम– यु धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर यु+मस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर यु+यासुट्+ मस् बना। टकार उकार का लोप होकर यु+यास्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर यु+शप्+यास्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर यु+यास्+मस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर यु+या+मस् बना। मस् के सकार का लोप होकर यु+या+म बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर युयाम रूप सिद्ध होता है।

अभ्यास प्रश्न

लघु– उत्तरीय प्रश्न

1–प्रश्न–इस इकाइ में कितने इकाइ पढ़े गये है

2–प्रश्न–इस इकाइ में कौन कौन धातु पढे गये है

3–प्रश्न–अद् धातु का अर्थ क्या होगा

4–प्रश्न यु धातु का अर्थ क्या होगा

बहुल्पीय प्रश्न

1– लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क) – भवति (ख) – भवतः

(ग)– भवन्ति (घ)– अत्सि

2. लृट् लकार उतम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) –अत्स्यामि

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

3. लोट् लकार उतम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) –अदानि

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

4. लोट् लकार उतम पुरुष एकवचन में रुप होता है–

(क)– भविष्यति (ख) – यवानि

(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़न के पश्चात् आप जान चुके है कि धातु रुप की सिद्धि किस पकार हाती है इसकी आवश्यकता संस्कृत में अनुबाद बनाने के लिए किया गया है। इस इकाई मे पाच लकारो में भ् धातु की रुप सिद्वि गई है। 1–लट् लकार 2–लृट् 3–लोट् , विधि लिङ्. । लकार तो दश होते है। लेकिन सामान्य ज्ञान के लिए इन्ही पॉच लकारों का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। इस इकाई में आत्मने पदी , परस्मैपदी तथा उमय पदी धातु कौन से होते है। इन सबका वर्णन सूत्रों के माध्यम से किया गया है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अत्ति	खाता है।	अत्तु	खावे
अत्सि	खाते हो	अद्धि	खाओ
अद्मि	खाता हूँ।	अदानि	खाउ
अत्स्यति	खायेगा	आदत्	खाया
अत्स्यसि	खाओगे	अद्यात्	खाना चाहिए
अत्स्यामि	खाऊंगा		

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

लघु– उत्तरीय प्रश्न

1–उत्तर– इस इकाइ में दो इकाइ में पढे गये है

2–उत्तर –इस इकाइ मे अद् यु धातु पढे गये है

3–उत्तर–अद् धातु का अर्थ खना होगा

4–उत्तर– यु धातु का अर्थ मिलाना होगा

बहुल्पीय प्रश्न

1– (घ)– अत्सि

2. (ख) –अत्स्यामि

3. (ख) –अदानि

4. (ख) – यवानि

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उप ग्रन्थ	लेखक	प्रकाश
लघु सिद्वान्त कौमुदी	वरदराजा चार्य	चौखम्मा संस्कृत भारति वाराणसी
2– वैयाकरण सिद्वान्त कौमुदी	नागेश भटट्	
3– व्याकरण महाभाष्य	पतज्जलि	

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1– लघुसिद्वान्त कौमुदी

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1– अत्ति रूप को सिद्व करे

इकाई –5 सूत्र ,वृति ,अर्थ ,व्याख्या, अस् तथा दुह् धातु की रूप सिद्धि

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 सूत्र ,वृत्ति, अर्थ ,व्याख्या अस् तथा दुह् धातु की रूप सिद्वि

5.4 सांराश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह पाचवी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि व्याकरण शास्त्र में अस् धातु का अर्थ क्या है ? इसमे अस् धातु के अर्थ के विषय में सम्यग् रुप से वर्णन किया गया है

व्याकरण शास्त्र के महत्व को जानते हुए इस इकाई में जानेंगे कि अस् तथा दुह् धातु की रुप सिद्वि किस प्रकार हूई है तथा अस् तथा दुह् धातु आत्मने पदी है कि परस्मैपदी है ? इसका वर्णन सूत्रो के माध्यम से सम्यग् रुप से वर्णन किया गया है ।

इस इकाई के अध्ययन से आप धातु रुपों को सिद्व करते हुए उनको वाक्यों में प्रयोग का सकेंगे।

5.2 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप धातु रूपों को जानते हुए उनको संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करेंगे

- इसमें कितने इकाइ पढे गये है इसके विषय में आप परिचित होंगे ।
- अस् धातु का सिद्धि होगा इसके विषय में परिचित होगे ।
- दुह् धातु का सिद्धि होगा इसके विषय में परिचित होगे ।
- अस् धातु का अर्थ क्या होगा इसके विषय में परिचित होगे ।
- दुह् धातु का अर्थ क्या होगा इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- श्नसोरल्लोपः इस सूत्र के विषय में आप परिचित होंगे।

5.3 सूत्र वृत्ति अर्थ व्याख्या अस् तथा दुह् धातु की रूप सिद्धि

अस्–भुवि

अर्थ – अस् धातु होना अर्थ में प्रयुक्त होती है।

सामान्य नियम–जिस प्रकार अद् धातु से लट् लकार में अत्ति आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहा भी लट् लकार में अस् धातु अस्ति आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है।

अस्ति–अस् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अस्+तिप् बना। पकार का लोप होकर अस्+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+ति बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+ति बना। इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर अस्ति रूप सिद्ध होता है।

स्तः–अस् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अस्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+तस् बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

श्नसोरल्लोपः 6/4/111/

श्नस्य अस्तेश्चाऽतो लोपः सार्वधातुके क्ङिति। स्तः।सन्ति।असि।स्थः।स्थ। अस्मि।स्वः। स्मः।

अर्थ–श्न तथा अस् के अकार का लोप हो जाता है सार्वधातुक कित् ङित् परे हो तो। अस्+तस् यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से तस् ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+तस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रूत्व विसर्ग होकर स्तः रूप सिद्ध होता है।

सन्ति–अस् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अस्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर अस्+अन्ति बना। यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से अन्ति ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर

स्+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर सन्ति रूप सिद्ध होता है।

असि –अस् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अस्+सिप् बना। पकार का लोप होकर अस्+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+सि बना। इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर असि रूप सिद्ध होता है।

स्थ :–अस् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अस्+थस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस् + शप् + थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस् + थस् बना। यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से थस् ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+थस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रूत्व विसर्ग होकर स्थः रूप सिद्ध होता है।

अस्थ –अस् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचनविवक्षा में थ प्रत्यय होकर अस्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+थ बना।

यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से थ ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+थ बना। वर्ण सम्मेलन होकर स्थ रूप सिद्ध होता है।

अस्मि –अस् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अस्+मिप् बना। पकार का लोप होकर अस्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+मि बना।अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+मि बना। इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर अस्मि रूप सिद्ध होता है।

स्वः–अस् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अस्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+वस् बना।

अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस् + वस् बना। यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से वस् ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+वस् बना। वर्ण सम्मेलन तथा सकार को रूत्व विसर्ग होकर स्वः रूप सिद्ध होता है।

स्मः – अस् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अस्+मस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप् +मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यःशपःअस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस् + मस् बना। यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से मस् ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+मस् बना। वर्ण सम्मेलन सकार को रूत्व विसर्ग होकर स्मः रूप सिद्ध होता है।

2–लृट् लकार

सामान्य नियम–जिस प्रकार भू धातु से लृट् लकार में भविष्यति आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहा भी लृट् लकार में अस् धातु से अस् के स्थान में अस्तेर्भूः सूत्र से भू अदेश होकर भविष्यति आदि रूप बनेंगे। रूप सिद्ध करने के लिये भू धातु लृट् लकार के रूपों को देखें।

3–लोट् लकार

सामान्य नियम–जिस प्रकार अद् धातु से लोट् लकार में अत्तु आदि रूप बने है। उसी प्रकार यहा भी लोट् लकार में अस् धातु से अस्तु आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है।

अस्तु–अस् धातु लोट् प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अस्+तिप् बना। पकार का लोप होकर अस्+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+ति बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+ति बना। इसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर अस्ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर अस्तु रूप सिद्ध होता है।

स्ताम्–अस् धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अस्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+तस् बना। इसके बाद सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से तस् ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+तस् बना। तस् के स्थान में ताम् स्+ताम् बना।वर्ण सम्मेलन होकर स्ताम् रूप सिद्ध होता है।

सन्तु–अस् धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अस्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर अस्+अन्ति बना। यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से अन्ति ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर सन्ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर सन्तु रूप सिद्ध होता है।

एधि–अस् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अस्+सिप् बना। पकार का लोप होकर अस्+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+सि बना। सेर्ह्यपिच्च सूत्र से सि के स्थान में हि आदेश होकर अस्+हि बना।इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है–

घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च/6/4/119/

घोरतेश्च एत्वं स्याद्हौ परे अभ्यासलोपश्च।एत्वस्यासिद्धत्वातद् हेर्धिः।श्नसोरल्लोपः इत्यल्लोपः–एधि

अर्थ–हि परे होने पर घुसंज्ञक और अस् धातु के स्थान पर एकार आदेश हो जाता हैतथा अभ्यास का लोप भी हो जाता है। एत्व के असिद्ध होने से हि के स्थान पर धि आदेश हो जायेगा।

अस्+हि यहा पर हि पर मे विद्यमान है अतः इस सूत्र से अस्के अन्त्य अल् सकार को एकार होकर अ+ए+हि बना।अब यहा एत्व आभीयकार्य की दृष्टि मेंअसिद्ध है। अतः हुझल्भ्यो हेर्धि इस सूत्र को यहा एत्व दिखायी नही देता किन्तु सकार ही दिखता है इस प्रकार झल् सकार से परे उस सूत्र द्वारा हि को धि आदेश होकर अ+ए+धि बना। अब हि को अपित् होने के कारण श्नसोरल्लोपः इस सूत्र से अकार का लोप होकर एधि रूप सिद्ध होता है।

स्तम्–अस् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अस्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+थस् बना। यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से थस् ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+थस् बना।थस् के स्थान में तम् होकर स्+ तम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर स्तम् रूप सिद्ध होता है।

स्त–अस् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अस्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+थ बना।

यहा पर सार्वधातुकमपित् इस सूत्र से थ ङित् है। अतः अस् धातु के बाद ङित् परे होने के कारण अस् के अकार का लोप होकर स्+थ बना। थ के स्थान मे त तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्त रूप सिद्ध होता है।

असानि–अस् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अस्+मिप् बना। पकार का लोप होकर अस्+मि बना।मेर्निः सूत्र से मि के स्थान में नि अदेश होकर अस्+नि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+नि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+नि बना। आडुत्तमस्य पिच्च

इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर अस्+आ+नि बना। यहा पित् होने से अकार का लोप न होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर आसानि रूप सिद्ध होता है।

असाव–अस् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अस्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+वस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर अस्+आ+वस् बना। यहा पित् होने से अकार का लोप न होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर असावस् बना। सकार का लोप होकर आसाव रूप सिद्ध होता है।

असाम–अस् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अस्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+मस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर अस्+आ+मस् बना। यहा पित् होने से अकार का लोप न होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर असामस् बना। सकार का लोप होकर असाम रूप सिद्ध होता है।

4–लङ्लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु लङ् लकार में अभवत् आदि रूपबने हैं। उसी प्रकार यहा भी अस् धातु से आसीत् आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

आसीत्–अस् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष एकचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अस्+तिप् बना।पकार इत्संज्ञा होकर अस्+ति बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+ति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अस्+शप्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+त् बना। अब अस्तिसिचोऽपृक्ते इस सूत्र से अपृक्त तकार को ईट् का आगम होकर तथा टकार का लोप होकर अस्+ ई+त् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अस्+ई+त् बना। टकार का लोप होकर आ+अस्+ई+त् बना। आटश्च सूत्र से वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आसीत् रूप सिद्ध होता है।

आस्ताम्–अद् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष द्विवचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अस्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+तस् बना। श्नसोरल्लोपःसूत्र से अस् के अकार का लोप हाकर स्+तस् बना। अब यह स् अजादि नही रहा फिर भी असिद्धवदत्राभात् सूत्र से अल्लोप के असिद्ध होने से आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+तस् बना। टकार का लोप होकर आ+स्+तस् बना। तस् के स्थान में ताम् होकर आ+स्+ताम् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि न होकर आस्ताम् रूप सिद्ध होता है।

आसन्– ़अद् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अस्+झि ़ बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र आदन से शप् लुक् होकर अस्+झि बना। श्नसोरल्लोपःसूत्र से अस् के अकार का लोप हाकर स्+तस् बना। अब यह स् अजादि नही रहा फिर भी असिद्धवदत्राभात् सूत्र से अल्लोप के असिद्ध होने से आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+झि बना। टकार का लोप होकर आ+स्+झि बना। झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर आ+स्+अन्ति बना। इकार तथा तकार का लोप होकर आ+स्+अन् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि न तथा वर्ण सम्मेलन होकर आसन् रूप सिद्ध होता है।

आसीः–अस् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष एकचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अस्+सिप् बना।पकार इत्संज्ञा होकर अस्+सि बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अस्+शप्+स् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+त् बना। अब अस्तिसिचोऽपृक्ते

इस सूत्र से अपृक्त तकार को ईट् का आगम होकर तथा टकार का लोप होकर अस्+ ई+स् बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अस्+ई+स् बना। टकार का लोप होकर आ+अस्+ई+स् बना। आटश्च सूत्र से वृद्धि तथा सकार को रूत्व विसर्ग होकर आसीः रूप सिद्ध होता है।

आस्तम्– अस् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अस्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+थस् बना। इसके बाद श्नसोरल्लोपःसूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+थस् बना। अब यह स् अजादि नही रहा फिर भी असिद्धवदत्राभात् सूत्र से अल्लोप के असिद्ध होने से आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+थस् बना। आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+थस् बना। टकार का लोप होकर आ+स्+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर आ+स्+तम् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि न होकर आस्तम् रूप सिद्ध होता है।

आस्त –अस् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अस्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+थ बना। इसके बाद श्नसोरल्लोपःसूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+थ बना। अब यह स् अजादि नही रहा फिर भी असिद्धवदत्राभात् सूत्र से अल्लोप के असिद्ध होने से आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+थ बना। आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+थ बना। टकार का लोप होकर आ+स्+थ बना। उसके बाद थ के स्थान में त होकर आ+स्+त बना। तथा आटश्च सूत्र से वृद्धि न होकर आस्त रूप सिद्ध होता है।

आसम्–अस् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अस्+मिप् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+मि बना। इसके बाद आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+अस्+मि बना। टकार का लोप होकर आ+अस्+मि बना। मिप् के स्थान में अम् होकर आ+अस्+अम् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि तथा वर्ण सम्मेलन होकर आसम् रूप सिद्ध होता है।

आस्व– अद् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अस्+वस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+वस् बना। इसके बाद श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+वस् बना। अब यह स् अजादि नही रहा फिर भी असिद्धवदत्राभात् सूत्र से अल्लोप के असिद्ध होने से आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+वस् बना। आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+वस् बना। टकार का लोप होकर आ+स्+वस् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि न तथा वर्ण सम्मेलन होकर आस्वस् बना। सकार का लोप होकर आस्व रूप सिद्ध होता है।

आस्म–अस् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अस्+मस् बना।।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+मस् बना। इसके बाद श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+मस् बना। अब यह स् अजादि नही रहा फिर भी असिद्धवदत्राभात् सूत्र से अल्लोप के असिद्ध होने से आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+मस् बना। आडजादीनाम् सूत्र से आट् का आगम होकर आट्+स्+मस् बना। टकार का लोप होकर आ+स्+मस् बना। आटश्च सूत्र वृद्धि न तथा वर्ण सम्मेलन होकर आस्मस् बना। सकार का लोप होकर आस्म रूप सिद्ध होता है।

5–विधि लिङ् लकार

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से विधि लिङ् लकार में

भवेत् आदि रूप बने हैं। उसी प्रकार यहा भी अस् धातु से विधि लिङ् लकार में स्यात् आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है–

स्यात्–अस् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर अस्+तिप् बना। इकार पकार का लोप होकर अस्+त् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ त् बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+त् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+त् बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने अस् से परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+त् बना। लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+त् बना। वर्ण सम्मेलन होकर स्यात् रूप सिद्ध होता है।

स्याताम्–अस् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर अस्+तस् बना। ।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ तस् बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+तस् बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने अस् से परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+तस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+तस् बना।तस् के स्थान ताम् होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्याताम् रूप सिद्ध होता है।

स्युः –अस् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर अस्+झि बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ झि बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+झि बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+झि बना। झेर्जुस् सूत्र से झि के स्थान में जुस् तथा जकार का लोप होकर अस्+यास्+उस् बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+उस् बना। लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+उस् बना। उस्यपदान्तात् इस सूत्र से पररूप होकर स्+युस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्युः रूप सिद्ध होता है।

स्याः –अस् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर अस्+सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर अस्+स् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+स् बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+स् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+स् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+स् बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+स् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+स् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्याः रूप सिद्ध होता है।

स्यातम् –अस् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर अस्+थस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ थस् बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+थस् बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+थस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र

यास् के सकार का लोप होकर स्+या+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर स्+या+तम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर स्यातम् रूप सिद्ध होता है।

स्यात–अस् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर अस्+थ बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ थ बना। टकार उकार का लोप होकर अद्+यास्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर अस्+यास्+थ बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+थ बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+थ बना। थ के स्थान में त होकर स्+या+त बना। वर्ण सम्मेलन होकर स्यात रूप सिद्ध होता है।

स्याम्–अस् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर अस्+मि बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ मि बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+मि बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+मि बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+मि बना। मिप् के स्थान में अम् होकर स्+या+अम् बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्याम् रूप सिद्ध होता है।

स्याव–अस् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर अस्+वस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ वस् बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+वस् बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+वस् बना। लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+वस् बना। वस् के सकार का लोप होकर स्+या+व बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्याव रूप सिद्ध होता है।

स्याम–अस् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर अस्+मस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर अस्+यासुट्+ मस् बना। टकार उकार का लोप होकर अस्+यास्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर अस्+शप्+यास्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर अस्+यास्+मस् बना। बना। अब यहा यासुट् के ङित् होने से उसके परे होने पर श्नसोरल्लोपः सूत्र से अस् के अकार का लोप होकर स्+यास्+मस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर स्+या+मस् बना। मस् के सकार का लोप होकर स्+या+म बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर स्याम रूप सिद्ध होता है।

1–लट्लकार प्रपूरणे

अर्थ–दुह् धातु दोहना अर्थ में प्रयुक्त होती है।

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लट् लकार में भवति आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लट् लकार में दुह धातु से दोग्धि आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है। यह धातु उभय पदी है किन्तु केवल परस्मैपद में ही रूप सिद्ध किये जा रहे हैं।

दोग्धि–दुह् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर दुह्+तिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+ति बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+ति

बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+ति बन। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+ति बना। झषस्तथोः0 सूत्र से ति के तकार को धकार होकर दोघ्+धि बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दोग्धि रूप सिद्ध होता है।

दुग्धः—दुह् धातु लट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर दुह्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+तस् बना। अपित् होने कारण पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+तस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्+तस् बना। झषस्तथोः0 सूत्र से तस् के तकार को धकार होकर दुघ्+धस् बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्धस् सकार को रूत्व विसर्ग होकर दुग्धः रूप सिद्ध होता है।

दुहन्ति —दुह् धातु लट् लकार प्रथम पुरुष बहु वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर दुह्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+झि बना। इससे परे झि पित् न होने के कारण दुह् उकार को गुण न होकर दुह्+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर दुह्+अन्ति बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुहन्ति रूप सिद्ध होता है।

धोक्षि—दुह् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर दुह्+सिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+सि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+सि बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+सि बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+सि बना। आदेशप्रत्यययोः सूत्र से सि के सकार को षकार होकर धोघ्+षि बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+षि बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्षि रूप सिद्ध होता है।

दुग्धः—दुह् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+थस् बना। अपित् होने कारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+थस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्+थस् बना। झषस्तथोः0 सूत्र से थस् के थकार को धकार होकर दुघ्+धस् बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्धस् सकार को रूत्व विसर्ग होकर दुग्धः रूप सिद्ध होता है।

दुग्ध—दुह् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर दुह+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+थ बना। अपित् होने कारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+थ बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्+थ बना। झषस्तथोः0 सूत्र से` थकार को धकार होकर दुघ्+ध बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्ध रूप सिद्ध होता है।

दोह्मि—दुह् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर दुह्+मिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+मि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+मि बना। वर्ण सम्मेलन होकर दोह्मि रूप सिद्ध होता है।

दुग्धः—दुह् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः

दुह्वः —दुह् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर दुह+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+वस् बना। अपित् होने कारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+वस् बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्वस् बना। सकार को रूत्व विसर्ग होकर दुह्वः रूप सिद्ध होता है।

दुह्मः —

दुह् धातु लट् लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर दुह+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+मस् बना। अपित् होने कारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+मस् बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्मस् बना। सकार को रूत्व विसर्ग होकर दुह्मः रूप सिद्ध होता है।

2—लृट् लकार

सामान्य नियम— जिस प्रकार भू धातु से लृट् लकार में भविष्यति आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लृट् लकार में दुह् धातु से धोक्ष्यति आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है।

धोक्ष्यति—दुह् धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर दुह्+तिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+ति बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+ति बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+ति बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+ति बना। आदेशप्रत्यययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+ति बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+ति बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्यति रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यतः—दुह् धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर दुह्+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+तस् बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+तस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+तस् बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+तस् बना। आदेशप्रत्यययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+तस् बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+तस् बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्यतस् बना तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर धोक्ष्यतः रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यन्ति—दुह् धातु लृट् लकार प्रथम पुरूष बहु वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर दुह्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+झि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+झि बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+झि बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+झि बना। आदेशप्रत्यययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+झि बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+झि बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्य+झि बना। झोऽन्तः सूत्र से झि के स्थान में अन्ति आदेश तथा अतो गुणे सूत्र से पररूप होकर धोक्ष्यन्ति रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यसि–दुह् धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर दुह्+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+सि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+सि बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+सि बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+सि बना। आदेशप्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+सि बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+सि बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्यसि बना। रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यथः–दुह् धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+थस् बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+थस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+थस् बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+थस् बना। आदेशप्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+थस् बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+थस् बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्यथस् बना तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर धोक्ष्यथः रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यथ–दुह् धातु लृट् लकार मध्यम पुरूष बहु वचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर दुह्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+थ बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+थ बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+थ बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+थ बना। आदेशप्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+थ बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+थ बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्यथ रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यामि–दुह् धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर दुह्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+मि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+मि बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+मि बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+मि बना। आदेशप्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+मि बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+मि बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्य+मि बना। अतो दीर्घो यञि इस सूत्र दीर्घ होकर धोक्ष्यामि रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यावः–दुह् धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर दुह्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+वस् बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+वस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+वस् बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष्0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+वस् बना। आदेशप्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+वस् बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+वस् बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्य+वस् बना। अतो दीर्घो यञि इस सूत्र दीर्घ तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर धोक्ष्यावः रूप सिद्ध होता है।

धोक्ष्यामः–दुह् धातु लृट् लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर दुह्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय प्राप्त है। उसको बाधकर स्यतासी लृलुटोः इस सूत्र से स्य प्रत्यय होकर दुह्+स्य+मस् बना। पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+स्य+मस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+स्य+मस् बना। यहा सकार परे है अतः एकाचो बशो भष0 इस सूत्र से दकार को धकार होकर धोघ्+स्य+मस् बना। आदेशप्रत्ययोः सूत्र से स्य के सकार को षकार होकर धोघ्+ष्य+मस् बना। खरि च इस सूत्र से घकार को ककार होकर धोक्+ष्य+मस् बना। क्+ष् =क्ष् होकर धोक्ष्य+मस् बना। अतो दीर्घो यञि इस सूत्र दीर्घ तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर धोक्ष्यामः रूप सिद्ध होता है।

4–लोट् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु से लोट् लकार में भवतु आदि रूप बने हैं । उसी प्रकार यहा भी लोट् लकार में दुह् धातु से दोग्धु आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है। यह धातु उभय पदी है किन्तु केवल परस्मैपद में ही रूप सिद्ध किये जा रहे हैं।

दोग्धु–दुह् धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर दुह्+तिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+ति बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+ति बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+ति बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+ति बन। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दोघ्+ति बना। झषस्तथोः0 सूत्र से ति के तकार को धकार होकर दोघ्+धि बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर एरुः सूत्र से इकार को उकार होकर दोग्धु रूप सिद्ध होता है।

दुग्धाम्–दुह् धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर दुह+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+तस् बना। अपित् होने कारण पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+तस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्+तस् बना।तस् के स्थान में ताम् होकर दुघ+ताम् बना। झषस्तथोः0 सूत्र से ताम् के तकार को धकार होकर दुघ्+धाम् बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्धाम् रूप सिद्ध होता है।

दुहन्तु –दुह् धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष बहु वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर दुह्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+झि बना। इससे परे झि पित् न होने के कारण दुह् उकार को गुण न होकर दुह्+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर दुह्+अन्ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार तथा वर्ण सम्मेलन होकर दुहन्तु रूप सिद्ध होता है।

दुग्धि–दुह् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर दुह्+सिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+सि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+सि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+सि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण का निषेध होकर दुह्+सि बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्+सि बना। इसके बाद सेर्ह्यपिच्च सूत्र से सि के स्थान में हि होकर दुघ+हि बना। **हु–झल्भ्यो हेर्धिः** इस सूत्र से हि को धि आदेश होकर तथा झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्धि रूप सिद्ध होता है।

दुग्धम्–दुह् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थस् बना।

अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+थस् बना। अपित् होने कारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+थस् बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्+थस् बना। थस् के स्थान में तम् आदेश तथा झषस्तथोः0 सूत्र से तम् के तकार को धकार होकर दुघ्+धम् बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्धम् रूप सिद्ध होता है।

दुग्ध–दुह् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर दुह+थ बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+थ बना। अपित् होनेकारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+थ बना। इसके बाद झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर दुघ्थ बना। थ के स्थान में त तथा झषस्तथोः0 सूत्र से तकार को धकार होकर दुघ् ध बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर दुग्ध रूप सिद्ध होता है।

दोहानि–दुह् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर दुह्+मिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+मि बना। मेर्निः सूत्र से मि के स्थान में नि अदेश होकर दुह्+नि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+नि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+नि बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर दुह्+आ+नि बना। यहा पित् होने से गुण तथा वर्ण सम्मेलन होकर दोहानि रूप सिद्ध होता है।

दोहाव –दुह् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर दुह्+वस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+वस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर दुह्+आ+वस् बना। यहा पित् होने से गुण तथा सकार का लोप होकर दोहाव रूप सिद्ध होता है।

दोहाम –दुह् धातु लोट् लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर दुह्+मस् बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+मस् बना। आडुत्तमस्य पिच्च इस सूत्र से आट् का आगम तथा टकार का लोप होकर दुह्+आ+मस् बना। यहा पित् होने से गुण तथा सकार का लोप होकर दोहाम रूप सिद्ध होता है।

4–लङ् लकार

सामान्य नियम– जिस प्रकार भू धातु लङ् लकार में अभवत् आदि रूपबने हैं। उसी प्रकार यहा भी दुह् धातु से अधोक् आदि रूप बनेंगे। कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

अधोक् – दुह् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष एकचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर दुह्+तिप् बना।पकार इत्संज्ञा होकर दुह्+ति बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+ति बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर दुह्+शप्+त् बना।गुण तथा अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दोह्+त् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+दोह्+त् बना। टकार का लोप होकर अदोह् +त् बना। अब यहा पर अपृक्त तकार का लोप तथा पदन्त में हकार को घकार होकर धातु के आदि दकार को धकार जश्त्व चर्त्व करने से अधोक् रूप सिद्ध होता है

अदुग्धाम्–दुह् धातु लङ्लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर दुह+तस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+तस् बना। अपित् होने कारण पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+तस् बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+दुह्+तस् बना। टकार का लोप तथा झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार

को घकार होकर अदुघ्+तस् बना। तस् के स्थान में ताम् होकर अदुघ+ताम् बना। झषस्तथोः0 सूत्र से ताम् के तकार को धकार होकर अदुघ्+धाम् बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर अदुग्धाम् रूप सिद्ध होता है।

अदुहन् –दुह् धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष बहु वचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर दुह्+झि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+झि बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+दुह्+तस् बना। इससे परे झि पित् न होने के कारण दुह् उकार को गुण न होकर दुह्+झि बना। झि के स्थान में अन्ति आदेश होकर दुह्+अन्ति बना। एरुः सूत्र से इकार को उकार तथा वर्ण सम्मेलन होकर दुहन्तु रूप सिद्ध होता है।

अधोक् – दुह् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष एकचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर दुह्+सिप् बना।पकार इत्संज्ञा होकर दुह्+सि बना।कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर दुह्+शप्+स् बना।गुण तथा अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दोह्+स् बना। इसके बाद लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+दोह्+स् बना। टकार का लोप होकर अदोह् +स् बना। अब यहा पर अपृक्त तकार का लोप तथा पदान्त में हकार को घकार धातु के आदि दकार को धकार जश्त्व चर्त्व करने से रूप सिद्ध होता है

अदुग्धाम्– दुह् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थस् बना।अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+थस् बना। अपित् होने कारण पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+थस् बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+दुह्+थस् बना।टकार का लोप तथा झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर अदुघ्+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर अदुघ+तम् बना। झषस्तथोः0 सूत्र से तम् के तकार को धकार होकर अदुघ्+धम् बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर अदुग्धम् रूप सिद्ध होता है।

अदुग्ध–दुह् धातु लङ्लकार मध्यम पुरूष बहु वचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर दुह+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+थ बना। अपित् होने कारण पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+थ बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अट्+दुह्+थ बना। टकार का लोप तथा झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में होने के कारण दादेधातोर्घः सूत्र से हकार को घकार होकर अदुघ्+थ बना। थ के स्थान में त होकर अदुघ+त बना। झषस्तथोः0 सूत्र से त के तकार को धकार होकर अदुघ्+ध बना। झलां जश् झशि इस सूत्र से घकार को गकार होकर अदुग्ध रूप सिद्ध होता है।

अदोहम्–दुह् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष एक वचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर दुह्+मिप् बना। पकार का लोप होकर दुह्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+मि बना। पुगन्त लघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण होकर दोह्+मि बना। बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अ+दोह्+मि बना। मि के स्थान में अम् आदेश होकर अदोहम् रूप सिद्ध होता है।

दुग्धः–दुह् धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः अदुह्वः –दुह् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर दुह+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+वस् बना। अपित् होने कारण

पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+वस् बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अ+दुह्+वस् बना। दुग्धः–दुह धातु लट् लकार मध्यम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+थस् बना।वर्ण सम्मेलन होकर दु सकार को रूत्व विसर्ग होकर अदुह्वः रूप सिद्ध होता है।

अदुह्मः –दुह् धातु लङ्लकार उत्तम पुरूष बहु वचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर दुह+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+मस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् का लुक् होकर दुह्+मस् बना। अपित् होने कारण पुगन्तलघूपधस्य च इस सूत्र से लघूपध गुण न होकर दुह्+मस् बना। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इस सूत्र से अट् का आगम होकर अ+दुह्+मस् वर्ण सम्मेलन होकर अदुह्मस् बना। सकार को रूत्व विसर्ग होकर अदुह्मः रूप सिद्ध होता है।

5–विधि लिङ् लकार

सामान्य नियम –जिस प्रकार भू धातु से विधि लिङ् लकार में भवेत् आदि रूप बने है उसी प्रकार यहा भी दुह् धातु से विधि लिङ् लकार में दुह्यात् आदि रूप बनेंगे कुछ विशेष अन्तर होगा जो सिद्ध करके बताया जा रहा है

दुह्यात्– दुह् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष एक वचन विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर दुह्+तिप् बना। इकार पकार का लोप होकर दुह्+त् बना।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ त् बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+त् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+त् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+त् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+त् बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्यात् रूप सिद्ध होता है।

दुह्याताम्– दुह् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष द्वि वचन विवक्षा में तस् प्रत्यय होकर दुह्+तस् बना। ।यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ तस् बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+तस् बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+तस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+तस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+तस् बना।तस् के स्थान ताम् होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर दुह्याताम् रूप सिद्ध होता है।

दुह्युः – दुह् धातु विधिलिङ् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन विवक्षा में झि प्रत्यय होकर दुह्+झि बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ झि बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+झि बन। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+झि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+ झि बना।झेर्जुस् सूत्र से झि के स्थान में जुस् तथा जकार का लोप होकर दुह्+यास्+उस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+उस् बना। उस्यपदान्तात् इस सूत्र से पररूप दुह्+युस् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर दुह्युः रूप सिद्ध होता है।

दुह्याः – दुह् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष एक वचन विवक्षा में सिप् प्रत्यय होकर दुह्+सि बना। इतश्च सूत्र से इकार का लोप होकर दुह्+स् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दह्+यासुट्+ स् बना।

टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+स् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+स् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+स् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+स् बना। सकार को रुत्व विसर्ग तथा वर्ण सम्मेलन होकर दुह्याः रूप सिद्ध होता है।

दुह्यातम् – दुह् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष द्विवचन विवक्षा में थस् प्रत्यय होकर दुह्+थस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ थस् बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+थस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+थस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+थस् बना।यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+थस् बना। थस् के स्थान में तम् होकर दुह्+या+तम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्यातम् रूप सिद्ध होता है।

दुह्यात– दुह् धातु विधिलिङ् लकार मध्यम पुरूष बहुवचन विवक्षा में थ प्रत्यय होकर दुह्+थ बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ थ बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+थ बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+थ बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+थ बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+थ बना। थ के स्थान में त होकर दुह्+या+त बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्यात रूप सिद्ध होता है।

दुह्याम्– दुह् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष एकवचन विवक्षा में मिप् प्रत्यय होकर दुह्+मि बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ मि बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+मि बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+मि बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+मि बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+मि बना। मिप् के स्थान में अम् होकर दुह्+या+अम् बना। दीर्घ तथा वर्ण सम्मेलन होकर दुह्याम् रूप सिद्ध होता है।

दुह्याव– दुह् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष द्विवचन विवक्षा में वस् प्रत्यय होकर दुह्+वस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ वस् बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+वस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+वस् बना। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+वस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+वस् बना। वस् के सकार का लोप होकर दुह्+या+व बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्याव रूप सिद्ध होता है।

दुह्याम– दुह् धातु विधिलिङ् लकार उत्तम पुरूष बहुवचन विवक्षा में मस् प्रत्यय होकर दुह्+मस् बना। यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च इस सूत्र से यासुट् का आगम होकर दुह्+यासुट्+ मस् बना। टकार उकार का लोप होकर दुह्+यास्+मस् बना। कर्तरि शप् सूत्र से शप् प्रत्यय होकर दुह्+शप्+यास्+मस् बना।अदिप्रभृतिभ्यः शपः इस सूत्र से शप् लुक् होकर दुह्+यास्+मस् बना। यहा लिङ् लकार सार्वधातुक होने के कारण लिङः सलोपोऽनन्तस्य इस सूत्र यास् के सकार का लोप होकर दुह्+या+मस् बना। मस् के सकार का लोप होकर दुह्+या+म बना। वर्ण सम्मेलन होकर दुह्याम रूप सिद्ध होता है।

अभ्यास प्रश्न

2–प्रश्न–इस इकाइ में कौन कौन सी धातुएं पढी गयी हैं

3–प्रश्न–अद् धातु का अर्थ क्या होगा
4–प्रश्न दुह् धातु का अर्थ क्या होगा

ब्हुविल्पीय प्रश्न

1– लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में रुप होता है–
(क) – भवति (ख) – भवतः
(ग)– भवन्ति (घ)– असि

2. लृट् लकार उतम पुरुष एकवचन में रुप होता है–
(क)– भविष्यति (ख) –भविष्यामि
(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

3. लोट् लकार उतम पुरुष एकवचन में रुप होता है–
(क)– भविष्यति (ख) –आसानि
(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

4. लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में रुप होता है–
(क)– भविष्यति (ख) – दोहानि
(ख)– भविष्यावः (घ) – भवसि

5.4सारांश

इस इकाई को पढ़न के पश्चात् आप जान चुके है कि धातु रुप की सिद्धि किस पकार हाती है इसकी आवश्यकता संस्कृत में अनुबाद बनाने के लिए किया गया है। इस इकाई मे पाच लकारो में भ् धातु की रुप सिद्वि गई है। 1–लट् लकार 2–लृट् 3–लोट् विधि लिङ्. । लकार तो दश होते है। लेकिन सामान्य ज्ञान के लिए इन्ही पॉच लकारों का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। इस इकाई में आत्मने पदी , परस्मैपदी तथा उमय पदी धातु कौन से होते है। इन सबका वर्णन सूत्रों के माध्यम से किया गया है।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अस्ति	है।	अस्तु	होवे
असि	हो	एद्धि	होओ
अस्मि	हूँ।	असानि	होउ
भविष्यति	होगा	आस्त्	हुआ
भविष्यसि	होओगे	स्यात्	होना चाहिए
भविष्यामि	होऊंगा		

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर– इस इकाइ में दो इकाइ में पढे गये है
उत्तर –इस इकाइ मे अस् दुह् धातु पढे गये है
उत्तर–अस् धातु का अर्थ होना होगा
उत्तर– दुह् धातु का अर्थ दुहना होगा

ब्हुविल्पीय प्रश्न

1– (घ)– असि
2. (ख)– भविष्यावः
3. (ख) –आसानि
4. (ख) – दोहानि

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उप ग्रन्थ	लेखक	प्रकाश

लघु सिद्वान्त कौमुदी वरदराजाचार्य चौखम्मा संस्कृत भारती वाराणसी
2– वैयाकरण सिद्वान्त कौमुदी नागेश भटट्
3–व्याकरणमहाभाष्यपतज्जलि

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1– लघुसिद्वान्त कौमुदी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1– दोग्धि रूप को सिद्ध करें ।
2– इस इकाई के आधार पर किन्हीं तीन प्रयोगों को सिद्ध करें ।

खण्ड 3 समास प्रकरण

इकाई 1. समर्थ: पदविधि: सूत्र से तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् तक उहाहरण सहित व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 समर्थ**:** पदविधि**:** से तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

कारक एवं समास प्रकरण के प्रश्न पत्र में खण्ड **3** - समास प्रकरण के वर्णन की यह प्रथम इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने कारक तथा कुछ प्रक्रियात्मक व्याकरण का सम्यक् अध्ययन किया है।

अनेक पदों को एक बनाकर उनके पूर्ण अर्थ को जानने की प्रक्रिया को संस्कृत व्याकरण को समास कहते हैं। समास प्रकरण के अन्तर्गत उपसर्गों प्रत्ययों तथा धातुओं के साथ विभक्ति का अर्थ बताने वाले पदों का विस्तार से परिचय प्राप्त किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में यही सन्दर्भ में आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप केवल समास का अध्ययन कर अव्ययीभाव समास के कुछ सूत्रों एवं उनसे सम्बन्धित पदों की सिद्धि का ज्ञान कर उनमें बनने वाले अन्य प्रयोगों के सम्बन्ध बतायेगें ।

1.2 उद्देश्य -

केवल समास तथा अव्ययीभाव समास के वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि –

1. समास का अर्थ एवं उसकी परिभाषा क्या है ।
2. समासों में केवल समास की उपयोगिता क्या है।
3. सूत्र और वार्त्तिक किसे कहते हैं।
4. उपसर्गों के योग से कौन सा समास बनता है।
5. विभक्ति के अर्थ में कौन सा समास होता है।
6. अव्यय आदि 16 अर्थो में किस समास का उपयोग किया जाता है।

1.3 समर्थ: पदविधि: से तृतीय सप्तम्योर्बहुलम् तक सूत्र की व्याख्या

समास का अध्ययन करने के लिए सबसे पहले उसकी अवधारणा एवं उसके अर्थ को यहॉं ठीक से समझ लेना अत्यन्त अनिवार्य प्रतीत होता है। ये समास सन्धि से पृथक् होते हैं। सन्धि के अन्तर्गत वर्णो की क्रिया का अध्ययन किया जाता है। किन्तु समास के अन्तर्गत दो शब्दों के आपस में मिलकर नवीन शब्द की रचना करने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

समास अर्थ एवं प्रकार –

'सम्' (भली - भॉंति) उपसर्ग लगाकर अस् (फेंकना) धातु से **घञ्** प्रत्यय होकर समास शब्द बनता है। अर्थात् दो या कहीं पर दो से अधिक पदों को इस प्रकार एक साथ रख देना कि उनके पूर्ण अर्थ भी विदित हो और उनके आकार में भी कुछ कमी आ जाय। अत: इसका प्राय: वही अर्थ होगा जो संक्षेप शब्द का। इसीलिए **समसनम् समास:** , **अनेकपदानाम् एकपदीभवनं समास**:, समास शब्द का यह अर्थ ग्रहण होता है। जैसे-

राज्ञ: पुरुष: राजपुरुष: - राजा का पुरुष।

इस प्रकार दो या दो से अधिक पदों को एक पद के रूप में रखना समास कहलाता है-

एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थानेक पद समूह:समास:।

समास के पॉच भेद हैं-

1. केवल समास
2. अव्ययी भाव समास
3. तत्पुरुष समास
4. बहुव्रीहि समास
5. द्वन्द्व समास

1. **समास: पंचधा । तत्र समसनं समास: । स च विशेष संज्ञा विनिर्मुक्त: केवल समास: प्रथम:। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानो अव्यीभावो द्वितीय: । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानो तत्पुरुषस्तृतीय: तत्पुरुष भेद: कर्मधारय: । कर्मधारय भेदो द्विगु: । प्रायेण अन्यपदार्थ प्रधानो बहुब्रीहिश्चतुर्थ: ।प्रायेण उभय पदार्थप्रधानो द्वन्द्व पंचम: ।**

1. **केवल समास**- जिस समास को कोई विशेष नाम न दिया गया हो उसे केवल समास कहते है- विशेष संज्ञा विनिर्मुक्त: केवल समास: ।

2. **अव्ययीभाव** – जिस समास में प्राय: पूर्व पद का अर्थ प्रधान होता है उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं यह समास का द्वितीय भेद है- प्रायेणपूर्वपदार्थप्रधानो अव्ययीभाव:।

3. **तत्पुरुष**- जिस समास में प्राय: उत्तर पद (बाद वाला) अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास कहलाता है- प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष: ।।

कर्मधारय तत्पुरुष समास का ही एक भेद कर्मधारय है। जहॉ विशेष्य और विशेषण का समास बताया गया है। उसे कर्मधारय समास कहते है।

द्विगु जहॉ विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु समास कहते है।

4.**बहुव्रीहि**- जिस समास का अन्य अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि कहलाता है। इसका अर्थ है– बहुव्रीहि: (धान्यं) यस्य अस्ति स: बहुव्रीहि:अर्थात् जिसके पास बहुत चावल हों। बहु तथा व्रीहि में प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण है और दोनों मिलकर किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इसका नाम बहुव्रीहि है।

5. द्वन्द्व समास – जिस समास में उभय अर्थात् दोनों पदों के अर्थ प्रधान हो उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व: पंचम:।

इन सभी समासों का सूत्र वृत्ति उदाहरण सहित व्याख्या किया जा रहा है।

1. केवल समास

907 . **समर्थ: पदविधि:** / 2 / 1 / 1

पदसम्बन्धी यो विधि: स समर्थाश्रितो बोध्य:।

सूत्र का शब्दार्थ है कि पदविधि समर्थ होती है किन्तु समर्थ का अभिप्राय है- समर्थपदाश्रित । अत: भावार्थ यह होगा पदविधि समर्थपदाश्रित होती है। सामर्थ्य दो प्रकार का होता है-

1. व्यापेक्षा 2. एकार्थीभाव।

1.व्यापेक्षा - आकांक्षा के कारण पदों के परस्पर सम्बन्ध को व्यापेक्षा कहते है तथा जहॉं पर अलग-अलग पदार्थो की एक साथ उपस्थिति होती है।

2. एकार्थीभाव- जहॉं पदार्थों की एक साथ उपस्थिति होती है अलग अलग नही वहॉं पर एकार्थीभाव समार्थ्य होता है। अत: जहॉं पर पदों में सामर्थ्य होता है वही समास आदि पदविषयक विधि होती है। जहॉं पदों में सामर्थ्य नहीं होता वहॉं पदविषयक विधि नहीं होती है। पदविधि होने से समास भी उन्हीं पदों का होगा जिनका परस्पर सामर्थ्य होगा।

जैसे- 'चतुरस्य राज्ञ: पुरुष:' (चतुर राजा का पुरूष) में 'राज्ञ:' और 'पुरुष' का समास नहीं होता। यहॉं 'राज्ञ:' का 'चतुरस्य से भी हैं अत: उसके प्रति साकांक्ष होने के कारण 'राज्ञ:' और 'पुरुष' में परस्पर सामर्थ्य नहीं है। सामर्थ्य न होने से उनका समास भी नहीं होता है। इस प्रकार परस्पर सामर्थ्य वाले पदों का ही विधान होता है- इसे ध्यान में रखना चाहिए।

908 . **प्रॉक्कडारात् समास**: /2/1/3

कडारा: कर्मधारये इत्यत: प्राक् समास इत्यधिक्रियते।

सूत्र का शब्दार्थ है (कडारात्) कडार से पहले तक समास होता है। कडार शब्द का प्रयोग 'कडारा: कर्मधारये' 2/2/38 सूत्र में मिलता है और उसके पहले 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' 2/2/37 सूत्र आता है। वहीं तक इस सूत्र का अधिकार है अत: भावार्थ होगा कि 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु'तक सभी सूत्र समास का विधान करते हैं।

909 . **सह सुपा** 2/1/4/

सुप् सुपा सह वा समस्यते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। परार्थाऽभिधानं वृत्ति:।

सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है। सुप् सुपा सह का शाब्दिक अर्थ है सुप् का सुप् के साथ समास होता है किन्तु 'प्रत्ययग्रहणे तदन्त ग्रहण' परिभाषा के अनुसार सुप् से सुबन्त का ग्रहण होगा।

समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। समास होने के बाद प्रातिपदिक संज्ञा होगी। तब सुप् विभक्ति प्रत्ययों का 'सुपो धातु प्रातिपदिकयों:' सूत्र से लोप हो जाता है।

परार्थाऽभिधानं वृत्ति: परार्थबोधन कराने को वृत्ति कहते हैं। सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार ये वृत्तियॉं पॉंच प्रकार की होती है।

कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्त-धातुरूपा: पंचवृत्तय: वृत्यर्थाववोधकं वाक्यं विग्रह:। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा- तत्र 'पूर्वं भूत:'इति लौकिक:'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिक:। भूतपूर्व:। भूत- पूर्व चरडिति निर्देशात् पूर्व- निपात:।

सूत्र का शब्दार्थ है कि -

1. कृत 2. तद्धित 3. समास 4. एकशेष 5. सन् आदि प्रत्ययों से बने ये पांच वृत्तिया होती हैं।

वृत्यर्थाववोधकं वाक्यं विग्रह:। वृत्ति के अर्थ को जो स्पष्ट करता है उस वाक्य को विग्रह कहते है।

स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा वह दो प्रकार का होता है-1.लौकिक तथा अलौकिक।

उदाहरण के लिए - भूतपूर्व: (पहले हो चुका है)। पूर्वम् भूत: इस लौकिक विग्रह तथा पूर्व अम् भूत सु इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'सह सुपा' सूत्र से समास होगा। 'सुपो

धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से धातु तथा प्रातिपदिक के अवयव सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर पूर्व भूत बन जायेगा। महर्षि पाणिनि ने इसका प्रयोग अपने सूत्र **भूतपूर्वेचरट्** में किया है अत: पूर्वभूत में भूत का पूर्वनिपात होकर भूतपूर्व बनेगा और पुल्लिँग प्रथमा विभक्ति एक वचन में सु विभक्ति का आगम करने पर, अनुबन्ध लोप और रूत्व विसर्ग करने पर **भूतपूर्व** : ऐसा रूप बनेगा।

(वार्त्तिक) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च। वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इव के साथ सुबन्त पद का समास होता है किन्तु इस समास में विभक्ति का लोप नहीं होता जैसे-वागर्थाविव (वाणी और अर्थ के समान) वागर्थौ इव इस लौकिक विग्रह तथा ' वागर्थ औ इव' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में **'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च'** वार्तिक से समास होगा और विभक्ति औ का लोप नहीं होगा। इस दशा में 'एचोऽयवायाव: इस सूत्र से औ के स्थान में आव् आदेश होकर वागर्थ + आव् + इव = वागर्थाविव होने से प्रातिपादिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति का आगम होगा किन्तु 'अव्ययात्' सूत्र से उसका लोप होकर-'वागर्थाविव' ही रहेगा।

2. अव्ययीभाव

910 . **अव्ययीभाव**: / 2 / 1 / 5

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरूषात्।

यह अधिकार सूत्र है। इसका शब्दार्थ है- अव्ययीभाव होता है। इसका अधिकार तत्पुरूष: 2/1/22 सूत्र के पूर्व तक चलता है अत: स्पष्टार्थ होगा कि तत्पुरूष: सूत्र के पूर्व 'अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्' 2/1/21/ तक अव्ययीभाव का अधिकार है। तात्पर्य यह है कि इस अधिकार क्षेत्र में आने वाले सूत्रों के द्वारा किये गये समासों को अव्ययीभाव समास कहते हैं।

911-**अव्ययं विभक्ति–समीप-समृद्धि–व्यृद्ध्यर्थाऽभावाऽत्ययासम्प्रतिशब्दप्रा–दुर्भाव- पश्चाद्ययथाऽऽनुपूर्व्य-यौगपद्य– सादृश्य-सम्पत्ति-कल्याऽन्तवचनेषु** / 2 / 1 / 6

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। प्रायेणाऽविग्रहो नित्यं समास:, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ – 'हरि ङि अधि' इति स्थिते।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि विभक्ति – समीप – समृद्धि ……………और अन्त अर्थ में (अव्ययम्) अव्यय................ । किन्तु ठीक-ठीक जानने के लिए प्राक्कडारात् समास:, सह सुपा, और अव्ययीभाव: सूत्रों की अनुवृत्ति करनी पड़ती है तब सूत्र का भावार्थ होता है कि- विभक्ति, समीप, समृद्धि, समृद्धि का नाश, अभाव, नाश, अनुचित,शब्द की अभिव्यक्ति,पश्चात् ,यथा,क्रमश: , एकसाथ , समानता , सम्पत्ति, सम्पूर्णता और अन्त-इन सोलह अर्थो में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है और उस समास की अव्ययीभाव संज्ञा होती है। नित्य समास को दो प्रकारों से समझा जा सकता है-

1. **प्रायेणअविग्रह**- जिसका प्राय: लौकिक विग्रह नहीं होता है।

2. **प्रायेण अस्वपदविग्रह** – प्राय:जिन पदों का समास हुआ है उनके द्वारा लौकिक विग्रह न होकर उनसे किसी भिन्न पद को लेकर विग्रह का होना। अलौकिक विग्रह तो सभी समासों का होता है। अव्ययीभाव में बना हुआ शब्द अव्यय हो जाता है और उसका रूप नहीं चलता वह

सर्वदा नपुसंकलिंग प्रथमा एक वचन में ही रहता है इसीलिए इसका नाम अव्ययीभाव है। विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त –अधिहरि।

समास के दो पदों में किसे पहले रखा जाए और किसे बाद में इसे स्पष्ट करने हेतु उपसर्जन संज्ञा का सूत्र बताया गया है –

उपसर्जन संज्ञा सूत्र –

912 . **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** /1/2/43

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

समासशास्त्र में प्रथमा द्वारानिर्दिष्ट को उपसर्जन संज्ञा होती है। समास शास्त्र का तात्पर्य है - समास का विधान करने वाले सूत्रों में। अर्थात् जिन पदों का समास किया जा रहा है उनमें प्रथमा विभक्ति लगाकर जिस पद का निर्देश किया गया हो उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है। समझने के लिए – हरि ङि अधि में अव्यय पद अधि की उपसर्जन संज्ञा होगी।

913 .**उपसर्जनं पूर्वम् / 2 /2 /30 समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम। इति अधे: प्राक् प्रयोग: सुपो लुक्, एकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्ति: अव्ययीभावश्च इत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्-अधिहरि।**

समास में उपसर्जनसंज्ञक पद का प्रयोग पहले ही होता है। जैसे-हरि ङि अधि में अधि उपसर्जन है अत: '**उपसर्जनं पूर्वम्**' सूत्र से उसका प्रयोग पहले होगा और अधि हरि ङि बनेगा।

'**अधिहरि**' हरौ अधि इस लौकिक विग्रह और हरि ङि अधि इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्ति समीप –समृद्धि' इत्यादि सूत्र से अव्ययीभाव समास होगा और 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन पद अधि की उपसर्जन संज्ञा होगी। इस स्थिति में 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञक पद अधि का पूर्व में प्रयोग होकर – 'अधि हरि ङि' हुआ। इस दशा में पुन: ' सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय ङि का लोप होकर अधिहरि रूप बना किन्तु समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में अधिहरि सु हुआ। पुन:'अव्ययीभावश्च' 1/1/49 सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी।'अव्ययादाप्सुप: 2/4/82 सूत्र से स्त्रीलिंग में आप् (टाप्, डाप् आदि) प्रत्ययों और सुप् सु और जस् आदि का लोप होता है। ऐसा होने पर अधिहरि रूप सिद्ध हुआ।

अव्ययीभाव को नपुसंकलिंग करने का नियम

914 . **अव्ययीभावश्च** / 2 / 4 / 18

अयं नपुंसकं स्यात्। गा: पातीति गोपस्तस्मिन्निति – अधिगोपम्।

सूत्र का शब्दार्थ है- (च) और (अव्ययीभाव) अव्ययीभाव: ....। सूत्र अपूर्ण होने के कारण स्पष्टीकरण के लिए 'स नपुंसकम्'2/4/17 सूत्र से नपुसंकम् पद की अनुवृत्ति करनी पड़ती है, तब भावार्थ यह होता है कि – अव्ययीभाव समास नपुंसकलिंग होता है। जैसे – अधिगोपम्।

अधिगोपम् – 'गोपि' लौकिक विग्रह और 'गोपा' ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्धि इत्यादि सूत्र से 'अधि' अव्यय का सुबन्त गोपा ङि के साथ अव्ययीभाव समास होगा और 'प्रथमानिर्दिष्टम् समास उपसर्जनम्पूर्वम्' सूत्र से अव्यय पद अधि की उपसर्जन संज्ञा होगी, तत्पश्चात् 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र से 'अधि' का पूर्व में प्रयोग होकर 'अधि-गोपा ङि ' बना। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय

ङि का लोप होकर 'अधिगोपा' हुआ। 'अव्ययी भावश्च' सूत्र ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य' (नपुंसकलिंग में प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है) से 'अधिगोपा' के अन्तिम स्वर को ह्रस्व करने पर 'अधिगोप' रूप बना। इस स्थिति में एकदेश विकृत होने पर भी सुप् प्रत्यय की प्राप्ति हुयी और 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा हुयी। 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से इसका निषेध होकर 'अधिगोप सु' हुआ। इस दशा में 'नाव्ययीभावाद0' सूत्र से ही सु को अम् होकर अधि गोप अम् हुआ और 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप होकर अधिगोपम् रूप बना।

915 . नाऽव्यीभावाद् अतोऽम्त्वपञ्चम्या: / 3 / 4 / 83

अदन्ताद् अव्यीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पन्चामी विना अम् अदेश: स्यात्।

अकारान्त अव्ययीभाव के पश्चात् सुप् का लुक् (लोप) नहीं होता है किन्तु पंचमी विभक्ति को छोड़कर अन्य विभक्तियों के बाद सुप् प्रत्ययों के स्थान पर 'अम्' आदेश हो जाता है जैसे- अधिगोप सु में अकारान्त अव्यीभाव पद है अधिगोप में प मे अ।अत: इस सूत्र से सुप् प्रत्यय सु के स्थान में अम् आदेश होकर अधिगोपम् बनता है।

916 . **तृतीया-सप्तम्योर्बहुलम्**- 2/4/84/

अदन्ताद् अव्ययीभावात्तृतीया सप्तम्योर्बहुलम् अम्भाव: स्यात् ।उपकृष्णम्,उपकृष्णेन। मद्राणां समृद्धि:सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धि-दुर्यवनम्। मक्षिकाणाम् अभाव: - निर्मक्षिकम्। हिमस्याऽत्यय:- अतिहिमम् निद्रा संम्प्रति न युज्यते इति-अति निद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश:- इति हरि। विष्णो: पश्चाद् – अनुविष्णु। योग्यता-वीप्सा-पदार्थाऽनतिवृत्ति – सादृश्यानि यथार्था:। रूपस्य योग्यमनुरूपम् ।अर्थंमर्थं प्रतिप्रत्यर्थ,शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति।

सूत्र का शब्दार्थ यह है कि-तृतीय सप्तम्यो: अर्थात् तृतीय और सप्तमी विभक्ति के स्थान पर **बहुलम्** (विकल्प) से अम् आदेश होता है। किन्तु क्या बहुल होता यह बात सूत्र से स्पष्ट नहीं है, अत: स्पष्टीकरण हेतु पूर्व के सूत्र 'नाव्ययीभावादतोऽम्0' 2/4/83इत्यादि सूत्र से 'अत:''अव्ययीभावाद्' और अम् की अनुवृत्ति करनी होगी। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा कि – अकारान्त अव्ययीभाव के पश्चात् तृतीया विभक्ति (टा) और सप्तमी विभक्ति (ङि) के स्थान पर बहुलता (विकल्प) से अम् आदेश होता है। कहीं पर आदेश नहीं भी होता है जैसे-उपकृष्णम्

उपकृष्णम् – 'कृष्णस्य समीपम्' लौकिक विग्रह तथा 'कृष्ण ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्तिसमीप0' सूत्र से समीपता के अर्थ में अव्यय उप के साथ सुबन्त ङस् का अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद उप की उपसर्जन संज्ञा हुयी 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'उप कृष्ण ङस्' हुआ। 'सुपो धातु प्रातिपदिकयो:'सूत्र से सुप् प्रत्यय ङस् का लोप होकर 'उपकृष्ण' हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय की प्राप्ति होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त होने पर 'नाऽदव्यीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर सु के स्थान में अम् आदेश होकर 'उपकृष्णम्' रूप बना। इसी प्रकार तृतीया और सप्तमी विभक्ति में 'तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्' सूत्र से 'उपकृष्णम्' के स्थान पर उपकृष्णेन तथा 'उपकृष्णे ' भी बनेगें।

सुमद्रम्- (मद्र देश की समृद्धि) ' मद्राणां समृद्धि ' इस लौकिक विग्रह और ' मद्र आम् सु ' इस

अलौकिक विग्रह की स्थिति में ' अव्ययं विभक्तिसमीप0 ' सूत्र से समृद्धि अर्थ में अव्यय सु के साथ सुबन्त पद का अव्ययीभाव समास होगा। ' प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ' सूत्र से अव्यय सु की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होगा 'सुमद्र आम्'बना। सुपो धातु प्रातिपदिकायो:' से विभक्ति आम् का लोप होकर 'सुमद्र'बना। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' न्याय से प्रथमा एकवचन में सु प्राप्त होगा । 'अव्ययीभावश्च' (1/2/41)सूत्र से 'सुमद्र' को अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुप:'सूत्र से सुप् विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ , किन्तु 'नाऽव्ययीभावदतोऽम्त्वपंचम्या:'सूत्र से सु का लोप न होकर उसे अम् आदेश होकर सुमद्रम् बन जायेगा।

निर्मक्षिकम्-(मक्खियों का आभाव) 'मक्षिकाणाम् अभाव:' लौकिक विग्रह तथा 'मक्षिका आम् निर् ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से निर् इस अव्यय का अभाव अर्थ होने से अव्ययीभाव समास होगा । 'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय निर् की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' से निर् को पूर्व में – प्रयोग होकर निर् मक्षिका आम्'बना । 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से आम् का लोप होकर 'निर्मक्षिका बना। इस दशा में 'अव्ययी भावश्च' (1/1/14) से इसकी अव्यय संज्ञा होगी तथा 'अव्ययीभाश्च'(1/1/18) सूत्र से नपुंसकलिंग होकर 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से निर्मक्षिका के आ को ह्रस्व होकर ' निर्भक्षिक' बना । 'एक देश विकृतमनन्यवत' न्याय से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ। इस दशा में 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त था किन्तु ' नाऽव्ययीभावदतोऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से सु को अम् आदेश होकर निर्मक्षिकम् रूप सिद्ध हुआ।

अतिहिमम् – (हिम का नाश)'हिमस्य अत्यय:' अत्यय:' लौकिक विग्रह तथा ' हिम ङस् अति' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्ध0' सूत्र से अत्यय का नाश अर्थ वाले अव्यय 'अति' के साथ सुबन्त पद का अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय 'अति' की उपसर्जन संज्ञा हुयी। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर –अतिहिम ङस् हुआ । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से विभक्ति प्रत्यय ङस् का लोप होकर 'अतिहिम' हुआ। इस दशा में प्रथमा विभक्ति में सु प्राप्त होगा, किन्तु 'अव्ययीभावश्च' /1/4 / 41 / सूत्र से अव्यय संज्ञा होगी। इस दशा में 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' से सु को अम् आदेश होकर अतिहिमम् रूप सिद्ध हुआ।

अतिनिद्रम्- (निद्रा इस समय उचित नहीं है) 'निद्रा सम्प्रति न युज्यते' लौकिक विग्रह तथा 'निद्रा सु अति' इस अलौकिक विग्रह में' 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' इस सूत्र से असम्प्रति अर्थात् अनौचित्य अर्थ में आये अति अव्यय का सुबन्त के साथ समास होगा। इस स्थिति में 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय अति की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व प्रयोग हुआ । अतिनिद्रा ङस् इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से इस विभक्ति ङस् प्रत्यय का लोप हुआ – अतिनिद्रा। इस दशा में 'अव्ययीभावश्च' /2/4/18/ इस सूत्र से नपुंसकलिंग होगा तथा 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से निद्रा के आ को ह्रस्व हुआ – 'अतिनिद्रं प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ तथा 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होगी। इस दशा में 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप

प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपंचम्या:' से सु को अम् होकर 'अतिनिद्रम' रूप सिद्ध हुआ।

इतिहरि- (हरि शब्द का प्रकाश) 'हरिशब्दस्य प्रकाश:' इस लौकिक विग्रह तथा 'हरि ङस्' इति' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्ध0' इस सूत्र से शब्दप्रादुर्भाव अर्थ में प्रयुक्त इति अव्यय का सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास होगा।'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से इति पूर्व में रखा जाने पर इतिहरि ङस्'हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय ङस्' का लोप होने पर इतिहरि हुआ। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आने पर 'अव्ययीभावश्च' (1/1/41) सूत्र से इसकी अव्यय संज्ञा होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' से सु को लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'अव्ययीभावश्च' 2/4/18 से नपुंसकलिंग होकर-इतिहरि रूप सिद्ध हुआ।

अनुविष्णु- विष्णु के पश्चात्)'विष्णो: पश्चाद्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'विष्णु ङस्'अनु' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' इस सूत्र से पश्चात् अर्थ में अनु अव्यय का सुबन्त 'विष्णो' के साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से अनु का पूर्व में प्रयोग होकर 'अनुविष्णु ङस् हुआ। सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्रसे ङस्' का लोप होकर-अनुविष्णु हुआ। इस दशा में प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होगा, किन्तु अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सूत्र से अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु को लोप प्राप्त हुआ। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुसंकलिंग होकर अनुविष्णु रूप सिद्ध हुआ।

अनुरूपम् (रूप के योग्य) ' रूपस्य योग्यम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'रूप ङस्' अनु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से यथा के योग्यता अर्थ में अव्यय के अनु का सुबन्त पद रूप ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास होगा। पुन: 'प्रथमानिर्दिष्टं मास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद अनु की उपसर्जन संज्ञा होगी तथा 'अनुरूप ङस्' बना। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय ङस्' का लोप होकर 'अनुरूप' बना।इसके पश्चात् प्रथमा विभक्ति की विवक्षा में सु विभक्ति आने पर 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होगी और 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप का निषेध होकर अम् होने पर अनुरूप +अम् बना। 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्व रूप करने पर अनुरूपम् रूप सिद्ध हुआ।

प्रत्यर्थम्- (प्रत्येक अर्थ में) 'अर्थम् अर्थम् प्रति' इस लौकिक विग्रह तथा 'अर्थ अम् प्रति' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से यथा के वीप्सा अर्थ में प्रति अव्यय का सुबन्त पद 'अर्थम' के साथ अव्ययीभाव समास होगा। ' प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय का प्रथमा में निर्देश होने से अव्यय पद 'प्रति' की उपसर्जन संज्ञा होगी। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होगा-प्रत्यर्थ अम्। 'सुपो-धातुप्रातिपदिकायो: सूत्र से विभक्ति प्रत्यय अम् का लोप हुआ तो – प्रत्यर्थ बना। इस दशा में प्रथमा विभक्ति का सु प्राप्त होने पर 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सूत्र से इसकी अव्यय संज्ञा होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु को लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्यीभावादतेऽम्त्वपंचम्या:' सूत्र से लुक् न होकर सुप् के स्थान में अम् आदेश होकर प्रत्यर्थम् रूप सिद्ध हुआ।

यथाशक्ति- (शक्ति का अतिक्रमण न करते हुए, शक्ति के अनुसार)। 'शक्तिम् अनतिक्रम्य'

इस लौकिक विग्रह तथा 'शक्तिअम् यथा' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्रसे अव्यय यथा का अतिक्रमण न कर अर्थ में सुबन्त पद शक्तिम् के साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद की उपसर्जन संज्ञा होगी और 'उपसर्जनं पूर्वम' सूत्र से अव्यय पद 'यथा' का पूर्व में प्रयोग होगा तो 'यथाशक्ति अम्' हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय अम् का लोप होकर- 'यथाशक्ति' । प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति आने पर 'अव्ययीभावश्च' (1/1/41) से अव्यय संज्ञा, तथा 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् विभक्ति का लुक् होगा। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसकलिंग होकर यथाशक्ति रूप सिद्ध हुआ।

अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

1.समास का क्या अर्थ है –

क. विस्तार ख. संक्षेपीकरण

ग. समूह घ . मेल

2. समास कितने प्रकार के होते हैं –

क. सात ख. आठ

ग. छ: घ . पॉच

3. विशेष संज्ञा से मुक्त समास कहलाता है –

क. अव्ययीभाव ख. केवल

ग. द्विगु घ . कर्मधारय

4. निम्नलिखित में पूर्वपदप्रधान अर्थ का समास है –

क. द्विगु ख. अव्ययीभाव

ग. कर्मधारय घ . तत्पुरूष

5. विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला समास है –

क. द्विगु ख. तत्पुरूष

ग. कर्मधारय घ . अव्ययीभाव

6. अन्यपदार्थ प्रधान समास है –

क. द्विगु ख. बहुव्रीहि

ग. कर्मधारय घ . अव्ययीभाव

7. उपकृष्णम् में उप का अर्थ है –

क. समीप ख. अन्तराल

ग. दूर घ . कोई नहीं

8. ' मद्राणां समृद्धि ' के लिए पूर्ण शब्द बनेगा –

क. सतृणम् ख. अतृणम्

ग. सुमद्रम् घ . कोई नहीं

9 मक्षिकाणाम् अभाव:' में समास किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है –

क. सम्पत्ति ख. सम्पूर्णता

ग. सादृश्य घ . अभाव

10. यथाशक्ति-शब्द किस अर्थ से सम्बन्धित है -

क. भ्रमण	ख. वाचन
ग. मंथन	घ . अनतिक्रम्य

1.4 सारांश

जब व्यापेक्षा और एकार्थीभाव से संयुक्त समर्थ पद का आश्रय ग्रहण करके समास निर्माण किया जाता है तो उसे केवल समास कहा जाता है किन्तु अव्ययीभाव समास सर्वप्रथम विभक्ति आदि 16 अर्थो में प्रयुक्त होता है। जैसे - विभक्ति, समीप समृद्धि, समृद्धि का नाश, अभाव, नाश, अनुचित,शब्द की अभिव्यक्त,पश्चात् यथा,क्रमशः , एकसाथ, समानता, सम्पत्ति, सम्पूर्णता और अन्त-इन सोलह अर्थो में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है और उस समास की अव्यीभाव संज्ञा होती है। इस इकाई में आपने उपर्युक्त 16 अर्थो के अन्तर्गत सादृश्यता तक का अर्थ बताने वाले सभी प्रयोगों की सिद्धि का अध्ययन किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप विभक्ति, समीप समृद्धि, समृद्धि का नाश, अभाव, नाश, अनुचित,शब्द की अभिव्यक्त,पश्चात् यथा,क्रमशः , एकसाथ, समानता, तक के अन्तर्गत आने वाले अर्थों में सिद्ध होने वाले सभी प्रयोगों के विषय में विस्तार से बता सकेगें। साथ ही समास ज्ञान की पूर्व पीठिका से भी परिचित होते हुए संस्कृत व्याकरण में समास की प्रारम्भिक प्रक्रिया का ज्ञान करा सकेगें।

1.5 शब्दावली

1. समास शब्द का अर्थ -**समएनम् अनेकपदानाम् एकपदीभवनं समासः**, । जैसे- **राज्ञः पुरूष : राजपुरूषः** - राजा का पुरूष।

2. **प्रायेणअविग्रह**- जिसका प्राय: लौकिक विग्रह नहीं होता है।

3. **प्रायेण अस्वपदविग्रह** – प्राय:जिन पदों का समास हुआ है उनके द्वारा लौकिक विग्रह न होकर उनसे किसी भिन्न पद को लेकर विग्रह का होना।

4.**सचक्रम्**- (चक्र के साथ-साथ)

5.**यथा शक्ति** –शक्ति का अतिक्रमण न करते हुए।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **ख. संक्षेपीकरण** 2. **घ . पॉच** 3. **ख. केवल** 4. **ख. अव्ययीभाव** 5 .**घ . अव्ययीभाव** 6. **ख.** बहुव्रीहि 7. **क. समीप** 8. **ग. सुमद्रम्** 9 .**घ.अभाव** 10 **घ. अनतिक्रम्य**

1.7 उपयोगी पुस्तकें

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1	वैयाकरण सिद्धा न्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समास को परिभाषित कर केवल समास का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए
2. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि इत्यादि सूत्र की विस्तृत विवेचना कीजिए
3. निम्नलिखित की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि कीजिए –

क - अनुरूपम्

ख – उपकृष्णम्

इकाई 2. अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक व्याख्या

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 **प्रस्तावना**

कारक एवं समास प्रकरण के प्रश्न पत्र में खण्ड **3** - समास प्रकरण के वर्णन की यह प्रथम इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने कारक तथा केवल समास एवं अव्ययीभाव के कुछ प्रक्रियात्मक व्याकरण के सूत्रों का सम्यक् अध्ययन किया है। इस इकाई में अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक की व्याख्या सम्यग् रूप से आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है। अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र का शब्दार्थ है कि (च) और (अव्ययीभावे) अव्ययीभाव में (अकाले) अकालवाची होने पर। किन्तु इसे ठीक –ठीक जाने के लिए 'सहस्य स: संज्ञायाम्' 6/3/78/ सूत्र से सहस्य और सह पदों की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। तब सूत्र का भावार्थ होता है - यदि काल वाचक पद परे न हो तो अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स: आदेश होता है। उदाहरणों को इस इकाई का वर्ण्य विषय बनाया गया है।

1.2 उद्देश्य

अव्ययीभाव समास के अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि –

1. अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र क्या अर्थ होता है।
2. नदीभिश्च सूत्र की क्या उपयोगिता है।
3. तद्धिता: सूत्र की व्याख्या क्या है।
4. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य: सूत्र का क्या महत्व है ।
5. सचक्रम् प्रयोग किस प्रकार सिद्ध होगा।

2.3 अव्ययीभावे चाऽकाले सूत्र से झय: सूत्र तक व्याख्या

917 . **अव्ययीभावे चाऽकाले** /6/3/81 /

सहस्य स: स्याद् अव्ययीभावे न तु काले। हरे: सादृश्यम् सहरि ।ज्येष्ठस्यानु··नुपूर्व्येण इति अनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृश: संख्या स सखि। क्षत्राणां सम्पत्ति: स क्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य स तृणम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते सा·ग्नि।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (च) और (अव्ययीभावे) अव्ययीभाव में (अकाले) अकालवाची होने पर। किन्तु इसे ठीक –ठीक जाने के लिए 'सहस्य स: संज्ञायाम्' 6/3/78/ सूत्र से सहस्य और सह पदों की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। तब सूत्रका भावार्थ होगा- यदि काल वाचक पद परे न हो तो अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स आदेश होता है। उदाहरण के लिए आगे प्रयोग देखिये

सहरि -(हरि के समान) 'हरे: सादृश्यम्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'हरि टा सह' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' इस सूत्र से अव्यय सह का यथा के सादृश्य अर्थ में सुबन्त पद के साथ अव्ययी भाव समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'अव्यय' प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्टं होने के कारण अव्यय पद सह की उपसर्जनसंज्ञा होगी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से इसका पूर्व में प्रयोग होकर 'सह हरि टा' बना। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति टा का लोप लोप होकर 'सह हरि' बना।

इसमें उत्तरपद हरि कालवाची नहीं है अत: 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह के स्थान पर स आदेश होकर सहरि रूप सिद्ध हुआ।

अनुज्येष्ठम् - (ज्येष्ठ के क्रम से) 'ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण' लौकिक विग्रह तथा 'ज्येष्ठ अनु' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से अव्यय अनु का आनुपूर्व्य या क्रम के अर्थ में सुबन्त पद ज्येष्ठस्य के साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अनु की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर-अनुज्येष्ठ ङस् बना। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति प्रत्यय ङस् का लोप होकर- अनुज्येष्ठ बना। इस दशा में प्रथमा एकवचन में सु होने पर 'अवययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होकर 'अवययादाप्सुप:' सूत्र से सु का लोप हुआ किन्तु 'नाव्ययीभावदतोम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर उसे अम् आदेश होकर 'अनुज्येष्ठम्' रूप सिद्ध हुआ।

सचक्रम्- (चक्र के साथ-साथ) 'चक्रेण युगपत्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'चक्र टा सह' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से यौगपद्य(=एक साथ)के अर्थ में आये हुए अव्यय पद का सुबन्त पद चक्रेण के साथ अव्ययीभाव समास प्राप्त हुआ। सूत्र में अव्यय प्रथमा है अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद सह की उपसर्जन संज्ञा हुयी । इस दशा में 'उपसर्जनं पूर्वम्' इस सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर सहचक्र+टा' हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय टा का लोप होकर-सहचक्र बना। इस दशा में 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह को स हुआ –सचक्र। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति प्रत्यय आने पर 'अव्ययीभावश्च' 1/1/4 । सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप: सूत्र से सु के लोप का निषेध होकर अम् आदेश होकर- सचक्रम् रूप सिद्ध हुआ।

ससखि- (मित्र के सदृश)। 'सदृश: सख्या' इस लौकिक विग्रह तथा 'सखि टा सह' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से सादृश्य के अर्थ में आये हुए अव्यय पद 'सह'की सुबन्त पद सखि के साथ के साथ अव्ययीभाव समास हुआ। 'सह सखि टा' । इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सह के स्थान पर स होकर 'ससखि' बना। इस स्थिति में प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ किन्तु 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप होकर 'ससखि' रूप सिद्ध हुआ।

सक्षत्रम् - (क्षत्रियों की संपत्ति) 'क्षत्राणां सम्पत्ति:' इस लौकिक विग्रह तथा 'क्षत्रभिस् सह' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से सम्पत्ति के अर्थ में आये हुए अव्यय सह का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'सहक्षत्र भिस्' रूप बना। अब इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय का लोप होकर 'सहक्षत्' रूप बना। अब 'अव्ययीभवे चाऽकाले सूत्र से सह को

स हुआ – सक्षत्र प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु को लोप प्राप्त है किन्तु 'नाव्ययीभावादतोम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से उसका निषेध हुआ तथा अम् आदेश होकर 'सक्षत्रम्' रूप सिद्ध हुआ।

सतृणम्- (तृण को भी न छोड़ते हुए सबको)'तृणम् अपि अपरित्यज्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'तृण टा सह' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से उपसर्जन संज्ञाहोकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से सह का पूर्व में प्रयोग होकर - सहतृण बना। अब 'अव्ययीभावेचाऽकाले' सूत्र से सह के ह का लोप होकर स हुआ- सतृण। इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु विभक्ति प्रत्यय का लोप प्राप्त हुआ किन्तु नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध हुआ तथा सुप् प्रत्यय के स्थान पर 'अम्' आदेश होकर 'सतृणम्' रूप सिद्ध हुआ।

साग्नि- (अग्नि चयन के अन्त तक) 'अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते' इस लौकिक विग्रह तथा 'अग्नि टा सह' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से अन्त के अर्थ में प्रयुक्त अव्यय सह का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास का निर्देश प्रथमा विभक्ति से होने के कारण अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से सुप् आदि प्रत्यय का लोप होकर-सहाग्नि रूप बना। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह को स होकर-साग्नि हुआ। प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त हुआ, किन्तु 'अव्ययीभावश्च' सूत्र 1/1/41 से अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् को लोप होकर साग्नि रूप सिद्ध हुआ।

918. **नदीभिश्च** 2 / 1 / 20

नदीभि: सह संख्या समस्यते।

(वार्त्तिक) समाहारे चायमिष्यते। पंचगंगम्। द्वियमुनम्।

प्रस्तु सूत्र का शब्दार्थ है कि (च) और (नदीभि) नदियों से ....। इस सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए या इसे ठीक-ठीक समझने के लिए 'सख्या वंश्येन' 2/1/19/ सूत्र से संख्या की अनुवृत्तिकरनी पड.ती है। सूत्र में 'प्राक्कडारात् समास' 2.1.3. सूत्र का तथा 'अव्ययीभाव:' 2/1/5 का अधिकार प्राप्त है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- नदियों अर्थात् संख्यावाचक शब्द का समास होता है। तथा वह समास अव्ययीभाव-संज्ञक होता है। यहा पर 'समाहारे चायमिष्यते' इस वार्त्तिक से वह समुदाय अर्थ में ही होगा। उदाहरण के रूप में 'पंचगंगम् में समुदायके अर्थ में संख्यावाची 'पंच'का नदी विशेषवाचक 'गंगा' के साथ समास हुआ इसी प्रकार द्वियमुनम् में भी द्वि और यमुना का समास होता है। यह समास 'समाहार' या 'समूह' के अर्थ में होता है।

पन्चगंगम्- (पॉच गंगाओं का समूह)

'पंचानां गंगानां समाहार:लौकिक विग्रह तथा पंचन् आम् गंगा आम् 'अलौकिक विग्रह में 'नदीभिश्च' इस सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ तथा 'समाहारे चायमिष्यते' इस वार्त्तिक से समास समाहार अर्थ में हुआ 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय आम् का लोप होकर 'पंचन् गंगा' हुआ। इस स्थिति में 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से पन्चन्

संख्यावाची के न् का लोप होकर 'पन्च गंगा' रूप बना। अब 'एकविभक्तिचापूर्वनिपाते' सूत्र से गंगा शब्द की उपसर्जन संज्ञा हुयी तथा 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्रसे 'गंगा' को ह्रस्व होकर 'पन्चगंग' हुआ इस स्थिति में 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41/ सूत्रसे अव्यय संज्ञा हुयी तथा 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपन्चम्या:' इस सूत्र से लोप का निषेध होकर 'अम्' आदेश होकर 'पन्चगंगम्' रूप सिद्ध हुआ।

द्वियमुनम् (दो यमुना का समूह)

'द्वयो: यमुनयो: समाहार:' इस लौकिक विग्रह में तथा 'द्वि ओस् यमुना ओस्' इस अलौकिक विग्रह में 'नदीभि:' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ किन्तु यहॉ पर यह समास' समाहारे चायमिष्यते' इस वार्त्तिक से समाहार अर्थ में होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप हुआ –द्वियुना' । इस स्थिति में एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इस सूत्र से यमुना की उपसर्जनसंज्ञा होकर 'गोस्त्रियो: उपसर्जनस्य' सूत्र से यमुना को ह्रस्व 'द्वियमुन' रूप बना।अब समास होने की दशा में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने से प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु आदि विभक्ति प्रत्यय प्राप्त हुआ किन्तु 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप प्राप्त होगा किन्तु 'नाऽव्ययीभवादतोऽम्पंचम्या: ' सूत्र से लोप का निषेध हुआ तथा सुप् को अम् आदेश होकर – 'द्वियमुनम्' रूप सिद्ध होता है।

919 **तद्धिता**: /4/1/76

आ पन्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

प्रस्तुत सूत्र अधिकार सूत्र है। सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (तद्धिता) तद्धित होते है। इस अधिकार सूत्र का अधिकार पॉचवें अध्याय के चतुर्थ पाद के अन्तिम सूत्र 'निष्प्रवाणिश्च' 5/4/160 तक है। तब सूत्र का भावार्थ होगा-'तद्धिता:' सूत्र से लेकर 'निष्प्रवाणिश्च' सूत्र तक जिन प्रत्ययों का विधान किया गया है, उन्हें तद्धित कहा जाता है।

920.**अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य**: /5/4/107/

शरदादिभ्यस्टच् स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरद: समीपम्- उपशरदम्। प्रतिविपाशम्।
(गण सूत्र) जराया जरस्। उपजरसमित्यादि।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (अव्ययी भावे) अव्ययीभाव में तथा (शरत्प्रभृतिभ्य:) 'शरद्' आदि से .... । किन्तु यहॉं पर होता क्या है इसे ठीक-ठीक जानने के लिए 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' 5/4/91/ से टच् की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। सूत्र में 'समासान्ता:' 5/4/68/ सूत्र का अधिकार प्राप्त है। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा- अव्ययीभाव समास में 'शरद' आदि से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। यहॉं पर टच् में टकार और चकार इत्संज्ञक है, इसलिए केवल अ ही शेष बचता है। उदाहरण के लिये 'शरद: समीपम्' में समीप अर्थ में वर्तमान उप अव्यय का 908 – 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से सुबन्त शरद: के साथ समास होकर उपशरदम् रूप बनता है। इस दशा में प्रकृत सूत्र तद्वित प्रत्यय टच् होकर 'उपशरद् अ' = 'उपशरद' हो प्रथमा एकवचन की विवक्षा में प्रातिपदिक संज्ञा होकर उपशरदम् रूप बनता है। इसी प्रकार गणसूत्र 'जराया जरस्' से जराया:समीपम् (बुढापे के निकट) इस विग्रह में 'उप' अव्यय का -908 – 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से सुबन्त जराया के साथ समास होने पर 'जरा' के स्थान पर 'जरस्' और 'टच्'आदि होकर 'उपजरसम्' रूप बनता है।

उपशरदम् - (शरद के समीप) 'शरद:समीपम' इस लौकिक विग्रह में तथा 'शरद ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से समीप के अर्थ में प्रयुक्त अव्यय उप को सुबन्त पद के साथ समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय पद उप की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'उपशरद ड.स्' बना। इस स्थिति में 'सुपो धातु प्रतिपदिकयो: सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय ङस् का लोप होकर उपशरद् बना। अब 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:' सूत्र से अव्ययीभाव समास होकर शरद् से टच् प्रत्यय हुआ ट्कार तथा चकार का लोप होकर उपशरद्+अ =उपशरद हुआ। इस स्थिति में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त हुआ। 'अव्ययीभावश्च' 1/1/41 सुत्र से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सुप् का लोप हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर सु के स्थान में अम् आदेश होकर उपशरदम् रूप सिद्ध हुआ।

प्रतिविपाशम् - (विपाशानदी की ओर) 'विपाशाया: अभिमुखम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'विपाश् अम् प्रति' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'लक्षणेनाभिप्रति अभिमुख्ये' सूत्र से अभिमुख अर्थ में प्रति अव्यय का सुबन्त पद के साथ समास होगा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से अव्यय पद प्रति का पूर्व में प्रयोग होगा तो-प्रतिविपाश् अम् हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर प्रतिविपाश: रूप बना। इस स्थिति में 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर समासान्त प्रत्यय टच् हुआ –प्रतिविपाश टच्। प्रतिविपाश् टच्। टच् में ट् और च का लोप होकर 'प्रतिविपाश' अ हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त होगा किन्तु 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र 1/1/41 से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुप:' सूत्र से सु विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध हुआ। तथा अम् आदेश होकर 'प्रतिविपाश् अम् हुआ। इस दशा में 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होकर- प्रतिविपाशम् रूप सिद्ध हुआ।

उपजरसम्- (वृद्धावस्था के निकट)

'जराया: समीपम्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'जरा ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में ही 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से समीप के अर्थ में आये उप अव्यय का सुबन्त पद जराया: के साथ अव्ययीभाव समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय उप की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग होगा- 'उप जरा ङस्' इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकायो:' सूत्र से सुप् प्रत्यय ङस् का लोप होगा 'उपजरा' इस दशा में गणपाठ 'जराया जरस्' से जरा को जरस् होकर –उपजरस् हुआ। समासान्त टच् प्रत्यय होकर ट्कार और चकार का लोप हुआ – उपजरस। अब प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होने पर 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा हुयी। 'अव्ययादाप्सुप:' इस सूत्र से सु का लोप न होकर अम् आदेश हुआ – उपजरस अम्। इस स्थिति में 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप आदेश होकर 'उपजरसम्' रूप सिद्ध होता है।

921. **अनश्च** /5/4/108

अन्नन्ताद् अव्ययीभावात् टच् स्यात्।

सूत्र का भावार्थ यह है कि जिस अव्ययीभाव पद के अन्त में अन् हो ऐसे समासान्त पद को टच् प्रत्यय होता है। जैसे 'राज्ञ: समीपम्' = उपराजम्। राजन् ङस् उप अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से समीपता के अर्थ में आये हुए उप का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास होगा। उपसर्जन संज्ञा और पूर्व में प्रयोग करने पर उपराजन् + ङस् होगा तथा सुप् लोप करने पर उपराजन् बनेगा। किन्तु 'अनश्च' सूत्र से अन् अन्त में होने के कारण समासान्त टच् प्रत्यय होगा –उपराजन् +टच्। 'नस्तद्धिते' सूत्र से उपराजन् के टी अन् का लोप होकर उपराज् +टच् हुआ। ट्कार और चकार का लोप होकर उपराज् अ = उपराज हुआ। प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति और अव्यय संज्ञा होने पर 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् का लोप प्राप्त होगा किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपन्चम्या:' सूत्र से लोप का निषेध होकर अम् आदेश हुआ उपराज् अम्।'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्व रूप होकर उपराजम् रूप सिद्ध होता है।

922 **नस्तद्धिते** /6/4/144

ना·न्तस्य भस्य टेलोर्पस्तद्धिते। उपराजम्।अध्यात्मम्।

सूत्र का तात्पर्य यह है कि भसंज्ञक नकारान्त अंग से परे यदि तद्धित प्रत्यय आता हो तो भसंज्ञक अंग के टि का लोप हो जाता है। 'यचि भम्' सूत्र यादि और यजादि प्रत्यय परे रहते पूर्ववर्ती शब्द समुदाय की भ संज्ञा होती है।

अध्यात्मम् –(आत्मा में) 'आत्मनि अधि' इस अलौकिक तथा 'आत्मन् ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में अधि अव्यय के विभक्ति अर्थ में होने के कारण सुबन्त पद आत्मनि के साथ अव्ययीभाव समास होता। शेषकार्य उपराजम् की भॉंति ही सिद्ध होगें।

923 . **नपुंसकादन्यतरस्याम्** /5/4/109

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावात् टज्वा स्यात् उपचर्मम् उपचर्म।

जब कभी अव्ययीभाव के अन्त हो और वह पद नपुंसकलिंग में हो तो उसे विकल्प से टच् प्रत्यय होता है। जैसे उपचर्मम्- समीपता के अर्थ में 'चर्मण: समीपम् और 'चर्मन् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि0' सूत्र से उप का सुबन्त चर्मण:से अव्ययीभाव समास होगा। उपसर्जन संज्ञा और पूर्व में प्रयोग होने पर 'उपचर्मन ङस्' होगा। सुप् लोप होगा 'उपचर्मन्' होगा और 'अनश्च' सूत्र से टच् प्रत्यय का विधान करने पर उपचर्मन टच् होगा।

'नस्तद्धिते' सूत्र से नकारान्त भसंज्ञक चर्मन् के टि के अन् का लोप और अम् आदेश होने पर उपचर्मम् रूप सिद्ध होता है।

924 . **झय**: / 5 / 4 / 111

झयन्तादव्ययीभावात् टच् वा स्यात्। उपसमिधम् उपसमित्।

यदि कहीं पर झय् प्रत्याहार का वर्ण अव्ययीभाव के अन्त में आया हो तो उससे भी समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से होता है। जैसे-

उपसमिधम् – (समीपता के अर्थ में) 'समिध:समीपम्' लौकिक और 'समिध् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'अव्ययं विभक्ति0' इत्यादि सूत्र से अव्यय पद उप का सुबन्त पद समिध् के साथ अव्ययीभाव समास होगा। उपसर्जन संज्ञा और पूर्व में प्रयोग होकर-उपसमिध ङस् होगा। सुप् लोप होने पर 'उपसमिध्'बनेगा। 'झय:' सूत्र से टच् प्रत्यय करने पर ट्कार और चकार का लोप करने पर उपसमिध् अ= उपसमिध बनेगा। प्रथमा एकवचन में सु की

प्राप्ति, अव्यय संज्ञा और अम् आदेश होने पर उपसमिधम् प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से ध् को द् होकर उपसमिद् और 'वाऽवसाने' सूत्र द् को त होकर उपसमित् प्रयोग बनेगा।

अभ्यास प्रश्न

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

1. **सहरि**- का क्या अर्थ है –

क. विस्तार ख. संक्षेपीकरण

ग. समूह घ . हरि के समान

2. इस इकाई में कितने सूत्र हैं –

क. सात ख. आठ

ग. छ: घ . चार

3. इस इकाई में किस समास का वर्णन हैं –

क. अव्ययीभाव ख. केवल

ग. द्विगु घ . कर्मधारय

4. निम्नलिखित में पूर्वपदप्रधान अर्थ का समास है –

क. द्विगु ख. अव्ययीभाव

ग. कर्मधारय घ . तत्पुरूष

5. सहरि किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

6. सचक्रम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

7 . उपशरदम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

8 . प्रतिविपाशम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

9 . उपचर्मम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. नपुंसकादन्यतरस्याम घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

10 . उपसमिधम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क. नदीभिश्च ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

ग. तद्धिता: घ . झय:

2 .4 सारांश

इस इकाई में आपने उपर्युक्त आठ अर्थों के अन्तर्गत सादृश्यता तक का अर्थ बताने वाले

सभी प्रयोगों की सिद्धि का अध्ययन किया है। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अव्ययीभावे चाकाले सहस्य स: स्याद् अव्ययीभावे न तु काले। हरे: सादृश्यम् सहरि ।ज्येष्ठस्यानुऽऽनुपूर्व्येण इति अनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत् सचक्रम् । सदृश: संख्या स सखि । क्षत्राणां सम्पत्ति: स क्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य स तृणम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते साऽग्नि। यदि काल वाचक पद परे न हो तो अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स आदेश होता है। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

2 .5 शब्दावली

प्रतिविपाशम्- (विपाशानदी की ओर)

उपजरसम्- (वृद्धावस्था के निकट)

अध्यात्मम् – (आत्मा में)

उपसमिधम् – (समीपता के अर्थ में)

पन्चगंगम्- (पॉच गंगाओं का समूह)

द्वियमुनम् (दो यमुना का समूह)

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ . हरि के समान 2.ख. आठ 3. क. अव्ययीभाव 4 ख. अव्ययीभाव

5. ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

6. ख. अव्ययीभावे चाऽकाले

7 . घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

8 .घ . अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य:

9 . ग. नपुंसकादन्यतरस्याम

10 .घ . झय:

2 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती

2 . 8 उपयोगी पुस्तकें

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

2 .9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 . निम्नलिखित की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि कीजिए –

क - सचक्रम्

ख – उपराजम्

इकाई 3.तत्पुरुष:सूत्र से सप्तमी शौण्डैः सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3 .1 प्रस्तावना

3 .2 उद्देश्य

3 .3 तत्पुरुष: सूत्र से सप्तमी शौण्डै:सूत्र तक व्याख्या

3 .4 सारांश

3 .5 शब्दावली

3 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3 .8 निबन्धात्मक प्रश्न

3 .1 प्रस्तावना

तत्पुरूष, आदि समासों में प्रयुक्त सूत्रों तथा उनके विभिन्न उदाहरणों की प्रयोग सिद्धि स्वरूप व्याख्या से सम्बन्धित यह इकाई है । इससे पूर्व की इकाई में आपने अव्ययी भाव समास, के वर्णन में अव्ययीभावे चाकाले सूत्र से लेकर झय: सूत्र तक बनने वाले उद्धरणों के अध्ययन के साथ – साथ नदियों की संख्या आदि से निर्मित शब्दों का विस्तृत अध्ययन किया है । प्रस्तुत इकाई में तत्पुरुष समास, से सम्बन्धित प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ बताया गया है ।

तत्पुरूष समास का प्रारम्भ तत्पुरूष: सूत्र से होता है । वस्तुत: यह सभी विभक्तियों में बनने वाला समास होता है । अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रथमा से लेकर सप्तमी तक के समासों से सम्बन्धित प्रयोगों की सिद्धि का ज्ञान समासों की प्रकृति भी बता सकेंगे साथ ही इनमें सिद्ध होने वाले उदाहरणों को भी बतायेंगे ।

3.2 उद्देश्य

सूत्रों की व्याख्या, प्रयोगसिद्धि एवं सहायक सूत्रों के वर्णन से सम्बन्धित तत्पुरुष, समास की इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप यह बता सकेंगे कि –

1. तत्पुरूष समास किसे कहते हैं ।
2. समास शास्त्र में इसके लिये कितने सूत्रों का प्रयोग किया गया है ।
3. तत्पुरुष में किन – किन उद्धरणों का समावेश है ।
4. अलुक समास की परिभाषा एवं उसका स्वरूप विस्तार क्या है ।

3 .3 तत्पुरुष: सूत्र से सप्तमी शौण्डै:सूत्र तक व्याख्या

925 . **तत्पुरुष**: 2/1/22

अधिकारोयं प्राग् बहुव्रीहे:।

यह अधिकार सूत्र है । सूत्र का शब्दार्थ है कि- (तत्पूरुष:) तत्पुरुष होता है । इस सूत्र का अधिकार 'क्त्वा च' 2.2.22 तक चलता है । 'प्राक्कडारात् समास:' 2/1/3/ का भी यहॉं पर अधिकार हैं अत: सूत्र का भावार्थ यह होगा- 'तत्पुरुष:' सूत्र से होकर 'कत्वा च' तक के सूत्रों से जो समास निर्मित होता है, उसे तत्पुरुष समास कहते है ।

926 . **द्विगुश्च** /2/1/23

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञक: स्यात् । प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (च) और (द्विगु:) द्विगु…..। सूत्रकी अनुवृत्ति करनी पड़ती है। जिस समास का पूर्वपद संख्या-विशेष -वाची होता है उसे द्विगु कहते है अत: भावार्थ होगा- द्विगु भी तत्पुरूष संज्ञक होता है।

927 . **द्वितीया श्रितातीत –पतित-गतात्यस्त–प्राप्तापन्नै**: /2/1/24

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकै: सुबन्तै: सह समस्यते वा, स च तत्पुरुष:। कृष्णाश्रित:- कृष्णश्रित:,

सूत्र का स्पष्टार्थ है कि – द्वितीया विभक्ति से अन्त होने वाले (द्वितीयान्त) सुबन्त पद का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त (फेंका हुआ), प्राप्त तथा आपन्न (पड़ा हुआ), इन सात प्रातिपदिकों के द्वारा बने हुए सुबन्त के साथ जो समास होता है वह द्वितीया तत्पुरुष समास कहलाता है। इस तत्पुरुष समास में प्रथम पद द्वितीयान्त होता है और उसके साथ इन सात प्रातिपदि को से बने शब्द को उत्तरपद के रूप में ग्रहण करके समास बनाया जाता है। प्रत्येक के

उदाहरण निम्नलिखित हैं।

1. **श्रित** –'कृष्णं श्रित:' कृष्ण के आश्रित इस विग्रह में द्वितीया विभक्ति से अन्त में होने वाले 'कृष्ण' पद का सुबन्त 'श्रित:' के साथ द्वितीयाश्रितातीत0 इत्यादि सूत्र से समास होकर प्रथमा एकवचन में कृष्णश्रित: रूप बनेगा।

2. **अतीत**- (बीता हुआ) दुखम् अतीत: इति दुखातीत:। (दुख को पार कर गया) इस विग्रह में द्वितीयान्त 'दु:खम्' का सुबन्त पद 'अतीत:' पद के साथ समास होगा।

3. **पतित**- (गिरा हुआ) नरकं पतित: नरकपतित: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद 'नरकम्' का सुबन्त पद पतित: के साथ समास बनाकर नरकपतित: रूप सिद्ध होगा।

4. **गत**- (गया हुआ) स्वर्गं गत: स्वर्गगत: इस विग्रह में 'स्वर्ग' द्वितीयान्त है तथा गत: पद सुबन्त है अत: द्वितीयान्त प्रातिपदिक स्वर्गम् का गत: सुबन्त के साथ प्रकृत सूत्र से द्वितीया तत्पुरुष समास होकर स्वर्गगत: रूप बनेगा।

5. **अत्यस्त**- (फेंका हुआ) कूपम् अत्यस्त: कुपात्यस्त: इस विग्रह के अनुसार द्वितीयान्त पद कुपम् का सुबन्त 'अत्यस्त' के साथ समास होकर कुपात्यस्त: प्रयोग होगा।

6. **प्राप्त**-(पाया हुआ) सुखम् प्राप्त: सुखप्राप्त: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद सुखम् के साथ सुबन्त पद 'प्राप्त:' का समास होकर सुखप्राप्त: प्रयोग बनेगा।

7. **आपन्न**- संकटम् आपन्न: संकटापन्न: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद 'संकटम्' का 'आपन्न:' सुबन्त के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास होकर संकटापन्न: प्रयोग सिद्ध होगा।

प्रक्रिया के उदाहरण स्वरूप एक प्रयोग नीचे द्रष्टव्य है-

'कृष्णं श्रित:' लौकिक विग्रह तथा 'कृष्ण अम् श्रित सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'द्वितीयाश्रितातीतपतितगताऽत्यस्त–प्राप्तापन्नै:' इस सूत्र से द्वितीय तत्पुरूष समास होगा। इस दशा में प्रथमान्त का बोध होने से 'प्रथमानिर्दिष्टम् समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होगी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर ही कृष्ण अम् श्रित सु हुआ है। इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से अम् तथा सु का लोप होकर-कृष्णश्रित बना। प्रथमा एकवचन में कृष्णश्रित सु होकर अनुबन्ध लोप होने पर कृष्णश्रित स् हुआ। पुन: स को रु आदेश तथा विसर्ग कार्य करने पर कृष्णश्रित: प्रयोग सिद्ध होगा।

928 . **तृतीया तत्कृतार्थेनगुण वचनेन- तृतीयान्त तृतीयान्तार्थकृत- गुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत्। शंकुलया खण्ड:- शंकुलाखण्ड:। धान्येनार्थो धान्यार्थ:। तत्कृतेति किम्- अक्षणा काण:।**

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि – (तृतीया) तृतीया विभक्ति (तत्कृतार्थेन) उसके द्वारा किए गये और 'अर्थ (गुणवचनेन) गुणवाचक से ....। सूत्र अपूर्ण है, इसलिए इसका तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता है। इस सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए अधिकारसूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' 2/1/3/ तथा 'सह सुपा' 2/1/4 तथा तत्पुरुष: 2/1/22/ की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉं पर 'तत्' का अभिप्राय सूत्रस्थ 'तृतीया' से है। इस प्रकार 'तत्कृतम्' का अर्थ है- तृतीया के द्वारा किया हुआ। इसका (सूत्र का) अन्वय 'गुणवचनेन'से होता है न कि 'अर्थेन' से होता है। यहॉं पर 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा से पूर्ववत् 'तृतीया' में तदन्त-विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा-तृतीया से अन्त होने वाले सुबन्त का उसके द्वारा किए गये गुणवाची प्रातिपदिक के सुबन्त और अर्थ प्रातिपदिक के साथ समास होता है इसीलिए इस समास को

'तत्पुरुष' समास कहते हैं। उदाहरणस्वरूप-

शंकुलाखण्ड: (सरौते से किया गया टुकड़ा) - 'शड्.कुलया खण्ड:' इस लौकिक विग्रह तथा 'शड्.कुला टा खण्ड सु: इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'तृतीयातत्कृतार्थेन0' सूत्र से तृतीया शब्द प्रथमान्त होने के कारण समास होगा और तृतीयान्त पद शड्.कुलया की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा और 'उपसर्जनंपूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर ही 'शड्.कुला टा खण्ड सु' हुआ अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो' सूत्र से सुप् विभक्तियो का लोप होकर 'शड्.कुला खण्ड' प्रातिपदिक बना। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय होकर और विभक्ति कार्य करने पर 'शड्.कुलाखण्ड' रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार 'धान्येन अर्थ:' लौकिक तथा 'धान्य टा अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में धान्यार्थ:प्रयोग बनेगा।

प्रस्तुत सूत्र में तत्कृत इसलिए कह दिया गया है कि जब तृतीयान्त गुणवाची शब्द के साथ समास बने तो वह गुण उस तृतीयान्त अर्थ के द्वारा ही कृत हो ।'शड्.कुलाखण्ड:' में खण्ड गुणवाची है। जो तृतीयान्त अर्थ वाले शड्.कुला द्वारा कृत है किन्तु 'अक्ष्णाकाण:' (ऑख से कॉना) में 'काणत्व' गुण अक्ष के द्वारा उत्पन्न नहीं हैं किसी रोग या चोट के द्वारा कृत है। इसीलिए इस सूत्र के द्वारा 'अक्ष्णाकाण:' में समास नहीं होगा।

929 . **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** /2/1/32

कृर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रात: - हरित्रात:, नखैर्भिन्न: नखभिन्न:।

(प0) कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापिग्रहणम् ।

सूत्र का स्पष्टार्थ है कि- कर्ता और करण के अर्थ में वर्तमान तृतीयान्त सुबन्त पद का सुबन्त कृदन्त के साथ बहुलता (विकल्प) से समास होता है तो उसे तत्पुरूष समास कहते है। जैसे-

हरित्रात: - लौकिक विग्रह 'हरिणा त्रात:' और अलौकिक विग्रह 'हरि टा त्रात सु' के अनुसार 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से समास होगा । सूत्र में तृतीया की अनुवृत्ति होने से तृतीयान्त पद की उपसर्जन संज्ञा हुयी और 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व में प्रयोग रहेगा । इस स्थिति में 'सुपो धातु प्रातिपदिकयो:' सूत्र से टा और सु का लोप हुआ- हरित्रात । इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु की प्राप्ति और विभक्ति कार्य करने पर हरित्रात: में हरि कर्ता है और त्रा धातु से क्त प्रत्यय कृदन्त त्रात: है इसलिए कर्ता के अर्थ में समास हुआ है।

नखभिन्न: नखैर्भिन्न: 'लौकिक तथा 'नखभिस् भिन्न सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार करण अर्थ में 'कर्तृकरणे कृताबहुलम्' सूत्र से समास होगा और 'तृतीयातत्कृतार्थेन गुणवचनेन' सूत्र से तृतीया की अनुवृत्ति होने पर तृतीया प्रथमान्त द्वारा निर्दिष्ट होने पर उपसर्जन संज्ञा तथा पूर्व में प्रयोग होने पर –'नख भिस् भिन्न सु' ही हुआ । प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु की प्राप्ति तथा विभक्ति कार्य करने पर 'नखभिन्न:' प्रयोग सिद्ध हुआ ।

कृत के ग्रहण में गति कारक पूर्व का भी ग्रहण होता है। तात्पर्य यह है कि कर्ता और कारण के अर्थ में तृतीयान्त सुबन्त का गति कारक पूर्व कृदन्त के साथ भी समास बनता है जैसे- 'नखैर्निर्भिन्न:' इस विग्रह में गति –'निर्' पूर्वक कृदन्त 'भिन्न:' के साथ 'नखै:' का समास होकर'नखनिर्भिन्न:' प्रयोग होता है।

930 . **चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितै**: 2/1/36/

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् यूपाय दारू यूपदारू। तदर्थेन प्रकृतिविकृतभाव एचेष्ट: तेनेह न रन्धनाय स्थाली ।

(वा0) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम । द्विजार्थ: सूप: । द्विजार्थो युवागू:। द्विजार्थम् पय: । भूतबलि: । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।

प्रस्तुत सूत्रका शब्दार्थ यह है कि- चतुर्थी (चतुर्थी) (तदर्थार्थ-रक्षितै:) तदर्थ, अर्थ बलि-हित-सुख और रक्षित से ....। यहॉं पर क्या होता है? यह सूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' सूत्र2/1/3 तथा 'सह सुपा' 2/1/4 सूत्र से एवं 'तत्पुरुष:' 2/1/22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा सूत्र से 'चतुर्थी विभक्ति' में तदन्त विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा-चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले सुबन्त का तदर्थवाचक, अर्थ बलि-हित-सुख और रक्षित –इस छ: प्रकार के प्रातिपदिक का सुबन्त के साथ समास होता है। इसीलिए इसको 'तत्पुरुष' समास कहते है। इनके उदाहरण इस प्रकार है-

1. **तदर्थवाचक**- सूत्र में 'तद्' से चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले सुबन्त का ग्रहण होता है। तदर्थ का अर्थ होगा-चतुर्थी से अन्त होने वाले सुबन्त के लिए ।सूत्र का तात्पर्य यह है कि चतुर्थ्यन्त सुबन्त के लिए जिस सुबन्त का प्रयोग किया जाता है तथा उसके वाचक प्रातिपदिक के सुबन्त के साथ उस चतुर्थी से अन्त होने वाले सुबन्त का समास होता है किन्तु यहॉं पर ध्यातव्य है कि चतुर्थ्यन्त सुबन्त और तदर्थवाचक सुबन्त में प्रकृत-विकृतभाव होना चाहिए तभी यह समास हो सकता है। जैसे – यूपाय दारू में यूप विकृति है तथा दारू प्रकृति है दारू (लकड़ी) से ही यूप (खॅाटा) बना हैं 'रन्धनाय स्थाली' में भी तदर्थवाचक सुबन्त स्थाली तो है किन्तु स्थाली से रन्धन न बनने के कारण प्रकृति-विकृतिभाव के आभाव में समास नहीं होता है।

2. '**अर्थ' पद के साथ समास**- यहॉं पर किसी पद का अन्त चतुर्थीविभक्ति से होता है वहॉं पर 'अर्थ' पद के साथ समास होताहै।जैसे द्विजार्थ:द्विजाय अर्थ: द्विजार्थ:।

द्विजार्थ: - 'द्विजाय अर्थ: द्विजार्थ:' इस लौकिक तथा 'द्विज ङे अर्थ सु' अलौकिक विग्रह की दशा में 'चतुर्थीतदर्थार्थ –बलि-हित-सुख –रक्षितै:' सूत्र से समास होगा । चतुर्थी तदर्थार्थ –बलि-हित-सुख-रक्षितै:' सूत्र से होगा। चतुर्थी शब्द का यहॉं पर प्रथमा में है इसलिए 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा हुई तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धतुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङे और सु विभक्ति का लोप होकर 'द्विजार्थ' रूप सिद्ध होता है। प्रस्तुत सूत्र में वार्त्तिक'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम्' से चतुर्थ्यन्त पद का 'अर्थ' पद के साथ नित्य समास होता है तथा लिंग विशेष्य के लिंग के अनुसार समस्त पद का समास होता है। यहॉं पर तीनों लिंगों के उदाहरण इस प्रकार है-

(क) **पुल्लिंग**- द्विजार्थ: सूप: (द्विज के लिए सूप)

(ख) **स्त्रीलिंग**-द्विजार्थ: पय: (द्विज के लिए लप्सी)

(ग) **नपुंसकलिंग**- द्विजार्थ: पय: (द्विज के लिए दूध)

3. '**बलि' पद के अर्थ में समास**- बलि अर्थ में भूतबलि: समास होता है जो इस प्रकार है-

भूतबलि:- (प्राणियों के लिए उपहार) लौकिक विग्रह 'भूताय बलि:' तथा 'भूत ङे बलि सु' इस अलौकिक विग्रह में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलि-हित-सुख-रक्षितै:' सूत्र से चतुर्थ्यन्त भूत का बलि शब्द के साथ समास हुआ । इस दशा में 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से चतुर्थी वाले पद की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग हुआ तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङे और सु विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'भूतबलि'

हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विभक्ति कार्य आदि करने पर 'भूतबलि:' प्रयोग सिद्ध होता है।

4. **हित पद के अर्थ में समास-गोहितम्-**

गोहितम्-'गोभ्य: हितम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'गो भ्यस् हित सु' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै:' सूत्र से चतुर्थ्यन्त गो शब्द से हित पद का समास होगा। इस दशा में 'प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपकियो:' सूत्र से भ्यस् और सु विभक्तियों का लोप होकर 'गोहित' बना। अब 'परवल्लिंगं द्वन्द तत्पुरुषयो:' से नपुंसकलिंग रुप 'गोहितम्' सिद्ध होता है।

5. **सुख पद के अर्थ में समास-**

गोसुखम्- लौकिक विग्रह 'गोभ्य:सुखम्' तथा 'गो भ्यस् सुख सु' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै:' सूत्र से समास होगा। उपसर्जन संज्ञा होकर पूर्व में प्रयोग हुआ तथा 'सुपो धातु प्रातिपदिकयो:' सूत्र से भ्यस् और सु लोप होकर 'गोसुख' बना अब 'परवल्लिंगं द्वन्दतत्पुरुषयो:' सूत्र से नपुंसकलिंग होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु आदि विभक्ति प्रत्यय आने पर नपुंसकलिंग में अम् आदेश होकर 'गोसुखम्' रूप सिद्ध होता है।

6. **रक्षित पद के अर्थ में समास-**

गोरक्षितम्- 'गोभ्य: रक्षितम्' लौकिक विग्रह तथा 'गो, भ्यस् रक्षित सु' इस अलौकिक विग्रह में 'चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै:' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ उपसर्जन संज्ञा होकर पूर्व में प्रयोग हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय भ्यस् एवं सु का लोप होकर 'गोरक्षित' बना। 'परवल्लिंगं द्वन्द तत्पुरूषयो:' सूत्र से नपुंसकलिंग होकर प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति होने पर नपुंसकलिंग होकर अम् आदेश होने पर 'गोरक्षितम्' प्रयोग सिद्धहोता है।

'पञ्चमी तत्पुरुष समास'

931 . **पञ्चमी भयेन** /2/3/37

चोराद् भयम् चोरभयम्

सूत्र का शब्दार्थ है कि –(पन्चमी) पन्चमी वि0 (भयेन) भय से .....। यहॉं पर सूत्र स्पष्ट नहीं होता है कि क्या होता है कि क्या होता है ? इसको ठीक-ठीक समझने के लिए अधिकार-सूत्र 'प्राक्कडारात्समास:' 2/1/3 'सह सुपा' 2/1/4 तथा 'तत्पुरुष: 2.1.22 की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। पन्चमी के पूर्व तदन्त-विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा-'पन्चमी' से अन्त सुबन्त का 'भय' प्रातिपदिक सुबन्त के साथ समास होता है इसलिए इसे तत्पूरुष समास कहते है। उदाहरण-

चोरभयम्- 'लौकिक विग्रह चोराद्भयम्' तथा अलौकिक विग्रह 'चोर ङसि भय सु' की दशा में 'पन्चमी भयेन' सूत्र से समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङसि और सु विभक्ति का लोप होकर 'चोरभय' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विभक्ति आदि कार्य करने पर 'चोरभयम्' रूप सिद्ध होता है।

932 .**स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छाणि-क्तेन** /2/1/39

सूत्र का शब्दार्थ है कि – (स्तोकान्तिक-कृच्छाणि) स्तोक, अन्तिक, दूरार्थ और कृच्छ (क्तेन) 'क्ते' प्रत्यय से ... । सूत्र का स्पष्टीकरण नही होता है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए अधिकार सूत्र 'प्राक्कडारात् समास' 'सह सुपा' तथा 'तत्पुरूष:' सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉ पर 'पन्चमी भयेन' सूत्र से 'पन्चमी' की भी अनुव्रृत्ति करनी पड़ेगी सूत्रका भावार्थ होगा-स्तोक (थोडा) अन्तिक (समीप) दूरार्थवाचक (दूरी का अर्थ बताने वाला) और कृच्छ (कष्ट)-इन चार प्रातिपदिको के पन्चम्यन्त सुबन्त का 'क्त' प्रत्ययान्त के सुबन्त के साथ समास होता है इसलिएइस समास को तत्पुरूष कहा जाता है।

933 . **पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:** / 6 / 3 / 2 /**अलुग् उत्तरपदे**/ **स्तोकान्मुक्त:** /**अन्तिकादागत:**/ **अभ्याशादागत:**/ **दूरादागत:**/ **कृच्छादागत:**/

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि (स्तोकादिभ्य:) स्तोक आदि से परे (पन्चम्या:) पंचमी विभक्ति का ......। किन्तु क्या होता है यहॉं पर यह बात सपष्ट नहीं है। सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए अधिकार सूत्र 'अनुगुत्तरपद' 6/3/1/ की अनुवृत्ति करनी पड़ति है। 'स्तोक' आदि में पूर्वोक्त स्तोक, अन्तिक, दूरार्थवाचक और कृच्छ इन चार प्रातिपदिकों का ग्रहण होता है। सूत्र का भावार्थ है- उत्तरपद के परे रहने पर स्तोक, अन्तिक, दुरार्थवाचक और कृच्छ इन चार प्रातिपदिकों के पश्चात् पन्चमी विभक्ति (ङसि) का लोप नहीं होता है ।

स्तोकान्मुक्त: -लौकिक विग्रह' स्तोकातद्यमुक्त:' तथा 'स्तोक ङसि मुक्त सु' इस अलौकिक विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से स्तोक पन्चम्यन्त का मुक्त: क्तप्रत्ययान्त के साथ पन्चमी तत्पुरूष समास होगा। इस दशा में 'पन्चमी तत्पुरूश समास होगा। इस दशा में 'पन्चमी भयेन' सूत्र से पन्चमी की अनुवृत्ति करनेपर 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पन्चम्यन्त स्तोकात् पूर्वपद होगा । इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से पन्चमी ङसि का लोप नही होगा । स्तोक से परे ङसि को आत् आदेश होकर स्तोकातमुक्त होगा। अब 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' से त को न् = स्तोकान्मुक्त । प्रथमा एकवचन में सु विभक्तिप्रत्यय करने पर तथा विभक्ति प्रत्यय करने पर तथा विभक्ति आदि करने पर 'स्तोकान्मुक्त:' प्रयोग सिद्ध होता है ।

अन्तिकादागत: - लौकिक विग्रह अन्तिकात् आगत: तथा 'अन्तिक ङसि आगत सु' अलौकिक विग्रह की दशा में पन्चम्यन्त अन्तिम का क्त प्रत्ययान्त आगत् के साथ 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन'सूत्र से पन्चमी तत्पुरूष समास होगा । उपसर्जन संज्ञा होने पर पूर्व प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से ङसि और सु विभक्तियों का लोप प्राप्त हुआ किन्तु उस में ङसि का 'पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:' सूत्रसे लोप नहीं होगा। ङसि को आत् आदेश होकर अन्तिकात आगत: हुआ, त् को जश् (तृतीय वर्ग) होकर अन्तिकादागत: प्रयोग सिद्ध होता है ।

दूरादागत: - लौकिक विग्रह 'दूरात् आगत:' तथा अलौकिक विग्रह 'दूर ङसि आगत सु' को दशा में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनंपूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होकर 'सूपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुद् का लोप होकर दूरात् हुआ किन्तु 'पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:' सूत्र से लोप न होकर 'दूरात् आगत' हुआ । त् को जश् द् होने पर दूरादागत प्रथमा एकवचन

की विवक्षा में विभक्ति प्रत्यय सु लगाने पर दूरादागत: प्रयोग सिद्ध होता है।

ठीक इसी प्रकार 'अभ्याशात् आगत:' विग्रह तथा 'अभ्यास् ङसि आगत सु' अलौकिक विग्रह की दशा में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से समास होगा। उपसर्जन संज्ञा तथा पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:'सूत्र से सुप् का लोप हुआ किन्तु 'पन्चम्या:स्तोकादिभ्य:' सूत्र से लोप न होकर-अभ्याशात् के त् को द् होकर 'अभ्याशादागत' बना। प्रथमाएकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय होकर 'अभ्याशादागत:' प्रयोग सिद्ध होता है।

कृच्छादागत: - (कष्ट से आया हुआ)- 'कृच्छात् आगत:' लौकिक विग्रह तथा कृच्छ ङसि आगत सु' इस अलौकिक विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छाणि क्तेन' सूत्र से समास होगा। उपसर्जन संज्ञा तथा पूर्व में प्रयोग होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्रसे ङसि और सु का लोप प्रापत हुआ किन्तु 'पन्चम्या: स्तोकादिभ्य:' सूत्र से ङसि और सु का लोप नहीं होगा- कृच्छादागत हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होकर विभक्ति आदि कार्य करने पर 'कृच्छागत:' पन्चमी तत्पुरूष समास सिद्ध हुआ।

934 . **षष्ठी** /2/2/8

सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुष:

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि- (षष्ठी) षष्ठी विभक्ति.......। किन्तु यहॉ पर क्या होता है? यह स्पष्ट नहीं है, यह जानने के लिए अधिकार सूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' 2/1/3 तथा 'सह सुपा' 2. 1.4 सूत्र एवं 'तत्पुरूष' 2.1.22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा सूत्र से सूत्रस्थ 'षष्ठ' में तदन्त विधि हो जाती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- षष्ठी से अन्त होने वाले सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है और उसे तत्पुरुष समास कहते है। उदाहरण के लिए-

राजपुरुष: - लौकिक विग्रह 'विग्रह'राज्ञ: पुरुष:' तथा अलौकिक विग्रह 'राजन् ङस पुरुष सु' की दशा में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठ्यन्त राजन् का सुबन्त 'पुरुष:' से समास होगा। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्तियों का लोप हुआ तथा 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न् का लोप होकर 'राजपुरुष' हुआ। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति प्रत्यय करने पर 'राजपुरुष:' प्रयोग सिद्ध होता है।

935 . **पूर्वाऽपराऽ धरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** 2/2/1/ अवयविना सह पूर्वादय: समस्यन्ते, एकत्व संख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्टीसमासाऽपवाद: पूर्वं कायस्य पूर्वकाय:। उपरकाय:। एकाधिकरणे किम्? -पूर्वश्छात्राणाम्।

सूत्र का शब्दार्थ यह है कि- (पूर्वाऽपराऽधरोत्तरम्) पूर्व , अपर, अधर और अधर (एकाधिकरणे) एकत्व अर्थ में .....। इस बात से सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता है, सूत्र को ठीक-ठीक से समझने के लिए 'प्राक्कडारात्समास: 2.1.3, 'सह सुपो' 2.1.4 तथा 'तत्पुरूष: 2.1.22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ति है। यहॉ पर 'एकाऽधिकरणे' एकदेशी का विशेषण है तथा एकदेशी का अर्थ है- अवयवी। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा- इन चार प्रातिपदिकों का क्रमश: पूर्व, पर अधर, उत्तर सुबन्त का एकत्ववाचक अवयवी के सुबन्त के साथ समास होता है तथा उस समास को तत्पुरुष समास कहते हैं।

सूत्र में विशेष रूप से ध्यातव्य यह है कि यह 'षष्ठी' 931 सूत्र का बाधक है, तात्पर्य यह है

कि यदि 'षष्ठी से समास होता तो षष्ट्यन्त पद का प्रयोग पूर्व में होता किन्तु प्रस्तुत सूत्र से समास करने पर प्रथमान्त शब्द 'पूर्व'आदि का प्रयोग पूर्व में ही हो जाता हैं, इसलिए इसी पूर्व प्रयोग के लिए प्रस्तुत सूत्र की आवश्यकता पड़ी। उदाहरण के लिए-

पूर्वकाय:- 'पूर्वं कायस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'पूर्व सु काय ङस्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में पूर्वाऽपराऽधरात्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' सूत्र से अवयव वाचक पूर्व शब्द का अवयवी (काय) शब्द के एकवचन में होने से समास होगा। यहॉ पर पूर्वाऽपराऽधरोत्तरम्' प्रथमा द्वारा निर्दिष्ट है अत 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से पूर्व की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होगा इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों सु तथा ङस् का लोप होगा पूर्वकाय। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आने पर 'पूर्वकाय:' समास सिद्ध होता है।

अपरकाय: - 'अपरं कायस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'अपर सु काय ङस' इस अलौकिक विग्रह में अपर अव्यय तथा काय अवयवी है तथा अवयवी कार्य प्रथमा एकवचन में है अत: 'पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकारणे' सूत्र से तत्पुरूष समास होगा। प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से प्रथमान्त अपर की उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग हुआ। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से 'सु' और 'ङस' विभक्ति प्रत्यय करने पर 'अपरकाय' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय करने पर अपरकाय: प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अधरकाय: तथा उत्तरकाय: प्रयोग भी सिद्ध होता है। प्रस्तुत सूत्र में 'एकाधिकरणे किम्?' का तात्पर्य है कि यदि अवयवी एकत्ववाचक या एकवचनान्त नहीं होगा तो समास नहीं होगा जैसे- पूर्वश्छात्राणाम्। 'पूर्वछात्राणाम्' में अवयवी 'छात्राणाम्'के बहुत्ववाचक होने के कारण समास नहीं होता है।

936 . **अर्धं नपुंसकम्** /2/2/2

समासवाची-अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, से प्राग्वत् अर्धं पिप्पल्या:-अर्धपिप्पली।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि - (नपुंसकम्) नपुंसक (अर्धम्) 'अर्ध' ...। किन्तु इससे सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता। इसे ठीक-ठीक समझने के लिए 'प्राक्कडारा त् समास:' 'सह सुपा' तथा 'तत्पुरुष' सूत्र की अनुवृत्ति भी करनी पड़ती है। तब सूत्र का भावार्थ होगा- नपुंसकलिंग 'अर्ध'(बराबर भाग) प्रातिपदिक के सुबन्त का एकत्वबोधक अवयवी वाचक सुबन्त के साथ समास होगा और उस समास को तत्पुरुष समास कहते हैं। विशेष ध्यातव्य है कि यह सूत्र 'षष्ठी' 931 सूत्र का बाधक है। जैसे -

अर्धपिप्पली- लौकिक विग्रह'अर्धं पिपल्या:' तथा अलौकिक विग्रह 'अर्ध अम् पिप्पली ङस्' में अर्धं नपुंसकम्' सूत्र प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट है अत: प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 'सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा हुयी तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रतिपदिकयो:' सूत्र से सु और ङस विभक्ति प्रत्ययों का लोप हुआ- अर्धपिप्पली। इस इशा में प्रथमा एकवचनकी विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर अर्धपिप्पली। इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर अर्धपिप्पली प्रयोग सिद्ध होता है।

937 . **सप्तमी शौण्डै**: /2/1/40

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभि: प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्ड: अक्षशौण्ड: । इत्यादि । द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेय: ।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि (सप्तमी) सप्तमी विभक्ति (शौण्डै:) 'शौण्ड' आदि से ......। किन्तु क्या होता है यहॉं पर, सूत्र से स्पष्ट नही होताहै । इसे ठीक-ठीक जानने के लिए 'प्राक्कडारात् समास:' 2/3/3 तथा 'सह सुपा' 2.1.4 सूत्र एवं 'तत्पुरूष:' 2.1.22 सूत्र की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉं पर 'शौण्ड' आदि से शौण्ड, धूर्त, कितव, व्याड और प्रवीण आदि का ग्रहण होता है जिनका पाठ शौण्डादिगण में हुआ है। सूत्र में 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' परिभाषा से अन्त होने वाले सुबन्त का 'शौण्ड' (चतुर) आदि सुबन्त के साथ समास होता है तथा उस समास का तत्पुरूष समास कहते है। जैसे

अक्षशौण्ड: - लौकिक विग्रह 'अक्षेषु शौण्ड:' तथा 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' इस अलौकि विग्रह की दशा में 'सप्तमी शौण्डै:' सूत्र से सप्तमी तत्पुरूष समास होगा। 'सप्तमी प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट है अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा होकर 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होगा । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'अक्षशौण्ड' हुआ। इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रत्यय होकर अक्षशौण्ड:' प्रयोग सिद्ध होता है।इसी प्रकार 'अक्षकित्व:' तथा अक्षधूर्त: प्रयोग भी बनते है।

अभ्यास के प्रश्न

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए –

1.तत्पुरुष का अधिकार कहॉं तक चलता है –

क.केवल तक ख. द्वन्द्व तक

ग. द्विगु तक घ . बहुव्रीहि तक

2. श्रित शब्द का अर्थ है –

क. आश्रित ख. पतित

ग. सरित घ . कोई नहीं

3. अत्यस्त का क्या अर्थ है –

क.गिरा हुआ ख. फेंका हुआ

ग. पड़ा हुआ घ . अस्त

4 .तत्पुरुष समास के कितने भेद होते है –

क. तीन ख.दो

ग.एक घ . चार

5 . शंकुलाखण्ड: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. **तत्पुरुष:** ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

6 . धान्यार्थ: किस सूत्र का उदाहरण है –

क. **तत्पुरुष:** ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

7 . तत्पुरुष समास का भेद है –

क. **तत्पुरुष:** ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

8 . चोराद् भयम् किस सूत्र का उदाहरण है –

क**. तत्पुरुष:** ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

9. राजपुरुष: किस सूत्र का उदाहरण है –

क**. षष्ठी** ख.द्विगुश्च

ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन घ .पञ्चमी भयेन

10. अक्षशौण्ड: किस सूत्र का उदाहरण है –

क**. तत्पुरुष:** ख.द्विगुश्च

ग. सप्तमी शौण्डै: घ .पञ्चमी भयेन

3 .4 **सारांश**

तत्पुरूष समास विभक्तियों में बनकर सहपुरूष:, तं पुरूषं, तेन पुरूषेण - तया, तस्मै पुरूषाय, तस्मात् पुरूषात्, तस्य पुरूषस्य, तस्मिन् पुरूषेषु इत्यादि रूपों में अनेक प्रकार के उद्धरणों को सिद्ध करता है, जिसमें वार्तिक भी सहायक होते है। इसी क्रम में यस्मात् प्रथमा विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक के आने वाले विभिन्न प्रयोजन को सूत्रानुसार निर्मित करता है। कर्मधारय भी वस्तुत: पृथक समास है। फिर भी इसे तत्पुरूष के स्वभाव में सम्मिलत करते हुये उसके भेद के रूप में स्वीकार किया गया। यह उपमान समास है। इसमें दो पदों के अन्दर उपमान का समास निर्धारित किया जाता है। तत्पुरूष में कतिपय प्रयोग समासान्त प्रत्यय के साथ सिद्ध होते है। यथा अवसर उनके उदाहरण भी इस इकाई में दिये गये है। अत: प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप इन समासों में बनने वाले प्रयोगों की सम्यक् जानकारी प्राप्त कर सूत्रों की व्याख्या को बताने में सक्षम हो सकेंगे।

3.5 **शब्दावली**

1. **तत्पुरूष**-वस्तुत:यह शब्द संस्कृत व्याकरण की प्रकृति के अनुसार समास में प्रयुक्त है।
इसमें सम्बन्ध का ज्ञान करण के लिये विभिन्न विभक्तियों उद्धरणों के साथ प्रयोग किया जाता है

1. **श्रित** –‘कृष्णं श्रित:’ कृष्ण के आश्रित इस विग्रह में द्वितीया विभक्ति से अन्त में होने वाले ‘कृष्ण’ पद का सुबन्त ‘श्रित:’ के साथ द्वितीयाश्रितातीत0 इत्यादि सूत्र से समास होकर प्रथमा एकवचन में कृष्णश्रित: रूप बनेगा।

2. **अतीत**- (बीता हुआ) दुखम् अतीत: इति दुखातीत:। (दुख को पार कर गया) इस विग्रह में द्वितीयान्त ‘दु:खम्’ का सुबन्त पद ‘अतीत:’ पद के साथ समास होगा।

3. **पतित**- (गिरा हुआ) नरकं पतित: नरकपतित: इस विग्रह में द्वितीयान्त पद ‘नरकम्’ का सुबन्त पद पतित: के साथ समास बनाकर नरकपतित: रूप सिद्ध होगा।

3 .6 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

1. घ . बहुव्रीहि तक
2. क**.** आश्रित
3. ख**.** फेंका हुआ
4. ख.दो

5 . ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन

6 .ग. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन

7 . ख.द्विगुश्च

8 . घ .पञ्चमी भयेन

9. क**. षष्ठी**

10. ग. सप्तमी शौण्डै:

3.7 **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

3.9 **निबन्धात्मक प्रश्न**

1. तत्पुरूष समास से सम्बन्धित किन्हीं दो सूत्रों के उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

इकाई 4 . दिक्संख्ये संज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4 .1 प्रस्तावना

4 .2 उद्देश्य

4 .3 दिक्संख्ये संज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च तक व्याख्या

4 .4 सारांश

4 .5 शब्दावली

4 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4 .7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4 .8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

, द्वन्द्व कर्मधारय, द्विगु आदि समासों में प्रयुक्त सूत्रों तथा उनके विभिन्न उदाहरणों की प्रयोग सिद्धि स्वरूप व्याख्या से सम्बन्धित यह इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने तत्पुरुष समास, के वर्णन में सातों विभक्तियों से बनने वाले उद्धरणों के अध्ययन के साथ – साथ सातों विभक्तियों प्रयोगों आदि से निर्मित शब्दों का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में कर्मधारय समास , द्विगु, समास, से सम्बन्धित प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ बताया गया है। कर्मधारय समास का प्रारम्भ तत्पुरूष: समानाधिकरण: कर्मधारय: सूत्र से होता है। वस्तुत: यह सभी विभक्तियों में बनने वाला समास होता है। किन्तु इसी के वर्णन क्रम में तत्पुरूष के भेद के रूप में कर्मधारय समास और कर्मधारय के भेद के रूप में द्विगु समास तथा च के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला द्वन्द समास ही वर्णित है। नकारात्मकता के अर्थ में तत्पुरूष समास के अन्तर्गत आने वाले प्रयोगों के व्याख्यात्मक वर्णन इस इकाई में सूत्रों के अनुसार किये गये है। तत्पुरूष समास का स्वभाव विस्तारवादी है।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रथमा से लेकर सप्तमी तक के समासों से सम्बन्धित प्रयोगों की सिद्धि का ज्ञान कर द्वन्द और द्विगु आदि समासों की प्रकृति भी बता सकेंगे साथ ही इनमें सिद्ध होने वाले उदाहरणों को भी बतायेंगे।

4.2 उद्देश्य

सूत्रों की व्याख्या, प्रयोगसिद्धि एवं सहायक सूत्रों के वर्णन से सम्बन्धित तत्पुरूष, कर्मधारय, द्विगु, द्वन्द समास की इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप यह बता सकेंगे कि –

1. द्विगु समास किसे कहते है।
2. द्विगु समास में किन – किन उद्धरणों का समावेश है।
3. कर्मधारय समास की परिभाषा एवं उसका स्वरूप विस्तार क्या है।
4. कर्मधारय का भेद , द्विगु समास किन सूत्रों में वर्णित है।
5. द्वन्द समास का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है।

4 .3 दिक्संख्ये संज्ञायाम् सूत्र से अर्धर्चा: पुंसि च सूत्र तक व्याख्या

938 . **दिक्संख्ये संज्ञायाम्** /2/1/50

पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षय:। संज्ञायामेवेति नियमार्थ सूत्रम् तेनेह न-उत्तरा सृक्षा: पंच ब्राह्मणा:।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है कि (संज्ञायाम्) संज्ञा के विषय में (दिक्संख्ये) दिशा में संख्या ...। किन्तु इससे सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता है, सूत्र को ठीक-ठीक समझने के लिए अधिकार सूत्र 'प्राक्कडारात् समास:' 'सह सुपा' तथा 'तत्पुरुष' सूत्र एवं 'पूर्वकालैकसर्वजरत्' -0 'दिशा' और 'संख्या' में दिशावाचक एंव संख्यावाचक शब्दों का ग्रहण होता है। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ यह होगा-संज्ञा के सन्दर्भ में दिशावाची एवं संख्यावाची सुबन्त का समानाधिकरण वाले सुबन्त (जिसका आधार समान ही हो) के साथ

तत्पुरुष समास होता है। इसलिए इस समास को तत्पुरुष समास कहते है। जैसे-

‘**पूर्वेषुकामशमी**’- लौकिक विग्रह ‘पूर्व:इषुकामशमी’ तथा अलौकिक विग्रह ‘पूर्व सु इषुकामशमिन् सु’ की दशा में ‘ दिक्संख्ये संज्ञायाम्’ सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। इस दशा में ‘प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्’ सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होकर ‘उपसर्जनं पूर्वम्’ सूत्र से दिशावाची शब्द पूर्व को पूर्वनिपात हुआ। इस दशा में ‘सुपो धातुप्रतिपदिकयो:’ सूत्र से सुप् विभक्ति का लोप होकर ‘पूर्वेषुकामशमिन्’ हुआ। अब प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति करने पर ‘पूर्वेषुकामशमी’ प्रयोग सिद्ध होता है।

सप्तर्षय: - (सात ऋषियों के समूह की संज्ञा) लौकिक विग्रह ‘सप्त च ते ऋषय:’ तथा अलौकिक विग्रह ‘सप्तन् जस् ऋषि जस्’ की दशा में ‘दिक्संख्ये संज्ञायाम्’ सूत्र से तत्पुरूष समास होगा। ‘प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम’ सूत्र से संख्यावाचक पद की उपसर्जन संज्ञा तथा ‘उपसर्जनं पूर्वम्’ सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होगा। इस स्थिति में ‘सुपो धातुप्रातिपदिकयो:’ सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर –सप्तन् ऋषि हुआ। इस स्थिति में न् का लोप होकर सप्त ऋषि हुआ। अब ‘आदगुण:’ सूत्र से गुण एकादेश होकर ‘सप्तर्षि’ बना। इस दशा में प्रथमा बहुवचन की विवक्षा में जस् विभक्ति प्रत्यय करने पर सप्तर्षय: प्रयोग सिद्ध होता है।

यह ध्यातव्य है कि दिशावाचक और संख्यावाचक पदों का केवल समास होता है, अन्यथा नहीं।उदाहरण के लिए ‘उत्तरा वृक्षा:’ में दिशावाचक ‘उत्तरा:’ के सुबन्त होने पर भी संज्ञा न होने से समास नहीं होता है। इसी प्रकार ‘पन्च ब्राह्मणा:’ से समास नहीं होता है।

939 . **तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च परत: समाहारे च वाक्ये, दिक्संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भव: - पूर्वा शाला इति समासे जाते** - (वा0) **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव:।**

सूत्र का शब्दार्थ है कि - (च) और (तद्धितार्थ उत्तरपद-समाहारे) तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद परे रहते और समाहार वाच्य होन पर ....। यहॉं सूत्र का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है, इस सूत्र को ठीक-ठीक समझने के लिए ‘प्राक्कडारा त् समास:’ 2/1/3 ‘सह सुपा’ 2/1/4 तथा तत्पुरूष: 2/1/22 एवं ‘पूर्वकालैकसर्वजरत -0’ 2/1/49 ये ‘समानाधिकरणेन’ तथा 935 ‘दिकसंख्ये -0’ ‘सूत्रसे ‘दिक्संज्ञे’ की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। सूत्र का भावार्थ यह होगा- जहॉं पर तद्धित का अर्थ हो तथा जब उत्तर पद परे हो एवं जब समाहार के विषय में बतलाना हो तब दिशावाचक एवं संख्यावाचक सुबन्त पर का दूसरे सुबन्त पद के साथ समास होते हैं। उस समास को तत्पुरुष समास कहते हैं। इनके उदाहरण क्रमश: इस प्रकार है-

(1) **दिशावाचक** –दिशावाचक तीन परिस्थितितयों में होता है-

(क) तद्धितार्थ में – ‘पौर्वशाल:’।

(ख) उत्तरपद परे रहने पर –‘पूर्वशालाप्रिय:’

(ग) समाहार वाच्य होने पर दिशावाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

(2) **संख्यावाचक**-

(क) तद्धितार्थ में – ‘पाञ्चनापिति:’।

(ख) उत्तरपद में –‘पञ्चगवधन:’।

(ग) समाहार में – 'पञ्चगवम्' ।

प्रस्तुत सूत्र में वात्तिक 'सर्वनाम्नोवृत्तिमात्रे पुंवद्भाव:' का अभिप्राय है वृत्तिमात्र (समास, तद्धित, कृदन्त आदि) में सर्वनाम को पुंवद्भाव हो जाता है। उदाहरण के लिए 'पूर्वाशाला' में पूर्व सर्वनाम है अत: 'सर्वनाम्नो वृत्तिभागे पुंवद्भाव:' वार्तिक से पूर्वा के टाप् का लोप होकर पुंवद् भाव हो जायेगा तो पूर्वशाला होगा। इससे आगे की प्रक्रिया के लिए अग्रिम सूत्र है-

940 .**दिकपूर्वपदादसंज्ञायां ञ**:/4/2/107

अस्माद् भवार्थे ञ: स्याद् असंज्ञायाम्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (असंज्ञायाम्) असंज्ञा में (दिक्कपूर्वपदात्) जिसका पूर्वपद दिशावाची हो , उससे (ञ:) 'अ' होता है। यहॉं पर 'शेषे' सूत्र का अधिकार है। तब सूत्र का भावार्थ यह होगा-जहॉं पहले दिशावाचक शब्द होता है उससे यदि संज्ञा न बतानी हो तो भव (=होने वाला) अर्थ में ञ प्रत्यय तद्धितार्थ में होता है। यहॉं पर तात्पर्य यह है कि यदि संज्ञा गम्यामान न हो तो दिशा पूर्व-पद् प्रातिपदिक (जिसका पूर्व पद दिशावाचक हो) से शेष अर्थों में ञ प्रत्यय होता है। ञ का अकार यहॉं इत्संज्ञक है, इसलिए ञ शेष रह जाता है। उदाहरण स्वरूप में 'पूर्वशाला' में पूर्वपद 'पूर्व' दिशावाचक है, अत: प्रस्तुत सूत्र से तद्धितार्थ में 'ञ' प्रत्यय हो 'पूर्वशाला अ' रूप बनता है। इसके बाद अग्रिम सूत्र का विधान किया गया है-

941 . **तद्धितेष्वचामादे**: /7/2/117

ञिति णिति च तद्धितेऽचामा-देरचो वृद्धि स्यात् । '266-यस्येति च' । पौर्वशल: । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ।

(वा0) द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमास वचनम्।

सूत्र का तात्पर्य यह है कि - (तद्धितेषु) तद्धित पर होने पर (अचाम्) अर्चो के (आदे:) आदि के ....। किन्तु यहॉं क्या होता है? यह स्पष्ट नहीं है। इसके स्पष्टीकरण के लिए ' अचोंणिति सूत्र तथा 'मृजेर्वृद्धि:' सूत्र से 'वृद्धि:' की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। यहॉं पर अंगस्य सूत्र का अधिकार है तथा इसका अवयव अचाम् से होता है। 'ञ्णिति' 'तद्धितेषु' से और 'अच्' 'आदे:' से सम्बन्धित है। इस तरह से प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ यह होगा- ञित् और णित् तद्धित प्रत्यय परे होने पर अंग के अचों में से आदि अच् के स्थान में वृद्धि आदेश होता है। जैसे-

पौर्वशाल: - (पूर्व की शाला में होने वाल)

'पूर्वस्यां शालायां भव:' इस लोकिक विग्रह तथा 'पूर्वा ङि शाला ङि ' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से तद्धित के विषय में दिशावाचक पूर्वा पद का सुबन्त शाला के साथ समास होगा। इस स्थिति में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय ङि का दोनों स्थानों पर लोप होकर 'पूर्वाशाला' हुआ। इस स्थिति में वार्तिक'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव:' । से पूर्वा के टाप् का लोप होकर पुंवद्भाव हो जायेगा तो 'पूर्वशाला' हुआ । इस दशा में 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञ:' सूत्र से 'ञ' प्रत्यय हुआ, ञ में ञ् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर केवल अ बचता है अत: 'पूर्वशाला अ' रूप बना।इस दशा में 'तद्धितेस्वचामादे:' सूत्र से 'पूर्वशाला' के आदि अच् 'ऊ' को वृद्धि

'औ' आदेश होकर 'पौर्वशाला अ' रूप बना। 'यस्येति च' सूत्र से तद्धित प्रत्यय परे रहते 'पौर्वशाला' के आ को लोप होकर-'पौर्वशाल् अ' हुआ। अब प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति प्रत्यय लगने पर 'पौर्वशाल:' प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्त्तिक 'द्वन्द् तत्पुरूष रूत्तरपदे नित्य समास वचनम्' का अभिप्राय यह है कि द्वन्द और तत्पुरष समास से परे उत्तर पद हो तो उनको नित्य समास कहा जाता है।

942 .**गोरतद्धितलुकि** /5/4/92

गोऽन्तात् तत्पुरूषात् टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। 'पन्चगवधन:'।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि (अतद्धित लुकि) तद्धित प्रत्यय का लोप होने पर (गो:) गो शब्द से ......। किन्तु क्या होता है यहॉ पर ? यह बात स्पष्ट नहीं की गयी है? सूत्र को ठीक-ठीक समझने के लिए 'तत्पुरूषस्याङ्गुले:' -0 5/4/86/ सूत्र से 'तत्पुरुषस्य' तथा 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' सूत्र से टच् की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'तत्पुरुषस्य' पन्चम्यन्त में परिवर्तित हो जाता है तथा सूत्र गो: में तदन्त विधि हो जाती है। इस तरह से सूत्र का भावार्थ होगा- तद्धित प्रत्यय का यदि लोप नही हुआ हो तो गो से अन्त तत्पुरुष समास से समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे-

पञ्चगवधन: - (जिसके पॉच गायें धन हों) लौकिक विग्रह 'पञ्च गावो धनं यस्य स:' तथा अलौकिक विग्रह पञ्चन् जस् गो जस् धन सु' की दशा में पञ्चन् और गो पद में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र सु' उत्तरपद परे रहते विकल्प से तत्पुरूष समास होता है किन्तु 'द्वन्द्वतत्पुरूषयोरूत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' वात्तिक से यह नित्य समास हुआ। अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'पञ्चगो अ धन' हुआ। 'एचोऽयवायाव:' सूत्र से ओ को अव् आदेश होकर 'पञ्चगव् अ धन' हुआ। प्रथमा एकवचन में सु आदि विभक्ति प्रत्यय करने पर 'पञ्चगवधन:' प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्मधारय समास'

943 **तत्पुरुष: समानाधिकरण: कर्मधारय: 2 । 3 । 42 ।।**

प्रस्तुत सूत्र का अभिप्राय यह है कि (समानाधिकरण:) समानाधिकरण वाला (तत्पुरूष:) तत्पुरूष (कर्मधारय:) कर्मधारय कहलाता है अधिकरण का अर्थ आधार होता है। इस प्रकार भावार्थ होगा- 'समानाधिकरणतत्पुरूष्ज्ञ को कर्मधारय कहते है। यहॉ पर समानाधिकरण का अर्थ समान आधार से है। पूर्व और उत्तर पद का जब आधार एक ही हो तो तथा दोनों का अन्त समान विभक्ति से हो जेसे-नीलोत्पलम् (नीला कमल) -इस तत्पुरूष समास में नीलापन और कमल का आधार एक ही फूल हैं। इसलिए यह कर्मधारय संज्ञक होगा। अपनी सुविधा की दृष्टि से यह कह सकते है कि यदि तत्पुरूष के पूर्वपद और उत्तरपद –दोनों समान विभक्त्यन्त होंगें, तो उसे कर्मधारय समास कहा जायेगा।

944 . **संख्यापूर्वो द्विगु**: 2/1/52

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविध: संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञ: स्यात्।

सूत्र का शब्दार्थ है - (संख्यापूर्व:) संख्या जिसके पहले हो, उसे द्विगु समास कहते हैं। इस सूत्र को समझने के लिए पूर्व सूत्र'तद्धितार्थोत्तरपदसमहारे च' सूत्र को समझना आवश्यक है। उक्त सूत्र से तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद के परे रहने पर तथा समाहार वाची होने पर संख्यावाची सुबन्त का समानाधिकरण वाले सुबन्त के साथ द्विगु समास होता है।

945 . **द्विगुरेकवचनम्** /2/4/1 द्विग्वर्थ: समाहार: एकवत् स्यात्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है कि - (द्विगु) द्विगु (एकवचनम्) एकवचन वाला होता है। यहॉ पर द्विगु से समाहार द्विगु का भी ग्रहण होता है एकवचन से अभिप्राय एकार्थवाचक से है सूत्र का भावार्थ है- द्विगु के अर्थ में समाहार एकवत् होता है।

946. **स नपुंसकम्** /2/4/17/समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् पञ्चानां गवां समाहार: पञ्चगवम्। प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य यह है कि - (स:) वह (नपुंसकम्) नपुंसक होता है। सूत्र को ठीक-ठीक जानने के लिए सूत्र का सन्दर्भ जानना आवश्यक है। प्रथम सूत्र द्विगुरेकवचनम्' 2/4/1 से लेकर 'विभाषा समीपे' सूत्र तक एकवद्भाव होता है। यह नपुंसकलिंग होता है। जैसे-

पञ्चगवम्- लौकिक विग्रह 'पञ्चानां गवां समाहार:' तथा पञ्चन् आम् गो आम्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च' सूत्र से समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'पञ्चन् गो' हुआ। इस स्थिति में 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से नकार का लोप होकर पञ्चगो। 'गोरतद्धितलुकि' से टच् प्रत्यय होकर पञ्चगो टच्' हुआ। टूकार और चकार का का लोप होकर 'पञ्चगो अ' हुआ। इस दशा में 'एचोऽयवायाव:' सूत्र से अव् आदेश करने पर पञ्चगव' बना। इस स्थिति में 'संख्यापूर्वो द्विगु:' से द्विगु संज्ञा हुयी तथा 'द्विगुरेकवचनम्' सूत्र से एकवचन होकर, प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय प्राप्त होने पर पञ्चगव् सु रूप बना। नपुंसकलिंग में सु को 'अतोऽम्' सूत्र से अम् आदेश होकर पञ्चगव् अम्। 'अमि पूर्व:' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होकर 'पञ्चगवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

947 .**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** /2/1/57

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्। नीलमुत्पलम्-नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्-कृष्णसर्प:। क्वचिन्नरामो जामदग्न्य:।

विशेष्यबोधक पद के साथ विशेषणबोधक पद का बहुलता (विकल्प) से समास बनता है उसे तत्पुरूष कहते हैं। विशेष्य को भेद्य तथा विशेषण को भेदक कहते है। यह विशेषण का समानाधिकरण विशेष्य पद के साथ हुआ करता है जिसका लिंग ,वचन, विभक्ति समान हो। जैसे-

नीलोत्पलम्- 'नीलं उत्पलम्' लौकिक विग्रह तथा 'नील सु उत्पल सु' इस अलौकिक विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से सर्वप्रथम समास बनेगा और प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट विशेषण की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास0' इत्यादि सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होगी और 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में रखने पर 'नील सु उत्पल सु' उत्पल सु' ही हुआ। अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'नील उत्पल' बना। आदगुण: सूत्र से गुण होकर 'नीलोत्पल' बना। प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति तथा 'अतोऽम्' सूत्र से 'अम्' आदेश और 'अमि पूर्व::' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होकर 'नीलोत्पलम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रस्तुत सूत्र में 'बहुलम्' बहुलता से कहा गया है, क्योंकि कहीं –कहीं विशेषणका विशेष्य के साथ नित्य नहीं भी होता है। इसी प्रकार 'कृष्णसर्प' (काला सांप, सापो की एक जाति) में तो समास नित्य होता है, किन्तु 'रामोजामग्न्य:' प्रयोग में विशेषण का

विशेष्य के समानाधिकरण होने पर भी उसके साथ समास नहीं होता है।

948 . **उपमानानि सामानन्यवचनै**: /2/1/55

घन इव श्याम: घनश्याम:।

साधारण धर्म वाले पद के साथ उपमानवाचक पद का समास बनता है तथा वह तत्पुरूष समास होता है। सूत्र में 'सामान्य वचनै:' सूत्र से सामान्य का अर्थ है और साधारण धर्म सामान्यवचन का अर्थ समानता का बोध कराने वाले पद से है। यहॉं पर उपमेय से तात्पर्य है। जेसे-

घनश्याम: - 'घन इव श्याम:' इस लौकिक विग्रह तथा अलौकिक विग्रह 'घन सु' की दशा में 'उपमानानि सामान्यवचनै:' सूत्र से समास होगा। उपमानानि प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट है, अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास0' इत्यादि सूत्र से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व में होकर 'घन सु श्याम सु' बना। अब 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'घनश्याम' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति लगने पर 'घनश्याम:' प्रयोग सिद्ध होता है।

(वा0) 'शाकपार्थिवाऽऽदीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्।

शाकप्रिय: पार्थिव: शाकपार्थिव:। देवपूजको ब्राह्मण:देवब्राह्मण:।

उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार 'शाकपार्थिव:' आदि समासयुक्त पदों की सिद्धि के लिए उत्तरपद के लोप का नियम समझाना चाहिए। जैसे-

शाकपार्थिव: - (शाक पसन्द करने वाला राजा)

'शाकप्रिय: पार्थिव:' लौकिक विग्रह तथा 'शाकप्रिय: स् पार्थिव सु' अलौकिक में 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' इस वार्तिक से समास हुआ तथा शाकप्रिय: के उत्तरपद प्रिय का लोप होकर 'शाक सु पार्थिव सु' हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप करने पर 'शाकपार्थिव' बना। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'शाकपार्थिव:' प्रयोग सिद्ध होता है।

देवब्राह्मण: - (देवों की पूजा करने वाला ब्राह्मण:')

लौकिक विग्रह 'देवपूजक: ब्राह्मण:' तथा 'देवपूजक सु ब्राह्मण सु' इ अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'शाकपार्थिवाऽऽदीनां उत्तरपदलोपस्योप –संख्यानम्' वार्त्तिक से समास होकर 'देवपूजक' के उत्तरपद 'पूजक' का लोप हुआ- 'देव सु ब्राह्मण सु' ।'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर देव ब्राह्मण हुआ। इस स्थिति में प्रथमा एकवचन की विपक्षा में सु प्रत्यय आने पर 'देवब्राह्मण:' प्रयोग सिद्ध होता है।

949 . **नञ्** /2/2/6

नञ् सुपा सह समस्यते।

नञ का सुबन्त पद के साथ समास होता है। इसे भी तत्पुरुष समास कहते है। नञ् का तात्पर्य निषेधात्मक न् से है।

950 . **नलोपो नञ**: /6/3/73/**नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मण: ब्राह्मण।**

उत्तरपद परे रहने पर नञ् के न् का लोप होता है। जैसे-

अब्राह्मण: - (ब्राह्मण से भिन्न)लौकिक विग्रह 'न ब्राह्मण: अब्राह्मण:' तथा 'नञ ब्राह्मण

सु' अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'नञ' सूत्र से समास प्राप्त होगा। नञ् के अ् की इत्संज्ञा तथा लोप एवं सु का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से लोप होने पर 'न ब्राह्मण' बना। 'न लोपो नञ:'सूत्र से नञ् के न का लोप करने पर- अब्राह्मण बना। अब प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आने पर अब्राह्मण: प्रयोग सिद्ध होता है।

951 . **तस्मान्नुडचि** /6/3/74/

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपस्याजादेर्नुडागम: स्यात् । अनश्व: । नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह सुप्सुपेति समास:।

नञ में जिस न् का लोप हुआ हो उससे परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम होता है। जैसे- अनश्व:।

अनश्व: - लौकिक विग्रह 'न अश्व:' तथा अलौकिक विग्रह में नञ के अ् की इत्संज्ञा और लोप होने पर 'न अश्व सु' बना। इस दशा में 'नञ' सूत्र से समास हुआ। 'नलोपो नञ' सूत्र से नञ् के न का लोप होन पर 'अ अश्व सु विभक्तियों का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से लोप होकर 'अ अश्व' हुआ तथा 'तुस्मान्नुडचि' सूत्र से अजादि उत्तर पद अश्व परे रहने पर उसे नुट् का आगम होगा जो टित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से आदि में होगा-अ नुट् अश्व। इस दशा में नुट् में उ और ट की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर अन् अश्व बनो। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय आने पर 'अनश्व:' प्रयोग सिद्ध होगा।

नैकधा- नैकधा प्रयोग में 'न' शब्द का 'एकधा' शब्द के साथ 'सह सुपा' सूत्र से केवल समास हुआ। यदि नञ् के साथ एकधा का समास होने की स्थिति होती है तो 'नञ एकधा'में 'नञ' सूत्र से समास होगा, 'नलोपो नम:' सूत्र से नञ् के न् का लोप होकर अ एकधा हुआ। नट् में उ और ट् का लोप होने पर अन् एकधा = अनेकधा प्रयोग सिद्ध होता है।

952 . **कुगतिप्रादय**: /2/2/18

ते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सित: पुरूष:कु पुरूष:।

गति संज्ञा अर्थात् क्रिया के योग में आयें हुए 'प्र', 'परा' आदि , कु अर्थात् कुत्सित तथा प्रादि (प्र, परा आदि उपसर्ग) का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। यह भी तत्पुरूष समास होता है ।

'कु' अव्यय का अर्थ होता है कुत्सित तथा प्र परा आदि प्रादिगण से सम्बन्धित शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते है। जैसे –

कुत्सित: पुरुष: कुपुरुष: यह लौकिक विग्रह है तथा कु पुरुष: सु इस अलौकिक विग्रह में 'कुगतिप्रा0' सूत्र से कु अव्यय का समर्थ सुबन्त पद से समास बनेगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सु0 से सुप् सु का लोप होकर कु पुरुष होगा।प्रथमा एकवचन में सु की प्रप्ति होने और विभक्ति कार्य करने पर कुपुरुष: रूप सिद्ध होगा।

गति संज्ञा किस प्रकार होगी उसके लिए निम्न सूत्र है-

953 . **ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च** 1/4/61

ऊर्वादय: च्वयन्ता डाजन्ताश्च गतिसंज्ञा: स्यु:। ऊरीकृत्य, शुक्लीकृत्य, पटपटाकृत्य। सुपुरुष:।

सूत्र का तात्पर्य यह है कि ऊरी आदि च्वि प्रत्यान्त तथा डाच् प्रत्ययान्त जब क्रिया के योग में आते है तो उनकी गतिसंज्ञा होती है। ऊर्व्यादिगण इस प्रकार है- ऊद्दी, कन्धी ताली,

अताली , वेलाती, धूली, धूसी, शकला इत्यादि । च्वि प्रत्ययान्त- 'अशुक्लं शुक्लं कृत्वा' अर्थात् जो सफेद न हो उसे सफेद बनाकर।

डाच् प्रत्ययान्त- 'पटट् पटट् (पट पट शब्द करके) इति कृत्वा' पटपटाकृत्य।

सर्वदा यह ध्यान में रहना चाहिए कि ऊरी आदि और च्वि प्रत्ययान्त का तथा डाच् प्रत्ययान्त् का कृ, भू तथा अस् धातुओं के साथ ही योग होता है।

ऊरीकृत्य- सर्वप्रथम ऊरी शब्द से कृ धातु और क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर ल्यप् होने से ऊरीकृत्य बनता है। इस प्रकार ऊरी शब्द की 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञा हुई और 'कुगतिप्रादय:' सूत्र से ऊरी का कृ धातु के साथ समास बनेगा। 'समासेऽनञ्पूर्वेक्त्वो ल्यप्' सूत्र से कत्वा प्रत्यय को ल्यप् होने पर. ऊरीकृत्य रूप सिद्ध होगा।

शुक्लीकृत्य. शुक्ल शब्द से 'अभूततद्भावे इति वक्तव्यम् वार्त्तिक तथा कुभ्वस्तियोग संपद्यकर्तीर च्वि:' प्रत्यय होने पर शुक्ल पद के अ को 'अस्य च्वौ सूत्र से ई आदेश होने पर शुक्ली बनेगा।इस दशा में 'ऊर्यादि-च्वि –डाचश्य' सूत्र से च्वि प्रत्ययान्त शुक्ली पद की गति संज्ञा हुयी। 'कुगतिप्रादय:' सूत्र से शुक्ली का क् धातु के साथा समास होगा। पुन:' 'समासेऽनञ्पूर्वेक्त्वो ल्यप्' सूत्र से क्त्वा को ल्यप् आदेश होने पर- शुक्लीकृत्य प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार पटपटाकृत्य भी सिद्ध होगा।

शोभन पुरूष: सुपुरूष:। सु प्रादि है इसका सुप् प्रत्ययान्त पुरूष पद के साथ 'कुगतिप्रादय:' सूत्र से समास होकर सु पुरूष: रूप बनता है।

वार्तिक- प्राद्योगताद्यर्थ प्रथमया। प्रगत आचार्य: प्राचार्य:।

प्रस्तुत वार्तिक का भावार्थ है कि- प्रथमा विभक्ति से अन्त होने वाले पद् के साथ प्र आदि का गत आदि अर्थ में समास होता है । जैसे –

प्राचार्य: - 'प्रगत आचार्य :' इस विग्रह में गत अर्थ में प्रादि प्र का प्रथमान्त सुबन्त पद 'आचार्य' के साथ 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्तिक से समास होकर प्रगत: आचार्य: = प्राचार्य: प्रयोग सिद्ध होगा।

वार्तिक-अत्यादय: क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ।अतिक्रान्तो मालामिति विग्रह विग्रहे अतिमालम्।

भावार्थ यह है कि-अति आदि का क्रान्त आदि (अतिक्रमण)अर्थ में द्वितीया विभक्ति के द्वारा अन्त होने वाले सुबन्त पद के साथ समास होता है। प्रादिगण में अति भी आता है। जैसे- अतिमाल:। 'अतिक्रान्तो मालाम्' लौकिक विग्रह में तथा 'माला अम अति' अलौकिक विग्रह में द्वितीया से अन्त होने वाले सुबन्त पद 'मालाम्' का 'क्रान्त' अर्थ में अति के साथ 'आत्यादय: क्रान्तद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से समास हुआ। प्रथमा विभक्ति 'अत्यादय:' में है अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनं' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा हुयी। इस दशा में 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से अति का पूर्व पद के रूप में प्रयोग होगा- 'अति यात्रा अम्' अब 'सुपो धातुप्रातिपदियो:' से अम् विभक्ति प्रत्यय का लोप होगा- अतिमाला । इस दशा में 'एकविभक्तिचाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से 'अतिमाला' में माला शब्द के आ को ह्रस्व अ हुआ तथा प्रथमा विभक्ति एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होने पर 'अतिमाल:' प्रयोग सिद्ध हुआ ।

954 .**एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते** /1/2/44

विग्रहे यद् नियतविभक्तिकं तद् उपसर्जनसंज्ञं स्याद् न तु तस्य पूर्वनिपात:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ है कि जिस पद् की विभक्ति नियम हो उस समास के विग्रह नियत हो उस समास के विग्रह में अर्थात् एक ही और अपरिवर्तित रहती हो, उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, किन्तु उसका समास में पूर्ण प्रयोग नही होता है।

सूत्र में एकविभक्ति से तात्पर्य है नियत विभक्ति वाला हो, उसकी विभक्ति किसी भी प्रकारसे विग्रह करने पर बदलती न हो। जैसे- 'अतिक्रान्तो मालाम्' में 'मालाम्' शब्द में द्वितीया रहेगी।

955. **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** /1/2/48

उपसर्जनं यो गोशब्द: स्त्रीप्रत्यान्तं च, तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्व: स्यात्। अतिमाल:।

(वा0) अवादय: क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। अवक्रुष्ट: कोकिलयाअवकोकिल:।

(वा0) पर्यादयोग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। परिग्लानोऽध्ययनायपर्यध्ययन:।

(वा0) निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। निष्क्रान्त: कौशाम्ब्या: . निष्कौशाम्बि:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ यह है कि. ;उपसर्जनस्य उपसर्जन संज्ञक ;गोसित्रयोरुद्ध गो शब्द और स्त्री प्रत्यय का ण्ण्ण् किन्तु यहाँ पर क्या होना चाहिए यह बात इससे स्पष्ट नहीं हो पा रही है। सूत्र को ठीक.ठीक समझने के लिए 'ह्रस्वो नपुंसकोप्रातिपदिकस्य' 1.2.47 सूत्र से 'प्रातिपदिकस्य' तथा 'ह्रस्व:' की अनुवृति करनी पड़ती है। 'प्रत्यय हग्रहणेतदन्त विधि:' परिभाषा सूत्र से स्त्री प्रत्यय वाचक सूत्रस्थ 'स्त्री' में तदन्तविधि हो जाती है। यह उपसर्जन संज्ञक गो और स्त्री प्रत्ययान्त शब्द पुन: 'प्रातिपदिकस्य'के विशेषण हैं। इसलिए इनमें भी तदन्तविधि होतीहै। इस तरह सूत्र का भावार्थ है. प्रातिपदिक के अन्त में उपसर्जनसंज्ञक गो या स्त्री प्रत्ययान्त शब्द हो, उसको ह्रस्व होता है। 'अलोऽन्तस्य' परिभाषा सूत्र से यह आदेश गो या स्त्री प्रत्ययान्त के अन्त्य स्वर वर्ण के स्थान पर होता है। जैसे- अतिमाला में माला के अन्तिम आ को ह्रस्व अ हुआ –अतिमाल।

सूत्र में वार्तिक. अवादय इति. से तात्पर्य है. 'अव' आदि का 'क्रष्ट' आदि अर्थ में तृतीया से अन्त होने वाले सुबन्त के साथ समास होता है। जैसे-

अवकोकिल: - लौकिक विग्रह 'अवक्रुष्ट: कोकिलया' तथा अलौकिक विग्रह' अब कोकिला टा' की स्थिति में 'अवादय:कुष्टाद्यर्थे तृतीयया' इस पार्तिक से समास होगा। इस दशा में 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनियाते' सूत्र से एक विभक्ति पद 'कोकिला' की उपसर्जन संज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय 'टा' का लोप होकर 'अवकोकिला शब्द जिसके अन्त में है उसके अन्तिम पद को स्वर होगा अवकोकिल। प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आने पर 'अवकोकिल:' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार वार्तिक 'पर्यादयो ग्लानाऽऽद्यर्थे' से तात्पर्य है कि 'म्लानि आदि अर्थ में परि आदि का चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले पद के साथ समास होता है। जैसे-

पर्यध्ययन: - (अध्ययन के लिए खिन्न) लौकिक विग्रह 'परिग्लान:अध्ययनाय' तथा 'परि अध्ययन ङे' की स्थिति में 'पर्यादयोग्लाना ऽऽद्यर्थे चतुर्थ्या' (वा0) से समासहोकर 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से एकविभक्ति वाले अध्ययन पद की उपसर्जन संज्ञा होगी किन्तु इसका पूर्व में प्रयोग नहीं होगा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:' बना। अब इस दशा में 'इको यणचि' सूत्र से सन्धि होकर 'पर्यध्ययन' प्रातिपदिक बनकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रतयय आने पर 'पर्यध्ययन:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

क्रमश:इसी तरह वार्त्तिक 'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' से तात्पर्य है कि -निर् आदि का क्रान्त (निकाला गया) आदि अर्थ में पञ्चमी विभक्ति वाले समर्थ सुबन्त पद के साथ समास होता है। जैसे-

निष्कौशम्बि- 'निष्क्रान्त कौशाम्ब्या' लौकिक विग्रह तथा 'निर कौशाम्बि ङसि' अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:' वार्त्तिक से समास होकर 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से कौशाम्बी की उपसर्जन संज्ञा हुई तथा पूर्व में प्रयोग नहीं हुआ।'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'निर कौशाम्बी, को ष् और स् को ष हुआ – निष्कौशाम्बी बना। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य:' सूत्र से कौशाम्बी के अन्तिम ई को ह्रस्व इ होकर –निष्कौशाम्बि हुआ। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय होने पर 'निष्कौशाम्बि:' प्रयोग बनता है।

956. **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।** /3/1/92

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञ स्यात्।

प्रस्तुत सूत्र को ठीक पूर्वक जानने के लिए 'अण्' प्रत्यय के सन्दर्भ में आया सूत्र 'कर्मण्यण्' सूत्र को जानना आवश्यक है, इस सूत्र का तात्पर्य है कि कर्म के वाचक पद के उपपद रहने पर धातु से अण् प्रत्यय होता है। जैसे- कुम्भं करोति इति, कुम्भकार:। यहॉं पर कृ धातु का कर्म कुम्भ है जो उपपद है अत: कृ 'धातु' से अण् प्रत्यय होता है।

ठीक इसी प्रकार उपर्युक्त सूत्र का तात्पर्य यह है कि- 'कर्माणि अण्' सूत्र में कर्म में सप्तमी है। प्रश्न यह उठता है कि कृ धातु का कर्म वहॉं क्या है? तो कुम्भ ही कर्म के रूप में वाच्य है इसलिए इस कुम्भ आदि को कर्म बताने वाले (वाचक)पद की उपपद संज्ञाहोती है।

957. **उपपदमतिङ्** /2/2/19

उपपदं सूबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अतिङन्तश्चायं समास:। कुम्भं करोति इति कुम्भकार: ।अतिङ् किम् मा भवना भूत्, माङ् लुङ् इति सप्तमी निर्देशान्माङ् उपपदम्।

सूत्र का तात्पर्य है कि समर्थ पद के साथ उपपद् सुबन्त का नित्य समास होता है। यहॉं पर तात्पर्य यह है कि उपपद संज्ञा बताने वाले पद का तिङन्त से भिन्न समर्थ पद के साथ नित्य समास होता है जैसे-

कुम्भकार: - लौकिक विग्रह 'कुम्भं करोति इति' तथा अलौकिक विग्रह 'कुम्भ अम् कार् (कृ धातु से अण् +ण् का लोप – कृ आ। 'अचोञ्णिति' सूत्र से ऋ को वृद्धि आर् आदेश ,इस अलौकिक विग्रह में 'तत्रोपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से कुम्भ की उपपद संज्ञा होकर 'उपपदमतिङ्' सूत्र से कार अतिङन्त होने से समास प्राप्त हुआ- कुम्भकार। इस दशा में 'गतिकारोकपदानाम्0' वार्त्तिक से सुप् विभक्ति आने से पूर्व ही समास होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय आने पर 'कुम्भकार:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

यहॉं पर सूत्र में यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'अतिङ्' क्यों कहा? गया-ऐसा इसलिए कहा गया कि यदि उपपद संज्ञकपद के साथ तिङन्त पद आयोग तो वहॉं पर समास नहीं होगा, जैसे 'मा भागन् भूत' प्रयोग में 'माङ् की उपपद् संज्ञा होती है, 'मा भूत' में 'माङ् उपपद के साथ भूत का समास नहीं होगा, क्योंकि भूत तिङन्त पद है।

(वा0) गतिकारकोपदानां कृभ्दि: सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पते। व्याघ्री अश्वक्रीति।

कच्छपीत्यादि ।प्रस्तुत वार्तिक से तात्पर्य यह है कि गतिसंज्ञक , कारक और उपपद् संज्ञक पदों का जब कृदन्त पद के साथ समास होता है तो वह समास कृदन्त पद में सुप् विभक्ति लगाने से पहले हो जाता है। जैसे-क्रमश: **व्याघ्री**- विशेषेण जिघ्रति इति व्याघ्री। वि+आङ्+घ्रा धातु+क प्रत्यय (आतश्चोपसर्गे सूत्र से) क प्रत्यय के क का लोप होता है केवल अ बचता है। किन्तु परे रहते पर घ्रा के आ का 'आतो लोप इटि च' (भ्वादिगण में पा धातु की रूप सिद्धि में आया सूत्र से) लोप होकर वि आ घ्र। घ्र में सुप् विभक्ति लगने से पूर्व ही गति संज्ञक का 'गतिकारकोपपदानां0' (वा0) समास होकर 'इको यणचि' सूत्र से यण् आदेश हुआ-व्याघ्र। स्त्रीत्व की विवक्षा में 'जातेरस्त्री विषयादयोपधात्' सूत्र से स्त्रीलिंग ङीष् प्रत्यय। व्याघ्र के भसंज्ञक अ का लोप होकर 'व्याघ्री' प्रयोग सिद्ध हुआ।

अश्वक्रीती- अश्वेन क्रीता इति अश्वक्रीती। अलौकिक विग्रह-अश्व टा क्रीत इस विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से तृतीयान्त सुबन्त का कृदन्त पद के साथ समास हुआ। इस दशा में 'सुपो धतु प्रातिपदिकयो: सूत्र से टा विभक्ति लगने से पूर्व समास होकर अश्वक्रीत हुआ। 'क्रीतात्करणपूर्वात्' सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर 'अश्वक्रीत' के भसंज्ञक अ का लोप करने पर 'अश्वक्रीती' प्रयोग सिद्ध हुआ।

कचछपी- 'कच्छं मुखसंपुटं पाति' लौकिक विग्रह और कच्छ अम्+पा+क ('सुपि स्थ:' सूत्र से या धातु से क प्रत्यय) 'तत्रोपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से कच्छ क उपपद संज्ञा होकर 'उपपदमतिङ्'सूत्र से अतिङन्त के साथ् समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से अम् का लोप हुआ तथा क प्रत्यय में क् का लोप होकर अ बचा। कित् परे रहने के कारण 'आतो लोप इटि च' सूत्र से पा धातु के आ का लोप होता है तथा प् के साथ प्रत्यय अ मिल जाता है। विभक्ति की उत्पति के पूर्व ही 'गतिकारकोपपदानां0' वार्तिक से समास होकर कच्छप हुआ। जातिवाचक होने से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपघात्' सूत्र से स्त्रीलिंग ङीष् प्रत्यय होकर 'कच्छपी' प्रयोग सिद्ध होता है।

958 . **तत्पुरुषस्यांगुले: संख्याव्ययादे**: /5/4/86/

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासन्तोऽच् स्यात् । द्वे अङ्गुली प्रमाणस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्य: निरङ्गुलम्।

उपरोक्त सूत्र से तात्पर्य है कि जिससे अन्त में संख्यावाचक या अव्ययपद हो और अन्त में अंगुलि शब्द हो उससे समासान्त अच् समासान्त अच् प्रत्यय होता है- जैसे-

द्वयड़्गुलम् - 'द्वे अंगुली प्रमाणस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'द्वे अंगुलि और मात्रच्' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति' में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहरे च' सूत्र से तद्धित अर्थ होने पर उत्तर पद परे रहने पर या समाहार बताने की स्थिति में दिशावाचक था संख्यावाचक पद का समानाधि करण वाले सुबन्त पद के साथ समास हुआ। इस प्रकार यहॉं संख्यावाचक द्वि का तद्धित अर्थ । में अंगुलि के साथ समास होगा। 'मात्रच' का 'द्विगोर्लुगनपत्ये' से लोप होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से दोनों और का लोप होकर-द्वि अंगुलि हुआ। 'तत्पुरुषस्यांगुले**:** संख्याव्ययादे**:**' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- द्वयंगुलि अच् । अच् के च् का लोप् 'यस्येति च' सूत्र से अंगुलि से इ का लोप होकर 'द्वयंगुलम्। प्रयोग बनता है।

निरंगुलम्- निर्गतम् अंगुलिभ्य: इस लौकिक विग्रह की स्थिति में 'निरादय: भ्यस्' इस

अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:' वा0 से प्रादि समास होगा। 'सुपो धतुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- निरंगुलि अच्। च् का लोप, पुन: 'यस्येति च' सूत्र से अंगुलि के इ का लोप होकर 'निरंगुल' हुआ सु विभक्ति प्रत्यय नपुंसकलिंग में लगने पर 'निरंगुलम्' प्रयोग बनता है।

निरंगुलम् – निर्गतम् अंगुलिभ्य: इस लौकिक विग्रह में तथा 'निर अंगुलि भ्यस् का लोप होकर निरंगुलि। 'तत्पुरूषस्यांगुले: संख्याव्ययादे:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- निरंगुलि अच्। च् का लोप पुन: 'यस्येति च' सूत्र से अंगुलि के इ का लोप होकर 'निरंगुल' हुआ। सु विभक्ति प्रत्यय नपुंसकलिंग में लगने पर 'निरंगुलम्' प्रयोग बनता है।

959 .**अह: सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रे**: /5/4/87

एभ्यो रात्रच् स्याच्चात्संख्याव्यादे:। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्।

सूत्र का भावार्थ है अह:, सर्व, एकदेश,संख्यात, पुण्य के बाद रात्रि शब्द आने पर समासान्त टच् प्रत्यय होता है। इनमें द्वन्द समास में अह: के बाद रात्रि आने पर यह समासान्त अच् प्रत्यय होता है। जैसे-

अहोरात्र: - लौकिक विग्रह 'अहश्च रात्रिश्च अनयो: समाहार: अहोरात्र: 'तथा अहन् सु' रात्रि सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अह: सर्वैकदेश संख्यातपुण्याच्चरात्रे:' सूत्र से समासान्त अच प्रत्यय होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप हुआ तथा अच् में च् का लोप होकर अहन् रात्र हुआ। न् को रू तथा रू को 'हशि च' सूत्र से उ तथा 'आदगुण:' सूत्र से गुण होकर ओ हुआ- अहोरात्र। इस दशा में 'स नपुंसकम्' सूत्र से नपुसंकलिंग प्राप्त हुआ किन्तु 'रात्राऽह्नाहा: पुंसि' सूत्र से इसे बाधकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय लगने पर 'अहोरात्र:' प्रयोग सिद्ध होता है।

960 . **रात्राऽह्नाहा: पुंसि** /2/4/29

तदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरूषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र:। सर्वरात्र:।

सूत्र का भावार्थ है यदि द्वन्द्व समास तथा तत्पुरूष समास के अन्त में रात्र, अहन्, अह शब्द हो तो ने पुल्लिं में ही होता है। जैसे-सर्वरात्र:- लौकिक विग्रह'सर्वा: रात्र्य: इति सर्वरात्र:' तथा अलौकिक विग्रह 'सर्वा जस् रात्रि जस्' की स्थिति में सूत्र 'पूर्वकालैक सर्वजरत्-पुराणनवकेवला:' से समास हुआ। कर्मधारय समास होने के कारण 'सर्वा' को 'पूंवत्' 'कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' सूत्र से पुलिंगवत् हुआ –सर्व जस् रात्रि जस्। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप का लोप होकर 'सर्वरात्रि' हुआ। इस दशा में 'अह: सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होकर 'सर्वरात्रि अच्' हुआ। अब च् कि इत्संज्ञा और लोप होकर 'सर्वरात्र' हुआ इस दशा में प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सुप्रत्यय आने पर 'सर्वरात्र:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

पूर्वरात्र: - 'प्रर्व: रात्रे:' लौकिक विग्रह तथा 'पूर्व सु रात्रि ङ्सि' इस लौकिक विग्रह में पाणिनि के सूत्र 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणवकेवला:' सूत्र से समास होगा। 'सुपो प्रातिपादिकयो:' सूत्र से सु और ङ्सि का लोप होकर 'पूर्वरात्रि' हुआ। इस दशा में 'अह: सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा- पूर्वरात्रि अच्। इस दशा में च् का लोप होकर- पूर्वरात्रि अ। इस दशा में 'यस्येति च' सूत्र से रात्रि के इ का लोप होकर 'पूर्वरात्र' हुआ। अब 'रात्राह्नाहा:पुंसि' सूत्र से पुल्लिङ्ग होगा। प्रथमा एकवचन

में सु प्रत्यय होने पर 'पूर्वरात्र:' प्रयोग बनता है।

ठीक इसी प्रकार संख्याारात्र :, पुण्यरात्र :अतिरात्र:अतिरात्र: प्रयोग बनता है।

(वा0) संख्यापूर्व रात्र क्लीबम्। द्विरात्रम्। द्विरात्रम्। संख्यावाचक पद जिसके पूर्व हो एसा 'रात्र' पद नपुंसकलिङ्ग होता है। जैसे –

द्विरात्रम्- 'द्वयो:रात्र्यो: समाहार:द्विरात्रम्' इस लौकिक विग्रह में तथा 'द्वि ओस् ओस' इस अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोन्तरपद समाहरे' सूत्र से समास होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप होकर 'द्विरात्र' हुआ अब 'अह: सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:' सुत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होगा-द्विरात्रि अच्। च का लोप द्वि रात्रि अ। इस दशा में 'यस्येति च' सूत्र से रात्रि के इ का लोप-द्विरात्र। अच् इस दशा में 'संख्यापूर्वरात्रं क्लीबम्' वार्त्तिक से नपुंसकलिङ्ग होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु होने पर 'द्विरात्रम्' प्रयोग सिद्ध होता है

इसी प्रकार 'त्रिरात्रम्' प्रयोग भी बनता है।

961 . **राजाऽह: सखिभ्यष्टच्** /5/4/ 91

एतदन्तात् तत्पुरूषात् टच् स्यात् परमराज:।

यदि तत्पुरूष समास के अन्त में राजन्, अहन् और सखि शब्द हो तो उससे समासान्त 'टच्' (अ) प्रत्यय होता है। जैसे-

परमराज: - लौकिक विग्रह 'परमश्च असौ राजा च' तथा 'परम सु राजन सु' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'सन्महत्मरमोत्तमोत्कृष्टा:पूज्यमानै:' सूत्र से कर्मधारय समास हुआ तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से सुप् विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर'परमराजन' हुआ।अब इस दशा में 'राजाऽह:सखिभ्यष्टच्' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होगा परम राजन् टच्। इस दशा में ट् औ च् का लोप होकर 'परमराजन अ' हुआ। इस स्थिति में 'नस्तद्धिते'सूत्र से राजन् की टि 'अन्' का लोप होकर 'परमराज् अ' हुआ= परमराज। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति प्रतयय लगने पर परमाराज: प्रयोग सिद्ध होता है।

962 . **आन्महत: समानाधिकरण जातीययो**: /6/3/46

महत अकारोऽन्तादेश: स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे।

महाराज:। प्रकारवचने जातीयर्। महाकारा महाजातीय:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ यह है कि यदि जातीय र् प्रत्यय परे हो या यदि समानाधिकरण उत्तर पद परे हो तो महत् के अन्तिम त् को आत् = आ आदेश होता है।

यहॉं पर समानाधिकरण से तात्पर्य ऐसे पद से है जिसका लिङ्ग वचन और विभक्ति समान होता है। सूत्र में महत: (षष्ठी) प्रयोग है। जैसे –

महाराज: - लौकिक विग्रह 'महान् चासौ राजा' तथा 'महत् सु राजन सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टा : पूज्यमानै:' सूत्र से कर्मधारय समास होकर 'सुपो धातुप्रातिपादिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय सु का लोप होकर- महत् राजन् हुआ। इस स्थिति में 'आत्महत:समानाधि करणजातीमयो:' सूत्र से महत् को आ आदेश हुआ –मह आ राजन्। अब इस दशा में 'राजाह: सखिभ्यश्टच्' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ-महाराजन टच्। इस दशा में ट् और च् का अनुबन्ध लोप होकर-महाराजन् अ हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय होकर 'महाराज:' प्रयोग सिद्ध हुआ।

महाजातीय: शब्द में महत्+जातीयर् प्रत्यय होने पर महत को आ आदेश होने पर महाजातीय: प्रयोग बनता है।

963 . **द्वयष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यो**: 6/3/47

आत्स्यात्। द्वौ च दश द्वादश। अष्टाविंशति:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ है कि- यदि बहुव्रीहि समास और अशीति शब्द परे न हो तो संख्यावाचक उत्तरपद परे रहने पर द्वि और अष्टन् के स्थान में आकार आदेश होता है। यहॉं पर ध्यातव्य है कि आकारादेश के लिए तीन बाते आवश्यक है-

(1) बहुव्रीहिसमास नही होना चाहिए।

(2) उत्तरपद में 'अशीति' शब्द न होना चाहिए।

(3) उत्तरपद में संख्यावाचक शब्द होना चाहिए।

' **अलोऽन्त्यस्य** ' सूत्र की परिभाषा से यह आकारादेश 'द्वि' के अन्त्य इकार और अष्टन् के अन्त्य नकार के स्थान पर ही होता है। जैसे-

अष्टाविंशति: - लौकिक विग्रह 'अष्टौ च विंशतिश्च' तथा 'अष्टन् जस् विंशति सु' इस अलौकिक विग्रह में द्वन्द समास होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्यय का लोप होने पर- अष्टन्विंशति। इस दशा में 'द्वयष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यो:' सूत्र से अष्टन् के न् को आ आदेश होकर- अष्टाविंशति हुआ। प्रथमा एकवचन की विवक्षा में सु प्रतयय आने पर 'अष्टाविंशति:' रूप सिद्ध होता है।

द्वादश-'द्वौ च दश च' लौकिक विग्रह एवं 'द्वि औ दशन् जस्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में द्वन्द समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्रसे विभक्ति प्रत्यय का लोप करने पर द्विदशन हुआ इस दशा में 'द्वयष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यों:' सूत्र से द्वि के इ को आत् आदेश होकर 'द्वादशन' हुआ ।अब इस दशा में विभक्ति प्रत्यय लगने पर प्रथमा बहुवचन में 'द्वादश' रूप सिद्ध होता है।

964 . **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो**: /2/4/26

एतयो:परपदस्येव लिंगं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धविप्पली।

(वार्त्तिक) द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:। पन्चसु कपालेषु संस्कृत: पन्चकपाल: पुरोडाश:।

प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ होगा कि समाहार से भिन्न द्वन्द्व और तत्पुरुष में लिंग उत्तरपद के समान होता है। यहॉं तात्पर्य यह है कि जो लिङ्ग उत्तरपद का होता है, वही लिङ्ग समस्तं पद का भी होता है। समाहार द्वन्द्व में समस्त पद नपुंसकलिङ् होताहै। जैसे- 'कुक्कटश्च मयूरी च ' (मूर्गा और मोरनी) – इस विग्रह में द्वन्द्व समास हो कुक्कटमयूरी' प बनता है। यहॉं पर उत्तरपद्'मयूरी' है और यह स्त्रीलिङ्ग में है। अत: उपरोक्त सूत्र से उसी के समान समस्त शब्द से स्त्रीलिंग हो प्रथमा के द्विवचन में 'कुक्कुट' रूप बनता है। इसी प्रकार 'मयूरीकुक्कुट' रूप बनने पर उत्तर 'कुक्कुट' के पुल्लिग होने के कारण समस्त पद पर पुल्लिंग हो 'मयूरीकुक्कुटौ' रूप बनता है। इसी प्रकार'अर्धम्पिप्प्ल्या:'(पिप्पली का आधा)- इस विग्रह में तत्पुरुष समास होकर'अर्धपिप्पली' रूप बनने पर इसी प्रकार उत्तरपद 'पिप्पली' के स्त्रीलिंग होने से समस्त शब्द से स्त्रीलिंग हो 'अर्धपिप्पली रूप सिद्ध होता है।

उपर्युक्त वार्त्तिक से तात्पर्य यह है कि (1) द्विगुसमास में (2) जिस समास का पूर्व पद

प्राप्त, आयन्न , अलम् हो उसमें तथा (3) गति समास में उत्तरपद के समान समस्त पद के लिङ्ग का निषेध हो जाता है ऐसा समझना चाहिए।

यहॉ पर तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त तीन स्थितियों में समस्त पद का लिंग उत्तरपद के लिङ्ग के समान नही होता है। जैसे-पन्चसु कपालेषु संस्कृत: पुरोडाश: पन्चकपाल:। (पॉच कपालो में पकाया गया पुरोडाश) यहॉ पर 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारेच' सूत्र से द्विगु समास होता है। पन्चकपाल। इसका लिंग 'परवतिलिंगं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:' सूत्र से 'कपालम्' उत्तरपद का नपुंसकलिड्ग होना चाहिए किन्तु 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्व गतिसमासेषु' सूत्र से इसका निषेध हुआ तथा इसका लिड्ग विशेष्य शब्द 'पुरोडाश:' के समान ही पुल्लिड्ग होता है –पन्चकपाल: बना।

यहॉ पर 'प्राप्त'और 'आपन्न' आदि के उदाहरण के लिए अग्रिम सूत्र का विधान किया गया है-

965 . **प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया** /2/2/4

समस्येते ।अकारश्चानयोरन्तादेश: । प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविक:। आपन्न जीविक:। अलं कुमार्यै अलंकुमारि: । अत एवं ज्ञापकांत्समास:। निष्क्रौशाम्बि:।

सूत्र का तात्पर्य है प्राप्त एवं आपन्न पदों का द्वितीया विभक्ति वाले दूरे सुबन्त के साथ समास होता है। यह समास भी तत्पुरूष समास के अर्न्तगत ही आता है। 'प्राप्त' और 'आपन्न' के समास में समास हो जाने पर अन्तिम अल् को अकार आदेश होता है। जैसे-

प्राप्तजीविक:- लौकिक विग्रह 'प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविक:' तथा 'प्राप्तसु जीविका अम्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'प्राप्तापन्ने च द्वितीयया:' से समास हुआ। इस दशा में 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से जीविका की उपसर्जन संज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदियो:' सूत्र से सुप् का लोप होकर- प्राप्तजीविका बना। इस दशा में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य:' सूत्र से जीविका के आ को अ होकर प्राप्तजीविक बना। 'परवल्लिड्ग द्वन्द्वतत्पुरूषयो:' सूत्र से समस्त पद स्त्रीलिड्ग होना चाहिए किन्तु 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' सूत्र से निषेध होकर विशेष्य के अनुसार लिंग होकर पुल्लिग में 'प्राप्तजीविक:' प्रयोग सिद्ध होता है।

ठीक इसी प्रकार 'आपन्नजीविक:' प्रयोग भी बनता है।

अलंकुमारि- (कुमारी के योग्य)

लौकिक विग्रह 'अलं कुमार्यै अलंकुमारि ड़े' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' वार्त्तिक से 'अलम्' के सुबन्त पद के साथ समास का निर्देष होने पर ही समास हुआ क्योंकि इसके लिए समास का कोई सूत्र नहीं है। इस दशा में 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से 'कुमारी' को उपसर्जन संज्ञा हुयी किन्तु पूर्वनियात नहीं होगा । इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से 'ड़े' का लोप होकर अलंकुमारी बना। 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्र से कुमारी के अन्तिम ई को ह्रस्व इ होकर अलंकुमारि हुआ इस स्थिति में 'परवल्लिंगं द्वन्द्वतत्पुरूषयो:' सूत्र से स्त्रीलिड्ग होना चाहिए किन्तु वार्त्तिक 'द्विगप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' से निषेध होकर, विशेष्य करने पर 'अलंकुमारि:' प्रयोग सिद्ध होता है।

निष्कौशम्बि: - निष्कौशाम्बि: में भी ' परवल्लिड्ग द्वन्द तत्पुरूषयो:' सूत्र से उत्तरपद कौशाम्बी के स्त्रीलिड्ग के आधार पर लिड्ग होता किन्तु गतिस मास होने के कारण 'द्विगुप्राप्तापन्नालं पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य:' सूत्र से निषेध होकर विशेष्य के अनुसार पुल्लिंग होकर - ' निष्कौशम्बि:' प्रयोग सिद्ध होता है।

966 . **अर्धर्चा: पुंसि च** /2/4/31

अर्धर्चादय: शब्दा: पुंसि क्लीबे च स्यु:। अर्धर्च:, अर्धर्चम् । एवं ध्वज-तीर्थ: शरीर –मण्डप-यूप-देहांकुशपात्र-सूत्रादय:। सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । कमनीयम् ।

सूत्र का शब्दार्थ है कि - (अर्धर्चा) 'अर्धर्च' आदि (पुंसि) पुल्लिंग में होते हैं (च) और.....। किन्तु यहॉ पर क्या होता है यह स्पष्ट नहीं होता है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए सूत्रस्थ 'च' के द्वारा पूर्वसूत्र 'अपथं नपुंसकम्' से 'नपुंसकम्' का ग्रहण होता है। 'अर्धर्चादि गण है और इसमें 'अर्धर्च' गोमय और कषाय आदि शब्दों का समावेश होता है। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा-'अर्धर्च' (आधी ऋचा) आदि शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में ही होता है। इस प्रकार इन शब्दों के दो-दो रूप बनते हैं जैसे- **अर्धर्च**: (आधी ऋचा) 'अर्धम् ऋच:' लौकिक विग्रह तथा 'अर्ध सु ऋच् ङस्' इस अलौकिक विग्रह में 'अर्धम्नपुंसकम्'सूत्र से समास हुआ इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप् का लोप होकर अर्ध ऋच हुआ।

'ऋक्पूरब्धु: पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय होगा- अर्ध ऋच् अ।

गुण एकादेश सन्धि अ +ऋ= अर् आदेश होकर-अर्धर्च बना । 'परवल्लिंगं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:' सूत्र से ऋच् स्त्रीलिंग है अत: स्त्रीलिंग होना चाहिए, किन्तु 'अर्धर्चा:पुंसि च' से पुल्लिड्ग और नपुंसकलिंग। सुप् विभक्ति प्रत्यय करने पर- अर्धर्च: प्रयोग तथा नपुंसकलिंग में 'अर्धर्चम्' प्रयोग सिद्ध होता है । इसी प्रकार से ध्वज, तीर्थ, शरीर मण्डप, युप, देह,अंकुश, पात्र, सूत्रआदि शब्द दोनों लिंगों में होते हैं। जब किसी विशेष लिंग की विवक्षा नहीं होती, तो सामान्य कथन में नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है। जैसे- 'मृदुपचति' में मृदु (कोमल) क्रियाविशेषण है, सामान्यकथन के कारण नपुंसलिंग हुआ है। 'प्राप्त:कमनीयम्' प्रयोग में 'कमनीयम्' में सामान्य कथन के कारण नपुंसकलिंग हुआ।

अभ्यास के प्रश्न –

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए –

1. परमराज**:** किस सूत्र का उदाहरण है –
   - क**. तत्पुरुष:** ख. राजाऽह**:** सखिभ्यष्टच
   - ग. सप्तमी शौण्डै: घ .पञ्चमी भयेन
2. प्राप्तजीविक: किस सूत्र का उदाहरण है –
   - क**.** प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया ख. राजाऽह**:** सखिभ्यष्टच
   - ग. सप्तमी शौण्डै: घ .पञ्चमी भयेन
3. अर्धर्च: किस सूत्र का उदाहरण है –
   - क**.** प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया ख. राजाऽह**:** सखिभ्यष्टच
   - ग. सप्तमी शौण्डै: घ . अर्धर्चा**:** पुंसि च
4. पंचकपाल: का सामासिक विग्रह है-

क.पंच कपाले संस्कृत:

ख. पंचे कपाले संस्कृत:

ग. पंचानां कपाले संस्कृत:

घ . पंचसु कपालेषु संस्कृत:

5. मृदुपचति में मृदु है –

क.क्रिया ख. कर्म **ग. क्रिया विशेषण** घ . सहायक

6. **अलंकुमारि** में अलं शब्द प्रयुक्त है –

क. योग्यता हेतु ख. जाने हेतु ग. साधन हेतु घ . कोई नहीं

7. अश्वक्रीती पद का शुद्ध विग्रह है –

क.अश्वस्य क्रीता **ख. अश्वेन क्रीता** ग. अश्वषु क्रीता घ . कोई नहीं

8. अष्टाविंशति का संख्या में क्या अर्थ है –

क.आठ और सात **ख. अट्ठाइस** ग. अट्ठारह घ . कोई नहीं

9. अर्धर्च: का अर्थ है –

क.आधा चर **ख. आधी ऋचा** ग. आधा मार्ग घ.आधी रचना

10. कुम्भ कार: में कौन सा प्रत्यय प्रयुक्त है -

क.अण् ख. क्यप् ग. आर् घ . ल्यप्

4.4 **सारांश**

कर्मधारय वस्तुत: पृथक समास है। फिर भी इसे तत्पुरूष के स्वभाव में सम्मिलत करते हुये उसके भेद के रूप में स्वीकार किया गया। यह उपमान समास है। इसमें दो पदों के अन्दर उपमान का समास निर्धारित किया जाता है। तत्पुरुष में कतिपय प्रयोग समासान्त प्रत्यय के साथ सिद्ध होते है। यथा अवसर उनके उदाहरण भी इस इकाई में दिये गये है। जिस प्रकार कर्मधारय तत्पुरुष का भेद माना गया है उसी प्रकार द्विगु समास भी कर्मधारय का भेद माना जाता है। किन्तु अनेकश: संख्यापूर्वपदों के द्वारा इस समास की निर्मिति देखी जाती है। पूर्ण रूप से संस्कृत व्याकरण का विषय समास रहा है, जो सिद्धान्तकौमुदी में विस्तृत है। फिर भी समास वर्णन के इस खण्ड में प्रमुखता के आधार पर इन समासों के वर्णन किये गये है। सभी लिंगों में, सभी वचनों में भी तत्पुरूष आदि के प्रयोग होते है। च के अर्थ में आने वाला समास द्वन्द्व समास कहलाता है। इसमें नित्य एकवचन में प्रयुक्त पद ग्रहण नहीं किये जाते। विशेष ध्यातव्य यह है कि द्वन्द्व समास के पद नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होते हैं। अत: प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप इन समासों में बनने वाले प्रयोगों की सम्यक् जानकारी प्राप्त कर सूत्रों की व्याख्या को बताने में सक्षम हो सकेंगे।

4.5 **शब्दावली**

1. **कर्मधारय** – दो पदों के बीच में उपमान का निर्द्धारण कर के समास की सिद्धि की जाती है

2 . **द्विगु** – दो पदों में जिसका एक पद संख्यावाची हो किन्तु स्पष्ट न होने के कारण इसे द्वाभ्याम गच्छति इति द्विगु: कहा जाता है।

4.6 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

1. ख. राजाऽह**:** सखिभ्यष्टच 2. क**.** प्राप्तऽऽपन्ने च द्वितीयया 3 घ . अर्धर्चा**:** पुंसि च
4. घ.पंचसु कपालेषु संस्कृत: 5. ग. क्रिया विशेषण 6. क. योग्यता हेतु 7. ख. अट्ठाइस
8.ख. अट्ठाइस 9. ख. आधी ऋचा 10. क.अण्

4.8 **निबन्धात्मक प्रश्न**

1 . कर्मधारय समास को परिभाषित कर किसी एक उदाहरण की सिद्धि कीजिये।

2 . द्विगु का अर्थ बताते हुये संख्यापूर्वो द्विगु: सूत्र की व्याख्या लिखिये।

इकाई .5 शेषो बहुव्रीहिः सूत्र से द्वन्द्वात् चु –द-ष- हान्तात् समाहारे सूत्र तक विस्तृत व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 वर्ण विषय

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

बहुव्रीहि समास का विस्तृत वर्णन इस इकाई का वर्ण्य विषय है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने अव्ययीभाव, और तत्पुरूष आदि समासों से लेकर द्वन्द्व समास तक का अध्ययन किया है। बहुव्रीहि का प्रारम्भ शेषो बहुव्रीहि: सूत्र से होता है जो इसका अधिकार सूत्र कहलाता है। यह द्वन्द्व के पूर्व तक चलता है किन्तु इसी इकाई में द्वन्द्व समास भी वर्णित है।

बहुव्रीहि की विशेषता यह है की जब प्रथमान्त पदों का उनसे अलग होकर किसी भी पद के विकल्प के साथ उसका समास बनाया जाया जाये तो वह बहुव्रीहि कहलाता है। तात्पर्य यह है कि उस समास में आये हुये पद यदि अपने अतिरिक्त किसी अन्य पद के अर्थ का भी बोध कराते हो तो वह बहुव्रीहि कहलाता है। द्वन्द्व समास पूर्व पद और उत्तर पद अर्थात् च के अर्थ का वाची होता है जिसमें युग्म पदों के होने पर भी और के अर्थ में प्रयुक्त रहने पर समास का निर्धारण किया जाता है।

अत: बहुव्रीहि समास के प्रयोगों एवं सूत्रों की सिद्धि और व्याख्या अर्थात् द्वन्द्व समास के प्रयोगों और व्याख्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् आप अन्य पदों प्रधान अर्थ वाले शब्दों की सिद्धि करते हुये नपुंसक लिंग में प्रयुक्त युग्म पदों का समास भी बता सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

बहुव्रीहि और द्वन्द्व के वर्णन से सम्बन्धित इस तीसरी इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप
– बहुव्रीहि की व्यापकता बता सकेंगे।

1. उसमें प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या कर सकेंगे।
2. बहुव्रीहि और तत्पुरुष में अन्तर स्थापित कर सकेंगे।
3. द्वन्द्व समास क्यों पृथक है, इसे समझा सकेंगे।
4. किन पदों का कर्मधारय और बहुव्रीहि में अलग – अलग समास होता है यह भी जान सकेंगे।

5.3 वर्ण्य विषय

967 . **शेषो बहुव्रीहि**: 2/2/23।।

अधिकारोऽयम् प्राग् द्वन्द्वात्।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ यह है- शेष (बाकी) बहुव्रीहि: अर्थात् बहुव्रीहि होता है। किन्तु यहॉं पर शेष शब्द कहने का भावार्थ यह है कि पिछले कहे गये अव्ययीभाव और ‘तत्पुरुष समासों के बाद बचा हुआ। द्वन्द्व समास के पूर्व तक अधिकार चलता है।

बहुव्रीहि समास विधायक सूत्र-

968 . **अनेकमन्यपदार्थे** //2/24।अनेक प्रथमान्तम् अन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहि:।

सूत्र का भावार्थ यह है, जब अनेक प्रकार के प्रथमान्त पदों का उनसे अलग किसी भी पद के विकल्प के साथ समास किया जाता है, तब वह बहुव्रीहि कहलाता है। तात्पर्य यह है कि समास में आये हुए पद यदि अपने अतिरिक्त किसी भी अन्य पद का बोध कराते है, तो वह बहुव्रीहि समास होगा। जैसे-पीत और अम्बर दो पद हैं, जिसका अर्थ

है, पीला वस्त्र। यहाँ पर पीताम्बर का अर्थ पीला वस्त्र है। अभिप्राय नहीं है, वास्तव में इसका प्रयोग तो श्रीकृष्ण के लिए हुआ है, जिनका वस्त्र पीला रहता था । श्रीकृष्ण पद समास में नहीं आया है, अत: वह अन्य पद है और उसी का बोध कराने के कारण पीताम्बर: समास बहुव्रीहि संज्ञक है।

969 . **सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ** 2/2/35**।**

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि:।।

प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि बहुव्रीहि समास में सप्तमी विभक्ति के पद का और विशेषण पूर्व निपात हो, अत: उसे समास में पहले रखा जाय। जब यह निर्णय न हो पाये कि किस पद को पहले रखा जाय तब इसी समसया के निदान के लिए इस सूत्र से विधान किया गया है कि सप्तम्यन्त और विशेषण वाची पदों को पहले ही रखना चाहिए जैसे- 'प्राप्तमुदकं ग्रामम्' (ऐसा गॉव जहॉं पर पानी पहुँच चुका हो) –इस विग्रह में 'प्राप्तम्' और 'उदकम्' दोनों का ही प्रथमान्त हैं, अत: उपसर्जन संज्ञक होने से 910 – उपसर्जन-बोध हो विशेषण वाचक पद' प्राप्तम्' का पहले प्रयोग होता हैं। इसी प्रकार 'कण्ठे कालो। यस्य' (जिसके गले में काला निशान हो) - इस विग्रह में सप्तम्यन्त पद 'कण्ठे का पहले प्रयोग होगा।

970 . **हलदन्तात् सप्तम्या: संज्ञायाम्** 6/3/94**।** हलन्ताद् अदन्ताद् सप्तम्या अलुक्। कण्ठेकाल:। प्राप्तमुदंक यं प्राप्तोदको ग्राम: । ऊढ़रथोऽनड्वान् । उपहृतपशूं रूद्र: । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरि:। वीरपुरुषको ग्राम:।

प्रस्तुत सूत्र का शब्दार्थ है- कि संज्ञा के अर्थ में हलन्त तथा अदन्त के बाद सप्तमी का। किन्तु इसे ठीक-ठीक जानने के लिए एक अधिकार सूत्र 'अलुगुत्तरपदे'6/3/1 से अलुक् पद की अनुवृत्ति करनी पड़ती है, इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होता है-हलन्त (जिसके अन्त में हल् वर्ण हों) और अदन्त (अकारान्त) के पश्चात् संज्ञा के अर्थ में सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं होता है। जैसे – कण्ठ ङि काल सु इस विग्रह में केवल सु को लोप होकर सप्तमी ङि का लोप नहीं होता है और कण्ठेकाल: रूप बनता है।

कण्ठेकाल: (जिसके गले में काला निशान हो)कण्ठे काल: यस्य स: इस लौकिक विग्रह तथा 'कण्ठ ङि काल सु' इस अलौकि विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ सूत्र से सप्तम्यन्त पद का पूर्व निपात होकर बहुव्रीहि समास बनेगा। इस स्थिति में 'हलदन्तात् सप्तम्या: संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमी के लोप का निषेध होकर अनुबंध लोप और गुण होकर 'कण्ठेकाल हुआ किन्तु प्रथमा एक वचन में 'सु' का आगम करने पर और रूत्व विसर्ग करने पर 'कण्ठेकाल:' प्रयोग सिद्ध।

प्राप्तोदक: ग्राम: जिसमें जल पहुँच चुका हो ऐसा ग्राम प्राप्तम् उदकम् यं स: इस लौकिक विग्रह तथा प्राप्त सु उदक सु इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम अनेकमन्यपदार्थ सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होगा। तत्पश्चात गुण एकादेश होकर प्राप्तोदक बनेगा। इस स्थिति में कृत्तद्धि-तसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन की विवक्षा में विशेष्य (ग्राम:) के अनुसार

पुल्लिंग में सु विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होगा। तत्पश्चात् रूत्व विसर्ग करने पर 'प्राप्तोदक:' सिद्ध होगा 'प्राप्तोदक**:** ग्राम**:**।

ऊढ़रथ: (जिसने रथ खीचा हो ऐसा बैल) 'ऊढ़: रथ: येन स:' इस लौकिक विग्रह एवं ऊढ़ सु रथ सु इस अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्य पदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति में'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से विशेषण पद ऊद का पूर्व निपात होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर ऊढरथ बना। 'कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में विशेष्य के अनुसार 'सु' विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होगा तथा 'ऊढरथ सु' की दशा में रुत्व विसर्ग होने 'ऊढरथ:' रूप सिद्ध हुआ।

उपहृतपशु: (ऐस पशु जिसे पशु की बलि दी गयी हो) उपहत: पशु: यस्मै स: इस लौकिक विग्रह तथा 'उपहत सु पशु सु इस अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्य पदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। बहुव्रीहि समास होने पर 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से विशेषणपद 'उपहृत' का पूर्व निपात होगा। 'उपहत सु पशु सु' की दशा में 'सुपोधातु प्रतिपदिकयो:' से 'सु' विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'उपहृत पशु' रूप बना। इस स्थिति में प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में विशेष्य रूद्र: के अनुसार पुल्लिंग में 'सु' विभक्ति प्रत्यय प्राप्त हुआ। उपहृतपशु 'सु' की दशा में रूत्व विसर्ग कार्य होने पर 'उपहृतपशु: रूप सिद्ध हुआ।

उद्धृतौदना: **स्थाली** (ऐसा पतीली जिससे भात निकाल लिया गया हो।) उद्धृत: ओदन: यस्या: सा इस लौकिक विग्रह तथा उद्धृत सु ओदन सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अनकमन्यपदार्थ' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सप्तमी विशेष्णे बहुव्रीहौ सूत्र से विशेषण पद 'उदधृत का पूर्व निपात होगा। 'उद्धृत सु ओदन सु' की दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से 'सु' विभक्ति प्रत्यय का लोप हुआ। 'उद्धृत ओदन' में वृद्धि एकादेश करने पर- उद्धृतोदन। उद्धृतौदन की प्रातिपदिक संज्ञा होकर विशेष्य स्थाली के स्त्रिलिंग में प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय लगने पर समस्त पद बना-उद्धृतौदाना।

पीताम्बर: हरि: (पीले वस्त्र वाले हरि) पीतम् अम्बरं यस्य स: लौकिक विग्रह में तथा पीत सु अम्बर सु इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहिसमास होगा। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से पूर्व निपात पीतम् (विशेषण) का हुआ। 'पीत सु अम्बर सु' की दशा में सुपो धातुप्रातिपदिकयो: 'सूत्र से सु विभक्ति प्रत्यय का लोप होकर 'पीत अम्बर' यह रूप हुआ। दीर्घ एकादेश होकर 'पीताम्बर' हुआ तथा प्रातिपदिक संज्ञा होने के पश्चात् प्रथमा एकवचन की विवक्षा में 'सु' की प्राप्ति और विभक्ति कार्य करने पर पीताम्बर: प्रयोग सिद्ध हुआ।

वीरपुकषक: ग्राम: (ऐसा ग्राम जिसमें वीर पुरुष रहते हैं) लौकिक विग्रह वीरा: पुरुषा: यस्मिन् स:' तथा अलौकिक विग्रह बीर जस् पुरुष जस् की स्थिति में 'अनेकमन्यपदार्थ' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस स्थिति में 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से विशेषण वीरा:का पूर्व निपात होकर 'सुपोधातु-प्रातिपदिकयो:' सूत्र से सुप्। प्रत्ययों का लोप होकर वीरपुरुष हुआ। अब 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से 'कप्' प्रत्यय लगने तथा अनुबंध लोप होने पर 'वीर पुरुषक' हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा के बाद 'सु' की प्राप्ति तथा रूत्व विसर्ग होने पर 'वीरपुरुषक: रूप सिद्ध हुआ।

वार्त्तिक-प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोप: प्रपतितपर्ण: प्रपर्ण:।

धातु से निर्मित प्रथमान्त पद के आरम्भ में यदि प्र आदि आवें तो उनका किसी अन्य पद के साथ समास बनता है। इन प्रादिपूर्वक धातुज शब्दों के उत्तर पद का विकल्प से लोप भी होता है। जैसे-

'**प्रपतितपर्ण**:' इस सामाजिक पद में प्रपतित का पर्ण के साथ समास होने पर उत्तर पद पतित का लोप हो जाता है और 'प्रपर्ण:' प्रयोग सिद्ध होता है।

'प्रपर्ण' –प्रकृष्टं पतितं प्रपतितम्। पर्ण: प्रपर्ण:। प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् इस लौकिक विग्रह तथा प्रपतित जस् पर्ण जस् इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'प्रातिदभ्योधातुजस्य वा चोत्तर पदलोप:' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'प्रपतितपर्ण' बना। इस दशा में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य0' इत्यादि वार्त्तिक से प्रपतित के उत्तरपद पतित का विकल्प से लोप होकर 'प्रपर्ण' बनेगा। प्रथमा एकवचन पुल्लिंग में सु प्रत्यय लगने पर, विभक्ति कार्य करने पर प्रपर्ण: प्रयोग सिद्ध होगा ।

वार्त्तिक – नञोस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप: अविद्यमानपुत्र:अपुत्र:।।

नञ् के बाद अस्त्यर्थ (विद्यमान होना) पद का बहुव्रीहि समास होता है और उस स्थिति में उत्तरपद का विकल्प से लोप हो जाता है। जैसे- अविद्यमान का पुत्र: के साथ समास बनने पर उत्तर-पद विद्यमान का लोप होने से अपुत्र: समस्त पद बनता है।

'अपुत्र:' 'अविद्यमान: पुत्रो यस्य' इस लौकिक एवं अविद्यमान सु पुत्र सु इस अलौकिक विग्रह के अनुसार 'नञोस्त्यर्थानाम्0' इत्यादि वार्त्तिक से बहुव्रीहि समास बनेगा। सुप् प्रत्यय का लोप होकर'अविद्यमान पुत्र' ऐसा बनेगा। इस स्थिति में 'नञोस्त्यर्थानां वाच्यों वा0' इस वार्त्तिक से अस्त्यर्थ पद विद्यमान का लोप होकर 'अपुत्र' बनेगा। इस दशा में प्रथमा एकवचन पुल्लिंग में सु प्रत्यय लगने पर रूत्व कार्य करने पर 'अपुत्र' प्रयोग सिद्ध हुआ।

स्त्रीवाची पद को पुल्लिड़्गवत् बनाने का नियम

971 . **स्त्रिया:पुंवद भाषितपुंस्कादनूड़् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु** 6/3/34 ।उक्तंपुस्कादनूड़् ऊड़ोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहि:, निपातनात् पन्चम्या: अलुक् षष्ठयाश्चलुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तनपुंसकंतस्मात्पर ऊड़ोऽभावो यत्र तथा भूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिंग , उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परत: । गोस्त्रियोरिति ह्रस्व: । चित्रगु: । रूपवद्धार्य: अनुङ् कि वामोरूभार्य:।

यदि प्रियादिगण और पूरणी (प्रथम, द्वितीय, तृतीया आदि) के शब्दों को छोड़कर कोई भी समानाधिकरण स्त्रीलिंग शब्द उत्तरपद के रूप में बाद में आया हो तो भाषितपुंस्क और उड़्प्रत्ययादिरहित स्त्रीवाचक पद के रूप पुलिंग के ही समान होते हैं।

भाषितपुंस्क क्या हैं? ऐसा पद जिसका प्रयोग पुल्लिंग तथा उससे भिन्न लिंग में एक ही निमित्त से होता हो। प्रियादिगण में ये शब्द गिने जाते हैं- प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी , दुर्भगा, भक्ति:, सचिवा, कान्ता, समा, चपला दुहिता, वामा अबला तनया, आदि।

'**चित्रगु**:' 'चित्रा गावो यस्य' इस लौकिक विग्रह तथा चित्रा जस् गो जस् इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथमा 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपोधातु प्रातिपदिकयो0' सूत्र से सुप् प्रत्ययों का लोप होकर 'चित्रागो' बनेगा। इस दशा में 'स्त्रियो: पुंवद्धाषित0' इस सूत्र से चित्रा जो ऊड़्प्रत्ययान्त नहीं है उसे पुल्लिंग 'चित्र'

होकर चित्र गो रूप बनेगा। 'एक विभक्तिचाऽपूर्व-निपाते सूत्र से गो की उपसर्जन संज्ञा होगी तथा 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्र से गो के ओ को ह्रस्व उ होकर चित्रगु रूप बनेगा। प्रथमा एकवचन का कार्य करने पर 'चित्रगु:' प्रयोग सिद्ध होगा।

रूपवद्भार्य: -(रूपवती भार्या वाला)

'रूपवती भार्या यस्य स:' इस लौकिक विग्रह तथा 'रूपवती सु भार्या सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से समास बनेगा।'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर 'रूपवती भार्या ' बनेगा। इस स्थिति में 'स्त्रिया: पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्' इस वार्त्तिक से रूपवती को पुल्लिंग होकर-रूपवद्भार्या बनेगा। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' सूत्र से भार्या की उपसर्जन संज्ञा होगा तथा 'गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' सूत्र से उसे ह्रस्व होकर 'रूपवद्भार्य:' बनेगा। प्रथमा विभक्ति एकवचन में सु की प्राप्ति होने तथा विभक्ति कार्य करने पर रूपवद्भार्य: प्रयोग सिद्ध होगा।

वामोरूभार्य: पद में वामोरू के अन्त में ऊङ् प्रत्यय है अत: उसे पुंवदभाव होकर ह्रस्व नहीं होगा किन्तु भार्याशब्द के अन्तिम आ को तो 'गोस्त्रियो0' इत्यादि सूत्र से ह्रस्व होगा ही।

972 . **अप-पूरणी-प्रमाण्यो**: 5/4/126**।**

पूरणार्थ प्रत्ययान्तं यत् त्रीलिड्गं, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहे: अप् स्यात् ।कल्याणी पन्चमी यासां रात्रीणाम् ता: कल्याणीपन्चमा रात्र्य: । स्त्री प्रमाणी यस्य स स्वीप्रमाण: । अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय:। इत्यादि।

जहॉं पर पूरण अर्थ वाले प्रत्यय से अन्त होने वाला स्त्रीलिंग शब्द आवे या जिसके अन्त में प्रमाणी शब्द हो उससे समासान्त अप् प्रत्यय लगता है।

कल्याणीपन्चमा रात्र्य: (जिन रात्रियों में पॉंचवीं रात कल्याणकारी हो)

यहॉं पर पन्चन् शब्द से डट् प्रत्यय होकर उसके स्थान पर मट् आदेश होने पर और पन्चन् के न् का लोप होकर पन्चम बनता है। पुन: पूरण अर्थ में ङीप् प्रत्यय करने पर पन्चम शब्द हुआ है। 'कल्याणी सु पन्चमी सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से प्रत्ययों का लोप हो जाने पर कल्याणीपन्चमी+अप् हुआ। अनुबन्ध लोप होकर 'यस्येति च' सूत्र से पन्चमी के ईकार का लोप होकर कल्याणीपन्चम् बना। स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् प्रत्यय करने से कल्याणीपन्चमा बना और बहुवचन में जस् प्रत्यय करने पर कल्याणी पन्चमा: रूप सिद्ध हुआ।

'स्त्रीप्रमाण:' (स्त्री जिसके लिए प्रमाण हो) 'स्त्री प्रमाणी यस्य स:' इस लौकिक विग्रह 'तथा स्त्री सु प्रमाणी सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से सु:प्रत्ययों का लोप होकर स्त्रीप्रमाणी बनेगा। अत: इस बहुव्रीहि समास के अन्त में प्रमाणी शब्द होने के कारण'अप-पूरणी प्रमाण्यो:' सूत्र से अप् प्रत्यय प्राप्त होकर स्त्रीप्रमाणी अप् होगा। अनुबन्ध लोप होकर तथा 'यस्येति च' सूत्र से ईकार का लोप होकर स्त्रीप्रमाण शब्द बना। पुल्लिड्ग प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति करने और विसर्ग कार्य करने पर 'स्त्रीप्रमाण:' प्रयोग सिद्ध होगा।अप्रियादिषु क्यों कहा ?जब प्रिया आदि शब्द परे हो तो स्त्रीलिंग नहीं होगा। जैसे – 'कल्याणी प्रिय:' शब्द में 'कल्याणी प्रिया यस्य स:' इस लौकिक विग्रह तथा 'कलयाणी सु

प्रिया सु'। इस अलौकिक विग्रह के अनुसार समास करने पर कल्याणी के बाद प्रिया शब्द है अत: कल्याणी को पुल्लिंग कल्याण नही होग । इस दशा में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' सूत्र से प्रिया को ह्रस्व होकर 'कल्याणी प्रिय' और प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर कल्याणी प्रिय: रूप बनेगा।

973 . **बहुव्रीहौ सवथ्यक्ष्णो: स्वांगात् षच्** 5/4/123

स्वांगवाचिसक्थ्यक्ष्णन्ताद्बहुव्रीहे:षच् स्यात् । दीर्घसक्थ: । जलजाक्षी । स्वांगात किम् ? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टि: । अक्ष्णो-अदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

यदि कहीं पर बहुव्रीहि समास वाले पद के अन्त में स्वांगवाचक (प्राणी के अंग) सक्थि (जॉघ), अक्षि (ऑख) शब्द आते हों तो वहॉ पर समासान्त षच् प्रत्यय का विधान होता है। जैसे-'दीर्घे सक्थिंनी यस्य स:' इस लौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास बनेगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर- दीर्घसक्थि होगा। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो0' इत्यादि सूत्र से षच् प्रत्यय लगाने पर, अनुबन्ध लोप करने पर 'दीर्घसक्थि अ' बनेगा। पुन: 'यस्येति च' सूत्र से इ का लोप करने पर दीर्घसक्थ् अ=दीर्घसक्थ बनेगा। इस स्थिति में प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने और विसर्ग कार्य करने पर दीर्घसक्थ: प्रयोग सिद्ध होगा ।

जलजाक्षी-(जिसके नेत्र जलज (कमल)की तरह हो) 'जलजे इव अक्षिणी' इस लौकिक तथा' जलज औ अक्षि औ' इस अलौकिक विग्रह की दशा में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'जलजाक्ष' बनेगा। बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो: स्वांगात् षच् सूत्र से षच् प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप करने पर तथा 'यस्येति च ' सूत्र से इ का लोप होने पर –जलजाक्ष बनेगा। षित् होने के कारण 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् प्रतयय करने पर 'जलाजाक्षी' प्रयोग सिद्ध होगा।

स्वागात् किम् ? प्रश्न यह है कि प्राणी के वाचक होने पर ही सक्थि और अक्षि से अन्त होने वाले पदों के साथ ही षच् प्रत्यय क्यों लगेगा? यह इसलिए कि 'दीर्घसक्थ शकत' (लम्बे धुरे वाली गाड़ी) और 'स्थूलाक्षावेणु यष्टि ' (मौटी ऑखों वाली बॉस की लाठी) आदि प्रयोगों में सक्थि तथा अक्षि शब्द प्राणी के अंगवाचक नहीं है। बल्कि शकट और यष्टि के अंगवाची हैं जो प्राणी है ही नहीं । अत: बहुव्रीहि समास हो जाने पर भी षच् प्रत्यय नहीं होगा। 'स्थूलक्षा' पद में 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' सूत्र से अच् प्रत्यय होकर , 'यस्येति' सूत्र से स्थूलाक्षि के इ का लोप होने पर 'स्थूलाक्ष्' बनेगा। स्त्रीलिंग में 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् (आ) प्रत्यय करने पर स्थूलाक्षा प्रयोग सिद्ध होगा ।

974 . **द्वि त्रिभ्यां ष मूर्ध्न**: 5/4/215 ।

आभ्यां मूर्ध्न: ष: बहुव्रीहौ द्विमूर्ध: त्रिमूर्ध: ।। यदि बहुव्रीहि समास में द्वि तथा त्रि शब्द के बाद मूर्धन् शब्द आया हो तो उससे समासान्त ष प्रत्यय लगता है। जैसे -

द्विमूर्ध:' –(दो सिरों वाला)'द्वौ मूर्धानौ यस्य ' इस लौकिक विग्रह तथ 'द्वि औ मूर्धन् औ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में ' सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति प्रत्ययों का लोप होकर द्विमूर्धन् बनेगा 'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्न:' सू0 से ष प्रतयय करने पर विभक्ति कार्य करने पर द्विमूर्ध: प्रयोग सिद्ध हुआ। 'त्रिमूर्ध:' त्रयो मूर्धान: यस्य' इस लौकिक तथा 'त्रि जस् मूर्धन् जस्' इस अलौकिक विग्रह की दशा में द्विमूर्ध: की तरह त्रिमूर्ध: प्रयोग की

सिद्ध हो जायेगी।

समासान्त अप् प्रत्यय -

975 .**अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्न**: 5/4/117 ।

आभ्यां लोम्नो अप् स्यात् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोम:। बहिर्लोम:।

यदि अन्तर् तथा बहिर् शब्दों के बाद लोमन् शब्द का बहुव्रीहि समास हो तो समासान्त अप् प्रत्यय लगता है। जैसे –

'अन्तर्लोम:' (जिसके रोएँ अन्दर हों)

'अन्तर लोमानि यस्य स:' इस लौकिक विग्रह तथा 'अन्तर लोमन् जस्' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सर्वप्रथम 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास होगा। इस दशा में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय जस् का लोप होकर अन्तर्लोमन् बनेगा। अन्तर्बहिर्भ्यां 'च लोम्न:' सूत्र के द्वारा अप् प्रत्यय करने पर अन्तर्लोमन् अप् हुआ। 'नस्तद्धिते' सूत्र से अन्तर्लोमन् के अन् (टी) का लोप तथा सु प्रत्यय करने पर विसर्ग कार्य करने पर अन्तर्लोम: प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहिर्लोम: की सिद्धि भी समझनी चाहिए।

976 . **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य**: 5/4/138 ।

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोप: स्याद् बहुव्रीहौ । व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्य: किम्? अस्तिपाद: कुसूलपाद:।

हस्ति (हाथी) आदि के अलावा किसी अन्य उपमान के बाद यदि 'पाद' शब्द आया हुआ हो तो पद शब्द के अन्तिम अल् (अ) का लोप हो जाता है, बहुव्रीहि समास में। हस्त्यादि गण में बताये गये 19 शब्द हैं-हस्तिन्, कुद्दाल, अश्व, कशिक, कुयत, कटोल, कटोलक, गण्डोल, गण्डोलक, गण्डोल, आज, कपोत , जाल, गण्ड, महिला, दासी, गणिका आदि।अन्तिम अल् के उदाहरण में व्याघ्रपात् की सिद्धि -

व्याघ्रपात्- 'व्याघ्रस्येव पादौ अस्य' लौकिक विग्रह तथा 'व्याघ्र ङस् पाद औ' इस अलौकिक विग्रह में व्यधिकरण बहुव्रीहि समास बनेगा। सुपो धातुप्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर व्याघ्रपाद् बना। 'पादस्यलोपोऽहस्तादिभ्य:' सूत्र से अन्तिम अल (अ) का लोप होकर व्याध्रपाद् बना।

व्याघ्रपात्- 'व्याघ्रस्येव पादौ अस्य' लौकिक विग्रह तथा 'व्याध्र ङस् पाद औ' इस अलौकिक विग्रह में व्याधिकरण बहुव्रीहि समास बनेगा। सुपाधातु प्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर व्याघ्रपाद् बना। 'पादस्यलोपोहस्त्यादिभ्य:' सूत्र से अन्तिम अल (अ) का लोप होकर व्याघ्रपाद् बना।

अहस्तादिभ्य: किम्? हस्त्यादि इसलिए कहा कि हस्ति आदि शब्द उपमान के रूप में हो और उनके साथ 'पाद' शब्द आया हो तो पाद के अ का लोप नहीं होगा। जैसे- हस्तिपाद: (हाथी के पैर के समान पैर वाला)। हस्तिन: पादौ इव पादौ यस्य तथा हस्तिन् ङस् पाद और इस अलौकिक विग्रह में 'सुपोधातुप्रा0' इत्यादि सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होकर 'हस्तिपाद' ऐसा पद बना। हस्ति पद का वर्णन तो सूत्र में ही किया गया है इसलिए पाद् के अ का लोप नहीं होगा। प्र0 एकवचन में सु होकर विसर्ग होकर हस्तिपाद: प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार कुसूलपाद: की सिद्धि भी समझनी चाहिए

977 . **संख्या सु पूर्वस्य** 5/4/140 ।

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्।1 सुपात ।।

हस्ति (हाथी) आदि के जब बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत संख्यावाचक शब्द अथवा सु के बाद पाद शब्द आया हो तो पाद के अन्तिम अ का समासान्त लोप हो जाता है। जैसे –

द्विपात् (दो पैर वाला) 'द्वौ पादौ यस्य' इस लौकिक विग्रह तथा 'द्वि औ पाद औ' इस अलौकिक विग्रह की दशा में बहुव्रीह की दशा में बहुव्रीहि समास बनेगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों औ आदि का लोप होकर –द्विपाद बना। 'संख्यासुपूर्वस्य' सूत्र से 'पाद' शब्द के अ का लोप होकर'द्विपाद् या द्विपात' प्रयोग सि' हुआ। इसी प्रकार 'शोभनौ पादौ यस्य ' लौकिक तथा 'सु पाद औ' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में सुप् लोप तथा अ लोप होकर सुपात् प्रयोग बन जायगा।

978 . **संख्या सु पूर्वस्य** 5/4/140 ।

लोप: स्यात्। उत्काकुत, विकाकुत्। जब कभी बहुव्रीहि समास में उद् तथा वि के पश्चात् 'काकुद' शब्द आ जाय तो (काकुद)के अन्तिम अल् अ को समासान्त लोप प्राप्त होता है। जैसे-

उत्काकुत् – (जिसका तालु भाग ऊपर उठा हो)'उद्गतं काकुदं यस्य' लौकिक तथा 'उद् काकुद सु' इस अलौकिक विग्रह की दशा में बहुव्रीहि समास करने पर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' सूत्र से विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाने पर –उद्काकुद बनेगा। 'उद्विभ्याम् काकुदस्य' इस सूत्र से काकुद के अन्तिम अल् अ का लोप होने से – उत्काकुत् या उद्काकुद बनेगा।

विकाकुत्- (जिसका तालुभाग विकृत हो) 'विगतं काकुदं यस्य' लौकिक एवं 'वि काकुद सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सुप् लोप , अल् (अ) लोप तथा वाऽवसाने सूत्र द को त होने पर – विकाकृत् बनेगा।

979 .पूर्णाद् विभाषा 5/4/149

पूर्णकाकुत् पूर्णकाकुद: ।पूर्ण शब्द का काकुद् शब्द के साथ बहुव्रीहि समास करने पर काकुद के अन्तिम अल् (अ) का विभाषा अर्थात् विकल्प से समासान्त लोप होता है। जैसे – पूर्णकाकुत् , पूर्णकाकुद- (जिसका तालु पूरा हो) 'पूर्ण काकुदं यस्य' लौकिक तथा 'पूर्णकाकुद-सु' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में बहुव्रीहि समास बनेगा। इस दशा में पूर्णाद् विभाषा सूत्र से अन्त्य 'अ' का समासान्त लोप करने पर तथा सुपोधातु प्रातिपदिकयो: सूत्र से विभक्ति के प्रत्ययों का लोप होने पर- पूर्णकाकुद् तथा वाऽवसाने सूत्र से 'द' को 'त्' होकर पूर्णकाकुत् रूप बना। यदि अन्त्य अल् का लोप न हो तो प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर और विसर्ग कार्य करने पर पूर्णकाकुद: प्रयोग सिद्ध होगा

980 . **सुहृद्-दुहृदौ मित्राऽमित्रयो**: 5/4/150

सुदुभ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृद् –मित्रम्। दुर्हृद्-अमित्र:। मित्र के अर्थ में सुहृद् तथा अमित्र के अर्थ में दुर्हृद् शब्दों में हृद् निपातन होता है। जो कार्य बिना सुत्र तथा नियम के होते है उन्हें निपातन कहा जाता है। निपातन की परिभाषा है – लक्षणं विनैव निपातति प्रवर्तते लक्ष्येषु इति निपातमम् ।

जैसे- सुहृत्-(मित्र) 'शोभनं हृदयं यस्य' लौकिक तथा 'सुहृदय सु 'इस अलौकिक विग्रह के अनुसार सु प्रत्यय का लोप होने पर 'सुहृदय' प्रयोग बना। इस दशा में 'सुहृद्दुहृर्दौ-मित्राऽमित्रयो:' सूत्र से हृदय को हृद् आदेश होने पर सुहृद् बना तथा पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने और वावऽसाने सूत्र से द् को त् करने पर सुहृद् तथा सुहृत् प्रयोग बना।

इसी प्रकार दुष्टं हृदयं यस्य तथा 'दुर्हृदय सु' इन विग्रहों में प्रकृत सूत्र से दुर्हृद शब्द की सिद्धि होगी।

981 . **उद: प्रभृतिभ्य: कप्** 5/4/151 **।**

बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत उरस् आदि शब्दों से समासान्त कप् प्रत्यय होता है।

उरस् गण में –सर्पिस, उपानह, पुमान्, अनड्वान्, पय:, नौ: लक्ष्मी: दधि, मधु , शाली , अर्थान्नज: आदि आते हैं।

182 . **कस्कादिषु च** 8/3/48 **।**

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य ष: अन्यस्य तु स:। इति स: -व्यूढोस्क:। प्रियसर्पिष्क:।

कस्क गण में कहे गये शब्दों में जहॉं पर इ और उ (इण्) के बाद विसर्ग आया हो तो उसे ष् आदेश होता है; किन्तु जहॉं पर विसर्ग इण् से परे न हो तो उस विसर्ग को 'स्' आदेश होता है। निम्नलिखित शब्द कस्कादिगण में गिनाये गये है -

कस्क:, कौतस्कुत:, भ्रातुष्पुत्र: , भ्रातुष्पुत्र:, शुनकर्ण:, सद्यसकाक्त:, सद्यस्की:, कास्कान्, सर्पिष्कुण्डिका,धनुष्कपाक्तम्, यजुषाम, अयस्कान्त:, तमस्काण्ड:, मेदस्पिण्ड:, भास्कर:, बर्हिस्पलम् आदि। 'व्यूढोरस्क:'- (जिसका वक्षस्थल विशाल)

'व्यूढम् उरो यस्य' लौकिक तथा 'व्यूढ सु उरस् सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास बनेगा। सुप् लोप होकर –व्यूढोरस् बना। 'उर:प्रभृतिभ्य: कप्' सूत्र से कप् प्रत्यय करने पर, अनुबन्ध लोप करने पर व्यूढोरस्क हुआ। 'ससजुषोरु:' सूत्र से स को रू आदेश हुआ और अनुबन्ध लोप होकर'खरवसानयोर्विसर्जनीय:' सूत्र से विसर्ग होकर – व्यूढोर: +क हुआ। इस स्थिति में 'कस्कादिषु च'सूत्र से विसर्ग को स आदेश होकर व्यूढोरस्क हुआ। पुलिंग प्रथमाएकवचन में सु प्रत्यय का आगम करने और विसर्ग कार्य करने पर व्यूढोरस्क: प्रयोग सिद्ध हुआ।

983 . **निष्ठा** 2/2/36

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्व स्यात् । युक्तयोग:।

निष्ठा के अर्थ को व्यक्त करने वाले प्रत्यय जिसके अन्त में हों उसका प्रयोग बहुव्रीहि समास में पहले ही होता है। जैसे- 'युक्तयोग' (योग में रमा हुआ) 'युक्त:' योगो येन यस्य वा' लौकिक तथा युक्त सु योग सु इस अलौकिक विग्रह में बहुव्रीहि समास होगा। 'निष्ठा' सूत्र से 'युक्त' शब्द का पूर्व में प्रयोग होकर-सुप् लोप होकर युक्तयोग बना। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु का आगम और विभक्ति कार्य करने पर युक्तयोग: प्रयोग सिद्ध हुआ।

984 . शेषाद्विभाषा 5/4/154

अनुक्तसमासन्ताद् बहुव्रीहे: कप् वा। महायशस्क:। महायशा:। बहुव्रीहि समास के अन्तर्गत

जब किसी समासान्त प्रत्यय का विधान न हुआ हो तो उससे विकल्प के द्वारा कप् प्रत्यय होता है। जैसे -

'महायशस्क:' -(महान यशस्वी) 'महत् यशो यस्य' इस लौकिक तथा 'महत्सु यशस् सु' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास बनेगा। सुप् होकर –महत् यशस् होगा। किसी अन्य समासान्त का विधान न होने से 'शेषाद् विभाषा' सूत्र से कप् प्रत्यय करने पर महत् यशस् कप् हुआ। अनुबन्ध लोप होने पर महत् में त् के स्थान पर 'आन्महत:' सूत्र से आ करने पर महायशस्+क हुआ। 'ससजुषो रु:' सूत्र से स् को रु आदेश करने पर, अनुबन्ध लोप करने पर खरवसानयोर्विसर्जनीय: सत्र से विसर्ग कार्य तथा 'सोऽपदादौ' सूत्र से पुन: विसर्ग को स् आदेश करने पर महायशस्क रूप बना। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय का आगम करने पर विसर्ग कार्य करने पर विसर्ग कार्य करने पर महायशस्क: प्रयोग सिद्ध हुआ।

महायशा- 'महत्सु यशस् सु' अलौकिक विग्रह के अनुसार सुप् लोप होकर महत् यशस् और'आन्महत:'सूत्र से त् को आ होकर महायशस् बना । इस स्थिति में 'अत्वसन्तस्य चाधातो:' सूत्र से उपधा के 'अ' को दीर्घ होकर महायशास् बना। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय का आगम और विसर्ग कार्य करने पर महायशा: प्रयोग सिद्ध हुआ।

5 . द्वन्द्व समास

985 . **चार्थे** 2/2/29

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्व:। समुच्चयऽन्वाचयेतरेतरयोग-समाहारा-श्चार्था: । तत्र 'ईश्वरं गुरूं च भजस्व इति परस्पर निरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नवय: समुच्चय: भिक्षामट गां चानय । इति अन्यतरस्यानुषंगिकत्वेनाऽन्वयोऽन्वाचय:। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। 'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय: इतरेतरयोग:संज्ञापरिभाषम् इति समूह: समाहार:।

अनेक सुबन्त जब 'च' का अर्थ बताने वाले होते है तब उन सुबन्तों का विकल्प से समास होता है। उस समास को द्वन्द्व समास कहते हैं। 'च' का प्रयोग चार प्रकार के अर्थो में होता है- समुच्चय , अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार।

(क) **समुच्चय**- 'ईश्वर और गुरू की सेवा करो' ऐसे वाक्यों में परस्पर निरपेक्ष अनेक पदार्थो के एक साथ अन्वय करने पर 'च' समुच्चय अर्थ वाला होता है। जैसे-'ईश्वरं गुरूं च भजस्व'।

(ख) **अन्वाचय**- 'भिक्षा के लिए जाओ तथा गाय भी ले आओ' आदि वाक्यों में जब एक साथ अन्वय होने वाले पदार्थो में प्रथम वाक्य का दूसरे वाक्य के साथ गौण रूप से अन्वय किया जाय तो अन्वाचय का अर्थ होता है जैसे- 'भिक्षा अट गां च आनय'।

(ग) **इतरेतरयोग**- जब सुबन्त पद के साथ कई पदार्थ मिलकर अन्वित होते है तो उसे इतरेतरयोग कहते है किन्तु विशेषता यह है कि ये सुबन्त पद के अर्थ के साथ अन्वित होते हैं। जैसे -'खैर तथा धव को काटो' आदि वाक्य में धव तथा खैर आपस में मिलकर आगे आने वाले छिन्धि (काटना) क्रिया के साथ अन्वित हो रहे हैं। अत: यहॉं इतर-इतर योग है। इन स्थितियों में आने वाले पदों का एक साथ समास बनता है।

(घ) समाहार- समाहार शब्द समूह का वाचक होता है किन्तु इसमें पदार्थों के समूह का

अन्वय होता है। जैसे- संज्ञा और परिभाषा का समूह । इस दशा में भी अनेक सुबन्त पदों का द्वन्द्व समास बनता है। अत: द्वन्द्व समास के दो भेद हो जाते हैं।

(1) **इतरेतरद्वन्द्व**

(2) **समाहार द्वन्द्व**

986 **राजदन्तादिषु परम्** 2/2/31

एषु पूर्व प्रयोगार्ह परं स्यात् । दन्तानां राजा-राजदन्त: ।'राजदान्त' आदि शब्दों में जिसका प्रयोग पहले होना चाहिए उसी को बाद में रखा जाता है। राजदन्तादिगण में पचास से अधिक शब्द गिनाये गये हैं।जैसे – राजदन्त: -(प्रमुख दॉत)

'दान्तानां राजा' लौकिक तथा 'दन्त आम् राजन् सु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठ्यन्त पद का सुबन्त पद के साथ तलपुरूष समास होगा। यहॉं पर प्रथमा होने से षष्ठ्यन्त पद दन्तानां की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा होगी और 'उपसर्जनम् पूर्व' सूत्र से उसका पहले से प्रयोग होना चाहिए किन्तु , 'राजन्तादिषुपरम्' सूत्र से पहले प्रयोगन होकर वह बाद में रखा जायेगा तब राजन्सु दन्त आम् ऐसा रूप बनेगा। इस दशा में सुप् लोप होने पर - राजन् दन्त बनेगा। 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न का लोप होने पर राजदन्त होगा। पुलिंग प्रथमा एकवचन में सु का आगम्, अनुबन्ध लोप और विसर्ग कार्य करने पर राजदन्त: प्रयोग सिद्ध होगा।

(वार्तिक) धर्मादिश्वनियम: ।अर्धधमौ, धर्मार्थवित्यादि।

जब धर्म आदि शब्द हो तो पूर्व अथवा हो तो पूर्व अथवा पर में रखने का कोई निश्चित विधान नहीं है। अर्थात् राजन्तादि गण में प्रयुक्त धर्मार्थौ, कामार्थौ, अर्थधर्मौ शब्दार्थौ आदि पदों में इच्छानुसार किसी भी पद का पहले प्रयोग हो सकता है। जैसे-

धमार्थौ- 'धर्मश्चअर्थश्च' लौकिक तथा 'धर्मसु अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में इतरेतरयोग होने से सर्वप्रथम'चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र से द्वन्द्व समास प्राप्त होगा। 'धर्मादिश्वनियर्म:' इस वार्त्तिक के अनुसार प्रयोग का अनियम होने से और सुप् लोप होने से धर्मार्थ पद बनेगा। प्रथमा विभक्ति द्विवचन में औ प्रत्यय करने पर धर्मार्थौ प्रयोग सिद्ध हुआ।

987 . **द्वन्द्वे घि** 2/2/32

द्वन्द्वे धिसंज्ञं पूर्व स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।

घि संज्ञक पद का प्रयोग द्वन्द्व समास में पहले ही होता है। जैसे-

हरिहरौ – हरिश्च हरश्च लौकिक और 'हरिशु और हर सु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम 'चार्थेद्वन्द्व: सूत्र' से द्वन्द्व समास बनेगा। हरि तथा हर में हरि घिसंज्ञक पद है। अत: 'द्वन्द्वे घि' सूत्र से वह पहले प्रयुक्त होकर सुप् लोप होने के बाद 'हरिह' पद बनेगा। प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में 'औ' प्रत्यय लगाने पर हरिहरौ प्रयोग सिद्ध होगा।

988 . **अजाद्यदन्तम्** 2/233 इदं द्वन्द्वे पूर्व स्यात् । ईशकृष्णौ।

द्वन्द्व समास के अन्तर्गत स्वर से आरम्भ होने वाले और अदन्त (हस्व अ) पदों का प्रयोग पूर्व में होता है। जैसे-ईशकृष्णौ-'ईशश्च कृष्णश्च' लौकिक तथा 'ईश सु कृष्ण सु' इस अलौकिक विग्रह में सर्वप्रथम चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र से द्वन्द्व समास होगा। ईश पद अजादि तथा हस्वान्त है। अत: 'अजाद्यदन्तम्' सूत्र से उसका पूर्व में प्रयोग होकर सुप् लोप

होने से ईशकृष्ण बना। समुदाय के कारण द्विवचन में औ प्रत्यय करने पर 'ईशकृष्णौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

989 **अल्पाच्तरम्** 2/2/34 **शिव केशवौ**

जिस पद में स्वर वर्ण कम हो वहॉ द्वन्द्व समास करते समय उनका प्रयोग पूर्व में होता है। जैसे-

शिवकेशवौ – 'शिवश्च केशवश्च' लौकिक तथा 'शिवासु केशव सु' इस अलौकिक विग्रह में 'चार्थेद्वन्द्व:' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। सुप् लोप होकर' अल्पाच्तरम्' सूत्र से पूर्व में प्रयोग होने पर-'शिवकेशव' रूप बना। प्रथम विभक्ति द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर 'शिवकेशवौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

990 . **पिता मात्रा** 1/2/70माता सहोक्तौ पिता वा शिश्यते। माता च पिता च माता पितरौ वा। जब माता पद के साथ पिता पद का प्रयोग द्वन्द्व समास में हो तो विकल्प से 'पित' शब्द ही शेष बचता है तथा माता पद का लोप हो जाता है। जैसे –

पितरौ – 'माता च पिता च' लौकिक और मातृ सु पितृ सु' इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में सर्वप्रथम द्वन्द्व समास बनेगा। पितामात्रा' इस सूत्र से विकल्प से मातृ पद का लोप होकर 'पितृ शब्द बना समूदायवाची होने से द्विवचन में औ प्रत्यय करने तथा 'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयो:' सूत्र से ऋ को अर् गुण होकर 'पितरौं प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'मातृ सु पितृ सु इस अलौकिक विग्रह में 'अभ्यर्हित पूर्व' सूत्र से 'मातृ' सु पितृ सु' इस अलौकिक विग्रह में 'अभ्यर्हितं पूर्व' सूत्र से 'मातृ पद का पूर्व में प्रयोग और 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र से मातृ से मातृ के ऋ को आन**ङ्** आदेश, अनुबन्ध लोप होकर 'माता पितृ' रूप बनेगा। तथा समुदाय वाची होने से द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर 'माता पितरौ' प्रयोग सिद्ध होगा।

991 . द्वन्द्वश्च प्राणि तूर्य-सेनांगानाम् 2/4/2 **एषां द्वन्द्व एकवत्**। पाणिपादम्। मार्दंगिक वैणिविकम् रथिकाश्वारोहम्।प्राणी के अंगो के वाचक, वाद्ययन्त्र के अंगों के वाचक या प्रकार' सेना के अगों के वाचक पदों का द्वन्द्व समास एकवचनान्त होता है। यह सब समाहार द्वन्द्व में आता है। जबकि इतरेतरद्वन्द्व द्विवचन या बहुवचन में होता है। जैसे-

पाणिपदम्- 'पाणी च पादौ च' लौकि और 'पाणि और पाद औ' इस अलौकिक विग्रह के अनुसार द्वन्द्व समाहार समास होगा। सव् लोप तथा 'द्वन्द्वश्चप्राणितुर्य0 इत्यादि सूत्र से नपुंसक लिंग प्रथमा एक वचन में पाणिपदम् प्रयोग सिद्ध होगा।

मार्दङिक वैणविकम् - (मृदंग तथा वंशी वादकों का समूह)। मार्दगिकाश्च वैणविकश्च ऐतेषां समाहार:' लौकिक और 'मार्दड़्गिक जस् वैणविकजस् अलौकिक विग्रह में सुप् लोप होकर प्रकृत सूत्र से तथा सनपुंसकम् सूत्र से नपुंसकलिंग की विवक्षा में प्रथमा एकवचन में मार्दड़ि गकवैणविकम् प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'रथिकाश्च अश्वारोहाश्च ऐतेषां समाहार: लौकिक तथा रथिक जस् अश्वारोह जस् इस अलौकिक विग्रह में सूप् लोप तथा प्राणितूर्य इत्यादि सूत्र से एकवद भाव होकर नपुंसकलिंग में प्रथमा एकवचन में रथिकाश्वारोहम प्रयोग बनेगा।

992 . **द्वन्द्वात् चु –द-ष- हान्तात् समाहारे** 5/4/106

चवर्गान्ताद् दषहान्ताट्टच् द्वन्द्वट् टच् स्यात् समाहारे। वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्

त्वकस्रजम्। शमीदृशदम्। वाकत्विषम्। छात्रोपानहम्। समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ।
समाहार के अर्थ में जब द्वन्द्व समास के अन्त में चवर्ग द्,ष्,और 'ह्' होता है तब उससे समासान्त टच् प्रत्यय का विधान किया जाता है। जैसे –

वाक्त्वचम् - 'वाक् च त्वच् च' लौकिक और समास होकर सुप् लोप होने से - वाच्त्वच् बनेगा।'चो: कु:' इस सूत्र से वाच् के च् का क् आदेश होकर वाक्त्वच् होगा पुन: द्वन्द्वात् चु इत्यादि सूत्र से टच् प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप होकर वाक्त्वच रूप बनेगा।'सनपुंसकम्' सूत्र से नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन में वाकत्वचम् प्रयोग सिद्ध होगा इसी प्रकार 'खक् च स्रक् च तयो: समाहार:' लौकिक और 'त्वच् सु स्रज् सु' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्रों से त्वक्स्रजम् पद की सिद्धि होगी।

शमीच दृषद् च तयो: समाहार: (शमी और सिलवट) इस लौकिक विग्रह तथा 'शमी सु दृषद् सु' इस अलौकिक विग्रह में समासान्त टच् प्रत्यय करने पर शमीदृशदम् प्रयोग बनेगा। 'वाक्च त्विट् च तयो: समाहार:' (वाणी और तेज) लौकि तथा 'वाच् सु त्विष् सु इस अलौकिक विग्रह में द्वन्द्व समास होकर प्रकृत सूत्र से समासान्त प्रत्यय टच् लगाने पर नपुसंकलिंग प्रथमा एकवचन में वाक्त्विषम् प्रयोग सिद्ध होगा।

'छत्रं च उपनत् च तयो: समाहार: लौकिक और छात्र सु उपानह् सु' इस आलौकिक विग्रह में सुप् लोप गुण आदेश तथा समासान्त टच् प्रत्यय करने पर अनुबन्ध लोप होकर छात्रो पानहम् प्रयोग बना। समाहार अर्थ में ही टच् प्रत्यय क्यों होगा, इसके लिए कहते हैं कि इतरेतरयोग होने पर टच् प्रत्यय नहीं होगा। जैसे- प्रावृष्सु शरद सु अलौकिक विग्रह में इतरेतर अर्थ में द्वन्द्व समास होगा। सुप् लोप होकर प्रावृष् के ष्कार को जस् करने पर ड् तथा ड् को टु करने पर प्रावृट् शरद् बनेगा। यद्यपि यह प्रयोग दकारान्त है फिर भी समाहार द्वन्द्व न होने से टच् प्रत्यय नहीं होगा तब इतरेतर योग से प्रथमा के द्विवचन में 'और' प्रत्यय करने पर – 'प्रावृट्शरदौ' प्रयोग सिद्ध होगा।

अभ्यास के प्रश्न –

निम्न लिखित के एक शब्द में उत्तर दीजिए –

1.पितरौ में कौन सा समास होता है

2.पाणिपादम् में समास है

3.शिव केशव का अर्थ है

4.मार्दंगिक का क्या अर्थ है

5. वैणविक कहलाता है

6. ईशकृष्णौ में समास किस सूत्र से होता है

7. द्वन्द्व समास कितने प्रकार का का होता है

5ॆ.4 सारांश

समास शास्त्र के वर्णन की यह तीसरी इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपने जाना कि बहुव्रीहि समास का अधिकार द्वन्द्व समास के प्रारम्भ होने से चलता है। सर्वप्रथम इसमें प्रथमान्त पदों का उनके साथ अनेक वैकल्पिक पदों के साथ समास करने पर बहुव्रीहि समास कहलाता है। उदाहरण केलिये यदि कहा जाये कि पीत और अम्बर दो पद है जिसका अर्थ है – पीला वस्त्र। किन्तु पीताम्बर और जिसके लिये पीला वस्त्र है उसका अभिप्राय किसी अन्य पद में अभीष्ट है।

यह कहा गया है श्री कृष्ण के लिये अत: वह समास में नहीं आया अन्य पद में आया इसीलिये पीला वस्त्र है जिसका ऐसा अन्य कोई श्री कृष्ण है आदि। इस प्रकार का अर्थ की प्रतीति कराने वाले पदों में समास जब बनता है तब वह बहुव्रीहि के अन्तर्गत आता है। द्वन्द्व समास तो च के अर्थ में भी प्रचलित है। किन्तु यह चार प्रकार से होता है - समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर, समाहार। इन चार प्रकार के अर्थो को बताने वाला चारों में अलग – अलग प्रयोगों की सिद्धि कराने वाला द्वन्द्व समास कहलाता है। किन्तु इसमें प्रयुक्त पद नपुंसक लिंग में गिने जाते है। प्रमुखता का अर्थ भी द्वन्द्व का कारक होता है। जैसे – दन्तराज।

अत: इस इकाई में आपने व्याकरण की प्रक्रिया के आधार पर बहुव्रीहि और द्वन्द्व समास का अध्ययन करके उनके प्रयोगों की सिद्धि जाना हैं। इनसे सम्बन्धित बनने वाले अन्य प्रयोगों को भी आप बता सकेंगे।

5.5 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्वन्द्व समास के किन्हीं दो सत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए .

2.पितरौ की सिद्धि कीजिए

3. शिवकेशवौ की